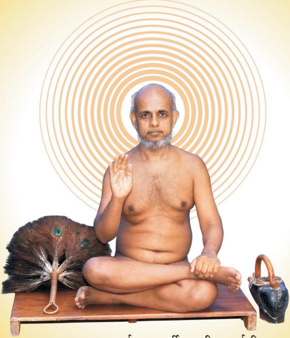

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी–महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

व्रततिथिनिर्णय

अनुवादक एवं सम्पादक
श्री नेमिचन्द्र जी शास्त्री

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

(परम्परानायक)

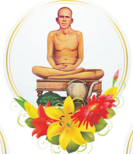

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

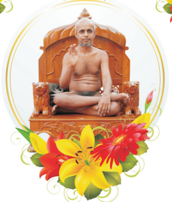

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

विषय-सूची

प्रस्तावना	...	११
ग्रन्थका प्रास्ताविक	...	६७
तिथिमानके लिए हिमाद्रि और कुलाद्रिमत	...	६८
मांगलिक कार्योंके लिए ग्राह्य उत्तरायण	...	७०
मास, पक्ष और तिथि गणना	...	७१
तिथिके सम्बन्धमें केशवसेन और महासेनका मत	...	७२
दान, अध्ययन और पौष्टिक कार्यके लिए तिथि-व्यवस्था	...	७५
दग्ध-विष-हुताशन संज्ञक तिथियाँ	...	७६
शून्यसंज्ञक तिथियाँ	...	७७
सूर्यदग्धा तिथियाँ	...	७८
चन्द्रदग्धा तिथियाँ	...	७८
तिथि-प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत और उसका उपसंहार	...	७९
एक ही दिन कई तिथियाँ होनेपर व्रत-तिथिकी व्यवस्था	...	७९
वेधा तिथिका लक्षण	...	८०
व्रतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान	...	८१
शुभ कार्योंमें त्याज्य	...	८३
शुभ कार्योंके लिए पञ्चाङ्गशुद्धि	...	८३
नक्षत्रनामावली	...	८३
नक्षत्रोंकी संज्ञाएँ	...	८४
योगोंकी नामावली और उनके अशुभ भाग	...	८४
विभिन्न कार्योंके लिए वारव्यवस्था	...	८५
व्रतके लिए छःघटी प्रमाणतिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष	...	८६
व्रत-विधिका आवश्यक अंग—समयशुद्धि	...	८७
तिथिह्रासमें व्रतविधान करनेका नियम	...	८८
नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान भेद	...	८९
रत्नावली और एकावली व्रत	...	९०

द्विकावलीव्रत ... ९१
आकाशपञ्चमी ... ९१
चन्दनषष्ठी ... ९१
नैशिक व्रतोंके लिए तिथि-व्यवस्था ... ९२
दशलाक्षणिक और अष्टाह्निक व्रतोंमें बीचकी तिथि क्षय होनेपर व्रत-व्यवस्था ... ९२
एकाशनके लिए तिथि-विचार ... ९७
षोडश कारण और मेघमालाव्रतका विचार ... १००
मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ ... १०३
रत्नत्रयव्रतकी तिथियोंका निर्णय ... १०५
मुनिसुव्रत पुराणके आधारपर व्रत-तिथिका प्रमाण ... १०७
व्रततिथिके निर्णयके लिए निर्णयसिन्धुके मतका निरूपण तथा खण्डन ... १०८
तिथिवृद्धि होनेपर व्रतोंकी तिथिका विचार ... ११२
तिथिवृद्धि होनेपर व्रत-व्यवस्था ... ११४
मेरुव्रतकी व्यवस्था ... १२०
व्रततिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत ... १२३
मूलसंघ और सेनगणके आचार्योंके मतानुसार तिथि-व्यवस्था ... १२५
दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी अवधिका निर्णय ... १२७
व्रततिथिके निर्णयके लिए अन्य मतान्तर ... १३०
व्रततिथिके लिए विभिन्न मत ... १३५
तृतीयांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी आलोचना ... १३७
षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमें तिथि माननेवाले मतकी समीक्षा ... १४०
व्रतके आदि मध्य-अन्तमे तिथिक्षय होनेपर अभ्रदेवका मत ... १४२
तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वरोंका मत ... १४४

व्रततिथिकी व्यवस्था ... १४६
शुभ कृत्योंके लिए शुक्र और गुरुका अस्त ... १४९
चन्द्र और सूर्य शुद्धिका विचार ... १५०
प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके व्रतकी व्यवस्था ... १५१
दिन और रात्रिके मुहूर्त्तोंका प्रमाण ... १५१
रौद्र मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५२
द्वितीय श्वेत मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५२
तृतीय मैत्र मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५२
चतुर्थ सारभट मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५३
पञ्चम दैत्य मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५४
षष्ठ वैरोचन मुहूर्त्तमे विधेय कार्य ... १५४
सप्तम वैश्वदेव मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५५
अष्टम अभिजित् मुहूर्त्तमें विधेय कार्य .. १५५
नवम रोहण मुहूर्त्तमें विधेय कार्य ... १५५
दशम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश और पञ्चदश मुहूर्त्तके स्वभाव और उनमें विधेय कार्य ... १५६
तिथिह्रास होनेपर तृतीया व्रतका विधान ... १५७
व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा कवलचन्द्रायण व्रतकी परिभाषा ... १५८
जिनमुखावलोकन व्रत ... १६०
मुक्तावली व्रतके भेद और उनकी व्यवस्थाएँ ... १६१
तपोऽञ्जलि व्रतका लक्षण ... १६२
जिनमुखावलोकन व्रतकी विधि ... १६४
मुक्तावली व्रतकी विधि ... १६६
द्विकावली व्रतकी विधि ... १६६
लघुद्विकावली व्रत-व्यवस्था ... १६९
एकावलीव्रतकी विधि और फल ... १७०

सावधि व्रतोंके भेद	...	१७१
सुखचिन्तामणिव्रतका स्वरूप	...	१७२
तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर सुखचिन्तामणिव्रतकी व्यवस्था	...	१७३
अष्टाह्निकादि व्रतोंमें तिथिक्षय होनेपर पुनः व्यवस्था	...	१७५
मासाधिक होनेपर सांवत्सरिक क्रियाकी विधि	...	१७६
अधिमासोंकी तालिका	...	१७८
मासक्षय होनेपर व्रतके लिए व्यवस्था	...	१७९
तिथिका प्रमाण	...	१८१
व्रततिथिके निर्णयमें शंकाका समाधान	...	१८२
अपने स्थानका तिथिमान निकालनेके लिए रेखांशबोधक सारिणी	...	१८४
मुकुटसप्तमीव्रतका स्वरूप	...	१८९
निर्दोषसप्तमी व्रतका स्वरूप	...	१८९
श्रवणद्वादशी व्रतका स्वरूप	..	१९१
जिनरात्रि व्रतका स्वरूप	...	१९३
मुक्तावली व्रतका स्वरूप	...	१९४
रत्नत्रय व्रतकी विधि	...	१९५
अनन्तव्रत विधि	...	१९६
मेघमाला और षोडशकारण व्रतोंके करनेकी विधि	..	१९९
अष्टाह्निका व्रतको करनेकी विधि	...	२००
प्रत्येक प्रकारके व्रतको धारण करनेका संकल्पमन्त्र	...	२०१
व्रत-समाप्तिके दिन व्रत-विसर्जनका संकल्पमन्त्र	...	२०२
दैवसिक व्रतोंका निर्णय	...	२०३
त्रिमुखशुद्धिव्रतकी विधि	...	२०३
द्वारावलोकनव्रत	...	२०४
जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रतोंका स्वरूप	...	२०४

पात्रदान और प्रतिमायोग व्रतका स्वरूप	...	२०६
नैशिक व्रतोंका वर्णन	...	२०७
मासिक व्रतोंका वर्णन	...	२०८
पञ्चमास चतुर्दशीव्रत, शीलचतुर्दशीव्रत और रूप-चतुर्दशीव्रत	..	२०८
कनकावलीव्रतकी विशेष विधि	...	२१०
रत्नावलीव्रतकी विशेष विधि	...	२११
ज्ञानपच्चीसी और भावनापच्चीसी व्रतोंकी विधि	...	२१४
नमस्कार पैंतीसी व्रतकी विधि	...	२१७
मासावधि व्रतोंका कथन	...	२१८
ज्येष्ठजिनवर व्रतकी विधि	...	२१८
जिनगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि	...	२१९
चन्दनषष्ठी व्रतकी विशेष विधि	...	२२०
रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता	...	२२१
रोहिणीव्रतका फल	...	२२१
रोहिणीव्रतकी व्यवस्था	...	२२२
रोहिणीव्रतकी विशेष विधि	...	२२४
तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें देशकालकी मर्यादाका विचार	...	२२७
रविव्रतकी विधि	...	२२८
रविव्रतका फल	...	२२९
सप्तपरमस्थान व्रतकी विधि	...	२३०
शोर्पमुकुट सप्तमीव्रत	...	२३१
अक्षयनिधिव्रतकी विधि	...	२३२
मासिक सुगन्धदशमीव्रत	...	२३३
सांवत्सरिक व्रतोंका वर्णन	...	२३४
चारित्र्यशुद्धिव्रतकी व्यवस्था	...	२३५
सिंहनिष्क्रीडित व्रतकी व्यवस्था	...	२३६

पुरन्दर व्रतकी विधि	...	२३९
दशलक्षण व्रतकी विधिपर प्रकाश	...	२४१
तिथिक्षय होनेपर दशलक्षणव्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल	...	२४३
पुष्पाञ्जलिव्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल	...	२४४
उत्तम मुक्तावली व्रतकी विधि	...	२४६
प्रकारान्तरसे सुगन्ध दशमीव्रतकी विधि	...	२४८
अक्षयनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष	...	२४९
मेघमालाव्रतकी विशेष विधि	..	२५१
रत्नत्रय व्रतकी विधि	...	२५२
तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय व्रतकी व्यवस्था	...	२५३
काम्यव्रतोंका फल	..	२५३
अकाम्यव्रतोंका वर्णन	...	२५४
उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश	...	२५७
पञ्चकल्याणक व्रततिथिबोधक चक्र	...	२५८
पञ्चपरमेष्ठी व्रत	...	२६०
सर्वार्थसिद्धि व्रत	...	२६०
धर्मचक्र व्रत	...	२६०
नवनिधि व्रत	...	२६१
शील व्रत	...	२६१
त्रेपन क्रिया व्रत	...	२६१
कर्मचूर व्रत	...	२६२
लघु सुखसम्पत्ति व्रत	..	२६२
बारह सौ चौंतीस व्रत या चारित्रशुद्धि व्रत	...	२६३
इष्टसिद्धिकारक निःशल्य अष्टमी व्रत	...	२६३
कोकिला पञ्चमी व्रत	...	२६३
जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत	..	२६४
गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश	...	२६४

प्रस्तावना

त्यौहार, पर्व और व्रतोंका संस्कृतिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अहिंसा-प्रधान श्रमण संस्कृतिमे आत्मशोधन लौकिक अभ्युदयकी उपलब्धि, जीवनमे प्रगति एवं प्रेरणा प्राप्तिके लिए त्यौहार, पर्व और व्रतोंकी साधना आवश्यक मानी गयी है। यह सत्य है कि जिस प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे कृषिको लाभके स्थानपर हानि ही होती है, उसी प्रकार असमयपर किये गये व्रतोसे लाभके स्थानपर हानि ही होनेकी सम्भावना रहती है। व्रतोंका वास्तविक फल विधिपूर्वक यथासमय व्रत सम्पन्न करनेसे ही प्राप्त होता है तथा त्यौहारोसे भी जीवनमे गतिशीलता यथासमय त्यौहारोंको सम्पन्न करनेसे ही आती है। इसी कारण आचार्योंने व्रतों और त्यौहारोंकी तिथि-व्यवस्था एव विधिविधानपर यथेष्ट जोर दिया है। किन्तु वर्तमानमे हमारे समाजमे तिथि-व्यवस्था और विधि विधानकी प्रायः अवहेलना होती दिखाई दे रही है। यद्यपि व्रतोंका प्रचार है, पर तत्सम्बन्धी कर्म-काण्ड उठ-सा गया है। इसका प्रधान कारण एतद्विषयक साहित्यका अभाव होनेसे विद्वद्वर्गकी उपेक्षा ही है। जिस प्रकार वैदिक संस्कृतिके विधेय व्रत और त्यौहारोंका व्यवस्थापक उस संस्कृतिमे 'निर्णयसिन्धु' ग्रन्थ है, उस प्रकारका व्यवस्थासूचक ग्रन्थ अभी तक जैन समाजमे उपलब्ध नही है। यद्यपि निर्णयसिन्धु भी अनेक प्राचीन वैदिक ग्रन्थोके आधारपर ही सकलित है, फिर भी उस ग्रन्थकी महत्ता और मौलिकता अक्षुण्ण है। हमारे विद्वद्वर्गका ध्यान इस ओर न गया, अन्यथा जैनागमके आधारपर व्यवस्थासूचक कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तय्यार हो गया होता। सौभाग्यसे 'श्री जैन सिद्धान्त भवन, आराके ग्रन्थागारमे 'व्रततिथिनिर्णय' नामक एक तिथि-व्यवस्था सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ सुरक्षित था। इसीको हिन्दी अनुवाद और विवेचनके साथ भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित किया

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थसे उक्त कमी सर्वथा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अशोमे इस लघुकाय कृति-द्वारा व्रत-व्यवस्थामे सहायता प्राप्त होगी। और जबतक इस विषयपर विशालकाय ग्रन्थ सकलित नहीं होता है; तबतकके लिए यह ग्रन्थ निर्णयसिन्धुके समान ही उपयोगी सिद्ध होगा।

त्यौहारोंकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहारोको जैन भी अन्य धर्मावलम्बियोके साथ मनाते है। इन त्यौहारोका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रसगमे कतिपय धार्मिक त्यौहारोकी तिथि एव विधि-विधानव्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

वीरशासन जयन्ती व्यवस्था

जैन आगमके अनुसार नवीन वर्षका प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी थी। बताया गया है कि युगका प्रारम्भ, सुषम सुषमादि कालचक्रका अथवा उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप कालो का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति आषाढी पूर्णिमाको होती है, पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र, बालवकरण और रौद्रमुहूर्त्तमे युगका आरम्भ हुआ करता है। यथा—

'सावणबहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं ॥

धवला टीका, त्रिलोकसार, लोकविभाग आदि धार्मिक ग्रन्थोके अलावा ज्योतिष्करण्डक, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रभृति ज्योतिषविषयक ग्रन्थोसे भी उक्त कथनका समर्थन होता है।

भगवान् महावीरका प्रथम दिव्योपदेश इसी तिथिको हुआ था। इसकी महत्ताके सम्बन्धमे श्री जुगलकिशोरजी मुख्तारका अभिमत है कि

---

१. तिलोयपण्णत्ती १।७०।

"कृतज्ञता और उपकार-स्मरण आदिकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह तीर्थ-प्रवर्तक तिथि दूसरी जन्मादि-तिथियोंसे कितने ही अशोंमे अधिक महत्त्व रखती है; क्योंकि दूसरी पञ्चकल्याणक तिथियाँ जब व्यक्ति-विशेषके निजी उत्कर्षादिसे सम्बन्ध रखती हैं, तब यह तिथि पीडित, पतित और मार्ग-च्युत जनताके उत्थान एव कल्याणके साथ सीधा सम्बन्ध रखती है और इसीलिए अपने हितमे सावधान कृतज्ञ जनताके द्वारा खासतौरसे स्मरण रखने तथा महत्त्व दिये जाने योग्य है" ।

धवलसिद्धान्त और तिलोयपण्णत्तिमे इस तिथिको धर्मतीर्थोत्पत्ति-तिथि कहा गया है । यतः—

[1]वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले ।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजम्हि ॥
× × × ×
[2]एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि ।
तेत्तीसवासअडमासपण्णरसदिवससेसम्मि ॥
वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए ।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥

अर्थात्—अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमे तेतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके श्रावण नामक प्रथम महीनेमे; कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ।

वीरशासन जयन्ती श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही सम्पन्न की जानी चाहिए । अभिजित् नक्षत्रका प्रमाण ज्योतिषमे १९ घटी माना गया है । उत्तराषाढा नक्षत्रकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणनक्षत्रके आदिकी ४ घटियाँ ही अभिजित्‌की घटियाँ होती हैं । प्रायः

१. धवलाटीका प्रथम भाग पृ० ६३ ।

२. तिलोयपण्णत्ती प्रथमाधिकार गाथा ६८-६९ ।

आषाढ़ी पूर्णिमा पूर्वाषाढ़ाके अन्त और उत्तराषाढ़ाके आदिमें पडती है। पूर्णिमाके दिन उदयमें पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र रहता है तथा प्रतिपदाके प्रातःकालके समय उत्तराषाढा नक्षत्र आ ही जाता है। अतएव वीर-शासन जयन्ती उसी तिथिको मनानी चाहिए जिस तिथिको उत्तराषाढा-की अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवण नक्षत्रकी ४ घटियाँ आवे। यह स्थिति कभी-कभी द्वितीया तिथिको भी आ सकती है, क्योंकि नक्षत्रमानके अनुसार अभिजित् द्वितीयाको आ सकता है। वीरशासन जयन्तीमें अभि-जित् मानकी प्रधानता है। अभिजित्मान नक्षत्रकाल गणनाके अनुसार लिया गया है और तिथि चान्द्रमानके अनुसार गृहीत है। अतः दोनों मानोंका कभी-कभी सन्तुलन नहीं होगा तथा कभी सन्तुलन हो भी जाया करेगा। यतः तिथि मान जितना घटता-बढ़ता है, नाक्षत्रमानमें इससे कम हीनाधिकता होती है। अतः दोनों मानोंमें प्रायः एक वर्षमें ५ दिनका अन्तर होता है; इससे कभी-कभी श्रावण प्रतिपदाके दिन—जिस दिन उदयकालमें प्रतिपदा हो, उस दिन अभिजित् नक्षत्र नहीं भी आ सकता है। इस प्रकारकी स्थितिमें द्वितीया तिथिको ही अभिजित् पड़ेगा, अतः अभिजित् नक्षत्रके दिन ही वीरशासन प्रवृत्तिका समय आवेगा। उदा-हरणार्थ यों कहा जा सकता है कि आषाढी पूर्णिमा सवत् २००६में मगल-वारको २० घटी १५ पल है। इस दिन मूल नक्षत्रका प्रमाण १८ घटी १५ पल है तथा बुधवारको प्रतिपदा १५ घटी ३० पल है और पूर्वाषाढा २० घटी ३० पल है। इस स्थितिमें वीरशासन जयन्ती किस दिन मनाई जानी चाहिए।

मगलवारको पञ्चाङ्गमें अकित पूर्णिमा २०।१५ है। अतः अहोरात्र प्रमाणमेंसे पूर्णिमाको घटाया तो अनकित प्रतिपदाका प्रमाण हुआ—(६०—२०।१५) = ३९।४५ अनकित प्रतिपदा, इसमें पञ्चाग अकित प्रतिपदाको जोड़ा तो ३९।४५ + १५।३० = ५५।१५ कुल प्रतिपदा। किन्तु बुधवारको १५ घटी ३० पल ही प्रतिपदाका मान है। इस दिन नक्षत्र निकालना है कि कौन-सा पड़ता है। (६०।० – १८।१५ =

४१।४५ अनंकित पूर्वाषाढा, अतः ४१।४५ + २०।३० पंचाङ्ग अंकित =६२।१५ मूर्वाषाढाका कुल मान हुआ ; किन्तु बुधवारको २० घटी ३० पल ही पूर्वाषाढ़ा है। इसके पश्चात् उत्तराषाढाका आरम्भ हो जाता है। अतः बुधवार को (६०।०—२०।३०) = ३९।३० उत्तराषाढा है। बुधवारको श्रवण नहीं आ सकेगा, अतः श्रवणकी प्रथम चार घटियाँ हमे नहीं मिलेगी। ऐसी स्थितिमे अभिजित् नक्षत्र, जो कि उत्तराषाढ़ा और श्रवणके संयोगसे निष्णात होता है, गुरुवारको मिलेगा। इस दिन द्वितीया तिथि हो जायगी, ऐसी स्थितिमे वीर-शासन जयन्ती गुरुवार द्वितीयाको ही मनानी होगी। निष्कर्ष यह है *कि वीरशासन जयन्ती अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही सम्पन्न करना अधिक उचित है। यह काल मध्यममानसे प्रायः सर्वदा प्रातः ८-९ बजेके मध्यमे आयगा।* अतएव इसदिन भगवान् महावीर स्वामीका पूजन करना, उपवास करना तथा भगवान्के उपदेशोंके प्रचारके लिए सभा आदिका आयोजन करना चाहिए। साधारणतया जिसदिन प्रतिपदा पञ्चागमे उदयकालमे ही रहती है उस दिन प्रायः अभिजित् नक्षत्र भी आ ही जाता है। अतः यहाँ प्रतिपदाका मान उदयकालीन ही ग्रहण करना चाहिए। दो प्रतिपदाएँ होनेपर जो प्रतिपदा उदयकालमे १० घटी या इससे अधिक हो, उसीमे यह दिन पड़ता है। अतएव अभिजित् नक्षत्रके आनेपर ही प्रतिपदाको ग्रहण करना शास्त्रसम्मत है और यही धर्मतीर्थके प्रवर्तनका काल है।

भगवान् पार्श्वनाथ-का निर्वाण-दिवस भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाण-दिवस प्रायः सर्वत्र मनाया जाता है। भगवान् पार्श्वनाथके निर्वाणके सम्बन्धमे बताया गया है—

सिदसत्तमीपदोसे सावणमासम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे पासजिणो छत्तीसजुदो गदो मोक्खं॥

—तिलोयपण्णत्ती ४।१२०७

अर्थात्—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको

प्रदोष कालमे अपने जन्म-नक्षत्र विशाखाके रहते छत्तीस मुनियोंसे युक्त होते हुए सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए।

उत्तरपुराणमे इस गाथाकी अपेक्षा कुछ मतभिन्नता मिलती है—

षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्धं प्रतिमायोगमास्थितः।
श्रावणे मासि सप्तम्यां सिते पक्षे दिनादिमे॥
भागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात्।
गुणस्थानद्वये स्थित्वा सम्मेदाचलमस्तके॥
—उत्तरपुराण ३७।१५६-१५७

अर्थात्—श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन प्रातःकालके समय विशाखा नक्षत्रमे शुक्लध्यानके तीसरे और चौथे भेदोंका आश्रय लेकर उन्होने अनुक्रमसे तेरहवें और चौदहवे गुणस्थानमे स्थिर होकर श्रीसम्मेदशिखरपर समस्त कर्मोको क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

उपर्युक्त दोनों विवेचनोमे तिथि एक ही है, पर समयमे अन्तर है। अतः किस समय भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाणोत्सव किया जाय। विभिन्न स्थानोंमे विभिन्न प्रथाएं प्रचलित है, कही प्रातः निर्वाणोत्सव मनाया जाता है तो कही अपराह्नमे। यहाँपर तिलोयपण्णत्तीमे आये हुए प्रदोष कालपर विचार किया जाता है। ज्योतिषमे प्रदोष शब्दका अर्थ—"**प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते**" अर्थात् सूर्यके अस्त होनेके बाद दो घटिका समयको प्रदोषकाल कहते है। अमरकोषमें प्रदोषका अर्थ—"**प्रदोषो रजनीमुखम्**" अर्थात् रजनी—रात्रिके मुखभाग—आरम्भका नाम प्रदोष है। व्यवहारमे प्रदोष शब्दसे रात्रिके प्रथम प्रहरकी गणना की जाती है। किन्तु निर्णयसिन्धुमे प्रदोष समस्तरात्रिको बताया गया है। व्रत-विशेषोकी व्यवस्थाके लिए हेमाद्रि मतमे रात्रिके प्रथम प्रहरके साथ समस्त रात्रिको भी प्रदोषके अन्तर्भूत किया गया है।

भगवान् पार्श्वनाथके निर्वाणका काल यदि प्रदोपकाल मान भी लिया जाय तो भी निर्वाणोत्सव प्रातःकाल ही सम्भव है; क्योकि भगवान्ने रात्रिमे निर्वाणलाभ लिया है। उत्तरपुराणमें निर्वाणका समय "**दिनादिमे**"

अर्थात् उषाकाल माना गया है। यह निश्चित है कि तिलोयपण्णत्ती उत्तरपुराणसे पहलेकी रचना है तथा भगवान्के निर्वाणकालकी मान्यता प्रदोषकालकी अधिक प्रामाणिक है। प्रदोषकालमें निर्वाण होनेसे भी निर्वाणोत्सव जनतामें प्रातःकाल ही होता चला आ रहा होगा। इसी कारण उत्तरपुराणकारने भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाणकाल उषाकाल मान लिया है। अतएव भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाणोत्सव सप्तमी तिथिकी रात हो जानेपर अष्टमीके प्रातःकालमें होना चाहिए। यदि सप्तमीको विशाखा नक्षत्र मिल जाय तो और भी उत्तम है, अन्यथा सप्तमीकी समाप्ति होनेपर अष्टमीकी प्रातःवेलामें सूर्योदयसे पूर्व ही निर्वाणोत्सव सम्पन्न करना अधिक शास्त्रसम्मत है। यहाँ अष्टमी तिथिका आरम्भ नहीं माना जायगा; क्योंकि सूर्योदयके पहले तक सप्तमी ही मानी जायगी। इस प्रकारके उत्सवोंमें उदया तिथि ही ग्रहण की जाती है। जिन स्थानोंपर षष्ठीकी समाप्ति और सप्तमीके प्रातःमें निर्वाणोत्सव सम्पन्न किया जाता है, वह भ्रान्त प्रथा है। इसी प्रकार अपराह्नमें निर्वाणोत्सव मनाना भी भ्रान्त है।

रक्षा-बन्धन

रक्षाबन्धन पर्वकी कथा प्रायः विदित ही है। इस दिन ७०१ मुनियोंकी रक्षा होनेके कारण ही यह पर्व रक्षाबन्धनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। हरिवंशपुराणके बीसवें सर्गमें मुनि विष्णुकुमारका आख्यान आया है। रक्षाबन्धनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें उदया तिथि ही ग्रहण की गई है। इसका प्रधान कारण यह है कि उदयकालीन पूर्णिमा जिस दिन होगी, उस दिन श्रवण नक्षत्र आ ही जायगा। गणितका नियम इस प्रकार का है कि चतुर्दशीकी रात्रिको प्रायः श्रवण नक्षत्र आ ही जाता है। श्रुतसागर मुनिने मिथिलामें चतुर्दशीकी रात्रिको श्रवण नक्षत्रका कम्पन देखा था। आराधनाकथाकोशमें बतलाया गया है—

मिथिलायामथ ज्ञानी श्रुतसागरचन्द्रवाक्।
मुनीन्द्रो व्योम्नि नक्षत्रं श्रवणं श्रमणोत्तमः॥

कम्पमानं समालोक्य हाहाकारं विधाय च।
उपसर्गो मुनीन्द्राणां वर्तते महतां महान्॥

इससे स्पष्ट है कि श्रवण नक्षत्र चतुर्दशीकी रातमें प्रायः आ जाता है। गणितसे भी श्रवण चतुर्दशीके सन्ध्याकालमें आ ही जाता है। परन्तु यह चतुर्दशी भी उदया होनी चाहिए। उदयकालमें एकाध घटी होने पर भी चतुर्दशीकी रातमें श्रवण आ जायगा। अतः रक्षाबन्धन पूर्णिमाको श्रवणके रहते हुए सम्पन्न किया जायगा।

इस पर्वके दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजाके पश्चात् यज्ञोपवीत बदलनेकी क्रिया भी सम्पन्न की जाती है। बताया गया है—

श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे पूर्ववत्क्रियाम्।
पूर्वहोमादिकं कुर्यान्मौञ्जीं कव्याः परित्यज्येत्॥

श्रावण मासमें पूर्णिमाके दिन श्रवण नक्षत्रके होने पर हवन, पूजन आदिके पश्चात् यज्ञोपवीतको बदलना चाहिए। ज्योतिषशास्त्रमें भी आया है—

संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये।
स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः॥

हवन करते समय इस बातका ध्यान रखना होगा कि हवनके समयमें भद्रा न हो। भद्राकालमें हवन करना वर्जित है[1]। अतः पूर्णिमाको जिस समय भद्रा हो, उस कालका त्यागकर अन्य समयमें हवन क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। यदि प्रातःकाल भद्रा हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नोत्तर भद्रा होने पर प्रातः हवन कार्य कर लेना चाहिए।

१—भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

× × ×

नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते॥

साधारणतया भद्राके अभावमें हवन मध्याह्नोत्तरकालमें किया जाता है। बताया गया है **"ततोऽपराह्णसमये हवनकार्यं यज्ञोपवीतधारणकार्यञ्च करणीयं व्रतिकैः।"** अतः अपराह्णकालमें अर्थात् एक बजे हवनकार्यको सम्पन्न करना चाहिए।

यज्ञोपवीत बदलनेका मन्त्र यह है—

ओं नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

व्रती व्यक्तियोंको—रक्षाबन्धनपर्वका व्रत करनेवालोंको पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए। इस दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजा तथा अन्य गुरुओंकी पूजाके पश्चात् मध्याह्नमें हरिवंशपुराणका स्वाध्याय करना चाहिए। तीनों कालोंमें **"ओं ह्रीं अर्हं श्रीचन्द्रप्रभजिनाय कर्मभस्म-विधूननं सर्वशान्तिवात्सल्योपवर्द्धनं कुरु कुरु स्वाहा"** मन्त्रका जाप करना चाहिए। रात्रि-जागरण करते हुए भक्तामरस्तोत्रका पाठ एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्रका पाठ करना चाहिए। प्रातः प्रतिपदाके दिन नित्य कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजाके उपरान्त णमोकार मन्त्रकी तीन मालाएँ जपनी चाहिए। अनन्तर एक अनाज का भोजन—दूध-भात या भात-दही अथवा रोटी-दूधका आहार करना चाहिए। नमक, मीठा, फल और शाक-सब्जीका त्याग इस दिन करना होता है। केवल एक अन्नसे पारणा की जाती है। यह व्रत आठ वर्षों तक किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस दिन श्रेयांसनाथ भगवान्का निर्वाण भी हुआ है।

भाद्रपद मासमें अनेक पर्व और व्रत हैं, किन्तु उनका विवेचन व्रतोंके अन्तर्गत किया जायगा। इस महीनेके केवल वासुपूज्य

वासुपूज्य-निर्वाण दिवस

निर्वाणोत्सवकी व्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है। वासुपूज्य स्वामीके निर्वाणोत्सव-दिवसके सम्बन्धमें आचार्योंमें मतभिन्नता है। तिलोय-पण्णत्तीमें बताया गया है—

[१]फग्गुणबहुले पंचमि अवरह्ने अस्सिणीसु चंपाए।
एयाहियछसयजुदो सिद्धिगदो वासुपुज्जजिणो ॥

अर्थात् वासुपूज्य जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीके दिन अपराह्नकाल मे अश्विनी नक्षत्रके रहते छह सौ एक मुनियोसे युक्त होते हुए चम्पापुर से सिद्धिको प्राप्त हुए है।

उत्तरपुराणमे उपर्युक्त मान्यता दिखलाई पड़ती है। उसमे बतलाया गया है–

अग्रमन्दरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे।
वने मनोहरोद्याने पल्यङ्कासनमाश्रितः॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्नाचतुर्दश्यापराह्णके।
विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्णवतिसंयतैः॥
परिनिर्वाणकल्याणपूजाप्रान्ते महोत्सवैः।
अवन्दिषत ते देवं देवाः सेवाविचक्षणाः॥

—उत्तरपुराण पर्व ५८, श्लोक० ५२-५४

अर्थ—जब भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी आयुमे एक मास अवशेष रह गया तब योग निरोधकर रजतमालिका नामक नदीके किनारेकी भूमि पर वर्तमान मन्दरगिरिकी शिखरको सुशोभित करनेवाले मनोहरोद्यानमे पर्यङ्कासनसे स्थित हुए तथा भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अपराह्णके समय विशाखा नक्षत्रमे चौरानबे मुनियोके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए। सेवा करनेमे अत्यन्त निपुण देवोने निर्वाणकल्याणककी पूजाके उपरान्त बड़े उत्सवके साथ भगवान्की वन्दना की।

यद्यपि प्राचीनताकी दृष्टिसे वासुपूज्य स्वामीका निर्वाणोत्सव फाल्गुन कृष्ण पञ्चमीको ही मनाया जाना चाहिए; किन्तु ज्योतिषशास्त्रकी गणनाके अनुसार फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीको अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति नहीं घटित

२—तिलोयपण्णत्ती अधिकार ४, गाथा ११९६।
—निर्णयसिन्धु पृ० ९४।

होती है। क्योंकि यह नियम है कि प्रत्येक महीनेकी पूर्णमासीको उस महीनेका नक्षत्र अवश्य आ जाता है। पूर्णिमाओंके दिन पडनेवाले नक्षत्रोंके नामोंके आधारपर महीनोंका नामकरण किया गया है। जैसे चैत्र महीनेकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र पड़नेसे यह मास चैत्र कहलाया; अगली पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्र पड़नेसे अगला मास वैशाख कहलाया, इससे अगले महीनेकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र पड़नेसे वह अगला मास ज्येष्ठ हुआ। इसी प्रकार आगेके महीनोंका नाम भी पूर्णमासियोंके नक्षत्रोंके आधारपर रखा गया है। इस स्थितिके आधारपर विचार करनेसे अवगत होता है कि फाल्गुन पूर्णिमाको पूर्वाफाल्गुनीका अन्त और उत्तराफाल्गुनी का आरम्भ होना चाहिए। अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको आती है। अतः नक्षत्र और तिथिका समन्वय फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको हो जाता है। इस प्रकाशमें हम इस निष्कर्षपर भी पहुँचते हैं कि **'फग्गुणबहुले'** के स्थानपर **'फग्गुणसुक्के'** पाठ होना चाहिए, **'सुक्के'** के स्थानपर **'बहुले'** पाठ भ्रमसे रखा गया है।

अब उत्तरपुराणकी मान्यतापर विचार किया जाता है। उत्तरपुराणमें भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको विशाखा नक्षत्रके रहते हुए वासुपूज्य स्वामीका निर्वाण बतलाया गया है। ज्योतिषकी गणनानुसार विशाखा नक्षत्र भाद्रपद मासमें चतुर्दशीके दिन कभी नहीं पड सकता है। यह भाद्रपदमें सर्वदा शुक्ल पक्षकी पञ्चमी या षष्ठीको पडेगा। क्योंकि इस महीनेकी पूर्णिमा पूर्वाभाद्रपद या उत्तराभाद्रपदमें होगी। चतुर्दशीके दिन शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदमेंसे कोई भी नक्षत्र रह सकता है। सन्ध्या समय तो पूर्वाभाद्रपदकी स्थिति आ ही जाती है। अतः विशाखा नक्षत्र चतुर्दशीको कभी नहीं पडा होगा। उत्तरपुराणकी अन्य तिथियोंका मेल भी नक्षत्रोंके साथ नहीं बैठता है। तिलोयपण्णत्तीके प्रायः सभी नक्षत्र तिथियोंसे मिल जाते है। एकाध स्थलपर अशुद्ध पाठ आ जानेसे तिथि-नक्षत्रोंमें समन्वय नहीं हो पाता है, पर शुद्ध पाठ रख देनेसे समन्वय आ जाता है। अतः उत्तरपुराणकी मान्यता अशुद्ध मालूम पड़ती है। अथवा उत्तर पुराणके

पाठमे 'विशाखाया' के स्थानपर 'पूर्वाया' पाठ रखा जाय तो यह तिथि शुद्ध मानी जा सकती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वर्तमानकालमे समाजमे उत्तरपुराणकी मान्यताका ही प्रचार सर्वत्र क्यो दिखलायी पडता है ? तिलोयपण्णत्तीकी प्रथाका लोप क्यों हो गया ? इसके कई कारण है। सबसे पहला कारण तो यह है कि 'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ ही बहुत समयतक समाजके समक्ष नही आया। अमुद्रित रहनेके कारण सर्वसाधारण उससे अपरिचित ही रहे। दूसरी बात यह भी है कि तिलोयपण्णत्ती करणानुयोग का ग्रन्थ प्राकृत भाषामे है, अतः इसका स्वाध्याय प्रायः बन्द ही रहा। उत्तरपुराण पौराणिक ग्रन्थ है, अतः इसके स्वाध्यायका प्रचार सभी प्रकारके व्यक्तियोके बीच होता रहा। फलतः उत्तरपुराणकी मान्यता हिन्दीके कवियो, पाठको तथा अन्य समस्त व्यक्तियोतक फैल गई। जिसके फलस्वरूप आज समस्त निर्वाणोत्सव इसी ग्रन्थके आधारपर समाजमे प्रचलित है।

प्रचलित मान्यताके अनुसार इस निर्वाणोत्सवको चतुर्दशीकी सन्ध्याके समयमे सम्पन्न करना चाहिए। जिस दिन अपराह्णकालमे चतुर्दशी मिले, उसी दिन उत्सवको सम्पन्न किया जाय।

मेरा अपना अभिमत यह है कि समस्त निर्वाणोत्सव 'तिलोयपण्णत्ति' के अनुसार सम्पन्न करने चाहिए। जैनाम्नायमें उत्तर ग्रन्थोंकी अपेक्षा पूर्व ग्रन्थोको अधिक प्रामाणिक माना गया है। यदि कोई उत्तराचार्योका विषय पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नता रखता है, तो उस स्थितिमे पूर्वग्रन्थ ही प्रामाणिक है। उसीकी मान्यताके अनुसार कार्य सम्पन्न होना चाहिए। अतएव वासुपूज्य स्वामीका निर्वाण फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको सम्पन्न करना आगम सम्मत है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके निर्वाणलाभके दिन ही दीपमालिका उत्सव मनाया जाता है। भगवान् महावीरका निर्वाण कार्त्तिक-

दीपावली या महावीर-निर्वाणोत्सव कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम प्रहरमे स्वाति नक्षत्रके रहते हुए हुआ है। तिलोयपण्णत्ती, जयधवलाटीका, उत्तरपुराण, पुराणसारसग्रह, वर्द्धमानचरित्र, दशभक्ति, कन्नड वर्द्धमानपुराण आदि ग्रन्थोसे उपर्युक्त कथनकी सिद्धि होती है। *यथा*—

कत्तियकिण्हे चौदसिपच्चूसे सादिणामणक्खत्ते।
पावाए णयरीए एक्को वीरेसरो सिद्धो॥

—तिलोयपण्णत्ती अ० ४, गा० १२०८

पच्छापावाणयरे कत्तियमासस्स किण्ह-चोद्दसिए।
रत्तीए सेसरयं छेत्तु महावीरणिव्वाओ॥

—जयधवलाटीका

कृष्णकार्त्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये।
स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः॥

—उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लो० ५१०-५११

स्थित्वेन्दावपि कार्त्तिकासितचतुर्दश्यां निशान्ते स्थिते
स्वातौ सन्मतिराससाद भगवान् सिद्धिं प्रसिद्धश्रियम्॥

—असगकवि रचित वर्द्धमान च० पृ० ३८४

कार्त्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्॥

—निर्वाणभक्ति श्लो० १७

अतएव सिद्ध है कि भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाण कार्त्तिककृष्णा चतुर्दशीकी रातके अवसानमे ओर अमावस्याके प्रातःकालमे हुआ है। यहाँ निर्वाणका नक्षत्र स्वाति बताया गया है। ज्योतिषकी गणनानुसार स्वातिनक्षत्र चतुर्दशीकी रात्रिमे आता है। यह नक्षत्र उदयमे अमावस्याको और अस्तोपरान्त चतुर्दशीको नियमतः आरम्भ हो जाता है। भगवान्का निर्वाणोत्सव दो चतुर्दशियोंके होनेपर जो चतुर्दशी उदयकालमे ५ घटी प्रमाणसे कम होगी उसके प्रातः अर्थात् पूर्व चतुर्दशीकी रात्रिके अवसानमें

और द्वितीय चतुर्दशी, जो कि वस्तुतः अमावस्या है, उसके प्रातःकालमें मनाया जायगा। यहाँ सबसे बडी नियामक बात स्वाति नक्षत्रकी है, जिस दिन स्वातिका योग चतुर्दशीके अवसानमें प्राप्त हो, उसी दिन निर्वाणोत्सव सम्पन्न करना चाहिए। अमावस्याके उदयमें तो स्वाति आता है, पर राततक नहीं रहता है। अतएव चतुर्दशीके समाप्तिकालमें स्वाति नक्षत्रके रहनेपर यह उत्सव सम्पन्न किया जाता है। यहाँ तिथिका नियामक नक्षत्रको मानना चाहिए।

दीपावलीके दिन बहियोको बदला जाता है तथा लक्ष्मीकी पूजा भी करनेकी प्रथा हमारे समाजमें वर्तमान है। अतः यहाँ बही और लक्ष्मी पूजाके समयकी व्यवस्थापर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। लक्ष्मी पूजाका समय प्रदोषकाल माना गया है। बताया गया है—**"प्रदोष-समये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात्;" "दीपान् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि;" "प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या;" "प्रदोषस्य मुख्य-त्वादर्धरात्रेऽनुष्ठेयाभावाच्च"**। अर्थात् लक्ष्मीपूजा प्रदोप समयमें शुभ-लग्नमें करनी चाहिए। प्रदोष शब्दका अर्थ लक्ष्मी-पूजाके लिए रात्रिके प्रथम प्रहरके उपरान्त द्वितीय प्रहर पर्यन्त समय ग्रहण किया गया है। यदि इस दिन भद्रा हो तो भद्राके समयके उपरान्त तृतीय या चतुर्थ प्रहरमें भी पूजा की जा सकती है। लक्ष्मीपूजाका समय प्रत्येक वर्ष पृथक् निर्धारित करना होगा। साधारणतया यह पूजा ९ बजेके उपरान्त और दो बजेके बीचमें होती है। इसके लिए धनु लग्न सर्वोत्तम, कुम्भ मध्यम और मीन निकृष्ट है। उत्तम लग्न किसी कारणसे न मिले तो उत्तम लग्नका नवांश अवश्य लेना चाहिए।

दुकान या बड़े फर्मके बसना मुहूर्त—लक्ष्मी पूजन करनेके पूर्व अष्ट-द्रव्य तैयारकर चौकियोंपर रख ले। एक चौकीपर मंगल कलशकी स्थापना करे। गद्दीपर बही-खाता, दावात-कलम, नवीन वस्त्र, रुपयोंकी थैली आदि रखे। प्रथम मंगलाष्टक पढकर रखी हुई सभी वस्तुओंपर पुष्प अर्पण करे। अनन्तर

दीपावली-पूजाकी विधि

स्वस्ति विधान, देवशास्त्र-गुरुका अर्घ; पञ्चपरमेष्ठी पूजन, नवदेवपूजन, महावीर स्वामी पूजन, गणधर पूजन करे। अनन्तर बहियोंपर साथिया बनानेके उपरान्त **'श्री ऋषभाय नमः','श्री महावीराय नमः','श्री गौतम-गणधराय नमः' श्रीकेवलज्ञानसरस्वत्यै नमः'** और **'श्री लक्ष्म्यै नमः'** लिखकर **'श्रीवर्द्धताम्'** लिखे। अनन्तर निम्नाकारमे श्रीका पर्वत बनावे।

० श्री ०
० श्री श्री ०
० श्री श्री श्री ०
० श्री श्री श्री श्री ०
० श्री श्री श्री श्री श्री ०

थैलीमे स्वस्तिक बनानेका नियम

श्री

श्री वर्द्धमानाय नमः

इसके पश्चात् **"श्री देवाधिदेव श्री महावीरनिर्वाणात् २४८२तमे वीराब्दे श्री २०१३तमे विक्रमाब्दे १९५६ ईस्वीयसंवत्सरे शुभलग्ने स्थिरमुहूर्ते श्री जिनार्चनं विधाय अद्य कार्तिककृष्णामावास्यायां शुभवासरे लाभवेलायां नूतनवसनामुहूर्तं करिष्ये"** ।

सब बहियोंपर यह लिखकर पान, लड्डू, सुपाड़ी, पीली सरसो, दूर्वा और हल्दी रखे। पश्चात् **"श्री वर्द्धमानाय नमः, श्री महालक्ष्म्यै नमः, ऋद्धिः सिद्धिर्भवतुतराम्" केवलज्ञानलक्ष्मीदेव्यै नमः, मम सर्वसिद्धि-र्भवतु, काममांगल्योत्सवाः सन्तु, पुण्यं वर्द्धताम्, धनं वर्द्धताम्"** पढ़कर बही-खातोपर अर्घ चढ़ावे। अनन्तर मगल कलशवाली चौकीपर रुपयोकी थैलीको रखकर उसमे **"श्रीलीलायतनं महीकुलग्रहं कीर्तिप्रमो-दास्पदं वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्। सः स्यात्सर्वमहो-त्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिना-ङ्घ्रिद्वयम्"** ॥ श्लोक पढकर साथिया बनावे। पश्चात् लक्ष्मीपूजन[1] करे और लक्ष्मीस्तोत्र, पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करे।

---

१. यह पूजन हमारे पास है।

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर है। इस कालके वह सर्वप्रथम तीर्थप्रवक्ता है। उनके निर्वाण-दिवसका उत्सव सम्पन्न करना अत्यावश्यक है। भगवान् ऋषभदेव स्वामीके निर्वाण-दिवसके सम्बन्धमे तिलोयपण्णत्तीमे बताया गया है।

माघकृष्णा चतुर्दशी : ऋषभनिर्वाण दिवसोत्सव

माघस्स किण्ह चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते।
अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओ णोमि॥

—अधि० ४, गाथा ११८५

अर्थ—ऋषभनाथ तीर्थंकर माघकृष्णा चतुर्दशीके पूर्वाह्णकालमे अपने जन्म नक्षत्रके रहते—उत्तराषाढाके वर्तमान रहते कैलाश पर्वतसे दश हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उनको मै नमस्कार करता हूँ।

आदिपुराणमे भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये।
मुहूर्त्तेऽभिजिति प्राप्तपल्यङ्को मुनिभिः समम्॥
प्राग्दिङ्मुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रुद्धवान्।
योगत्रितयमन्त्येन ध्यानेन घातिकर्मणाम्॥

—आदि० पर्व ४७, श्लो० ३३८-३९

अर्थ—माघ कृष्णा चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय शुभ मुहूर्त्त और अभिजित् नक्षत्रमे भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर अनेक मुनियोंके साथ पर्यंकासनसे विराजमान हुए, उन्होने तीसरे सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनो योगोंका निरोध किया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया।

तिलोयपण्णत्ती और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी तिथि एक मानते है, निर्वाणका समय भी दोनोका एक ही है। केवल नक्षत्रोमे अन्तर है। तिलोयपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निर्वाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित् नक्षत्रको भगवान्‌का निर्वाण नक्षत्र मानते है। अभिजित् नक्षत्रकी ज्योतिषमे भोगात्मक रूपमे पृथक् स्थिति नही मानी गयी है; क्योंकि अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढाकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणकी आदिकी ४ घटियाँ, इस प्रकार कुल १९ घटी प्रमाण होता है। तिलोयपण्णत्तीमे उत्तराषाढाका जिक्र है, अतः यहाँ स्पष्ट है कि भगवान्‌का निर्वाण उत्तराषाढ़ाके अन्तिम चरणमे हुआ है। यही अन्तिम चरण अभिजित्‌मे आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा श्रवणका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी शुभत्वके कारण उत्तराषाढाके चतुर्थ चरण और श्रवणके प्रथम चरणकी सज्ञा अभिजित् की गयी है। अतएव दोनो कथनोंमे विरोध नही है। ज्योतिषकी गणनासे भी माघ-कृष्ण चतुर्दशीको उदयकालमे उत्तराषाढाकी समाप्ति आती है। अतः माघी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका आना निश्चित है, मघा उत्तराषाढ़ासे १६ वॉ नक्षत्र पडता है, माघ कृष्णा चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ वी संख्या है, अतः गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्णा चतुर्दशीको उत्तराषाढा नक्षत्र ही है।

निर्वाण-तिथियोंके लिए नियामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी घटा-बढीमे नक्षत्रोके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस

निर्वाणोत्सवमें धार्मिक विधेय कृत्य

दिन चतुर्दशीके प्रातःकालमे उत्तराषाढाका चतुर्थ चरण वर्तमान रहेगा, उसी दिन भगवान्‌का निर्वाणोत्सव मनाया जायगा। प्रातःकाल सूर्योदयके समय नित्य पूजनके उपरान्त भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। पश्चात् सिद्धभक्ति, श्रुत-भक्ति, चारित्र-भक्ति, योगि-भक्ति, निर्वाण-भक्ति या निर्वाण काण्ड पढ़कर पूजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए हवन क्रियाका आयोजन भी किया जा सकता है। सन्ध्या समय सभाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जीवन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन-धर्मकी प्राचीनता भगवान् ऋषभदेवके चरित्रसे स्पष्ट सिद्ध होती है।

भगवान् महावीर स्वामीका जन्मदिन महावीर जयन्तीके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान्का जन्म चैत्रशुक्ला त्रयोदशीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे हुआ था। तिलोयपण्णत्तीमे भगवान्के जन्मके सम्बन्धमे बताया गया है—

चैत्रशुक्ला त्रयोदशी : महावीर जयन्ती

सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं णयरम्मिकुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो॥

—ति० अ० ४, गाथा ५४९

अर्थ—भगवान् महावीर कुण्डलपुरमे पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणीसे चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे उत्पन्न हुए।

उत्तरपुराणमे भगवान्के जन्मदिनका वर्णन निम्नप्रकार है—

नवमे मासि सम्पूर्णे चैत्रे मासि त्रयोदशी।
दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणि नामनि।

—पर्व ४७ श्लो० २६२

अर्थ—नौवॉ मास पूर्ण होने पर चैत्रशुक्ल त्रयोदशीके दिन अर्यमा—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, शुभ योगमे भगवान् महावीरका जन्म हुआ।

निर्वाणभक्तिके निम्न श्लोकोसे भगवान्के जन्मकाल पर भी सुन्दर प्रकाश पडता है—

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे रवोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने॥
हस्ताश्रिते शशांके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम्॥

—नि. भ. श्लो. ५–६

अर्थ—भगवान् महावीरका जन्म चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे शुभलग्नमे, जब शुभग्रह उच्च राशिके थे; हुआ था। देवोने भगवान्का जन्मकल्याणक चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर था, पूर्वाह्णमे सम्पन्न किया।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि भगवान्का जन्म मध्यरात्रिके उपरान्त जब कि

शुभलग्न मकर विद्यमान थी, लग्नमे उच्चका मंगल स्थित था, गुरु केन्द्रका उच्चराशिस्थ था। अतएव महावीर जयन्तीके लिए वही त्रयोदशी ग्राह्य होगी, जो उदयकालमे विद्यमान हो। यहॉ यह आवश्यक नही है कि उसे उदयकालमे छः घटी या इससे अधिक होना चाहिए। भगवान्‌का जन्मकाल उदया तिथिकी अपेक्षा ही आचार्योंने वर्णित किया है। अतः उदयकालमें एकाध घटी रहने पर भी जयन्तीके लिए तिथिका ग्रहण कर लेना चाहिए। वस्तुतः भगवान्‌का जन्म तो रातमें आधी रातके कुछ ही उपरान्त हुआ है। इसी कारण देवोने उनका जन्मकल्याणक चतुर्दशीको सम्पन्न किया है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके चतुर्थ चरणमे भगवान्‌का जन्म हुआ है और उनका अभिषेक हस्त नक्षत्रके द्वितीय चरणमे सम्पन्न किया गया है। अतः जयन्तीके लिए ग्राह्य तो वही त्रयोदशी है, जिसमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़े। यह स्थिति ज्योतिषकी गणनानुसार प्रायः उदया त्रयोदशीको आ जाती है, अतएव यहाँ व्रत तिथिके अनुसार इसे छः घटीसे अल्प होने पर द्वादशीको त्रयोदशी नही मान लेना चाहिए; अपितु जिस दिन उदयकालमे त्रयोदशी हो, उसी दिन जयन्ती सम्पन्न करना चाहिए।

अक्षय तृतीया

वैशाख शुक्ला तृतीया अक्षय तृतीया कहलाती है। भगवान् ऋषभदेवने एक वर्ष और कुछ दिनोंके उपरान्त हस्तिनापुरके राजा श्रेयान्सके यहॉ इक्षुरसका आहार ग्रहण किया था। भगवान्‌के आहार ग्रहणके कारण उनकी भोजनशालाका भोजन अक्षय बन गया था, इसीलिए यह तिथि अक्षय तृतीया कहलाती है। भगवान्‌का यह पारणा दिवस इतना प्रसिद्ध हुआ है कि लोकविजय यन्त्र जैसे प्राचीन ग्रन्थका गणित इसी दिनको आदि दिन मानकर किया गया है। बताया गया है—

सिरि-रिसहेसर सामिय पारणयारब्भ गणियपुव्वंकं।
दिस इयरेहिं ठवियं जंतं देवाण सारमिणं॥

अर्थ—यह वक्ष्यमाण यन्त्र, जो कि भगवान् ऋषभदेव स्वामीके

पारणा समयसे—अक्षय तृतीयाके दिन उनकी प्रथम पारणा ग्रहणकी वेलासे गणित करके दिशा-विदिशाओंमें स्थापित किये हुए ध्रुवाकोंको लिये हुए है, यह देवोंका सार है—दैवाधीन घटनाओंका सूचक है।

यह तिथि भी उदया ग्राह्य है। जिस दिन उदयकालमें उक्त तृतीया हो, उसी दिन अक्षय तृतीयाका उत्सव सम्पन्न करना चाहिए। दान देना, पूजा करना, अतिथिसत्कार करना आदि विधेय कार्योंको इस तिथिमें करना चाहिए।

श्रुतपञ्चमी

श्रुतपञ्चमी पर्व अत्यन्त प्रसिद्ध पर्व है। यह पर्व ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको सम्पन्न किया जाता है। इस दिन षट्खण्डागमका प्रणयन समाप्त हुआ था। चतुर्विध संघने मिलकर आगमकी पूजा की थी तथा उत्सव सम्पन्न किया था। बताया गया है कि सौराष्ट्र देशके गिरिनारपर्वतकी चन्द्रगुफामें आचार्य धरसेनने आषाढ़ शुक्ला एकादशीके प्रभातमें भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनीन्द्रोंको आगम साहित्य पढ़ाया था। गुरुदेवके दिवंगत होनेपर उस शिष्य युगलने कर्म साहित्यपर षट्खण्डागम सूत्रकी रचना आरम्भ की। बीचमें ही पुष्पदन्त आचार्यके भी किसी कारणसे पृथक् हो जानेपर भूतबलिने ही अवशेष ग्रन्थको समाप्त किया। यह ग्रन्थराज ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको पूर्ण हुआ तथा इसी दिन इसकी अर्चना की गई। श्रुतावतार कथामें आचार्य इन्द्रनन्दिने बतलाया है—

ज्येष्ठसितपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम्॥
श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परमाप।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः॥

—श्रुतावतार श्लो० १४३–१४४

अर्थात्—ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीको चतुर्विध संघने बड़े वैभव और उत्साहके साथ जिनवाणी माताकी पूजा की थी। तभीसे यह पर्व श्रुत-

पञ्चमी नामसे प्रख्यात हो गया है। आज भी जैन समाजमे इस दिन श्रुतपूजा की जाती है।

इस तिथिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे इतना ही जान लेना आवश्यक है कि जिस दिन उदयकालमे छः घटी प्रमाण यह तिथि मिलेगी, उसी दिन श्रुतपञ्चमी पर्व सम्पन्न किया जायगा। यदि उदयकालमे छः घटी प्रमाण तिथि न मिले तो उससे पूर्व दिन ही पञ्चमी मान ली जायगी। मात्र उदया तिथिको श्रुत पञ्चमी नही कहा जा सकता है। क्योंकि चतुर्विध संघ पूजा या व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथिको, तबतक ग्राह्य मानता है, जबतक अपवाद रूप विशेष विधान नही होता। इस दिन श्रुत पूजाके साथ सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करें। विशेष विधान करना हो तो निम्न मन्त्रकी १०८ आहुतियॉ देनी चाहिए।

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्र-प्रज्वलिते सरस्वति अस्माकं पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसम्भवे वं वं हूं हूं फट् स्वाहा।

व्रत और पर्व विचार

जीवन शोधनके लिए व्रतोकी आवश्यकता है। समस्त श्रावकाचार और मुन्याचार व्रताचरण रूप ही है। तपश्चरण भी व्रतान्तर्गत ही है। प्रारम्भमे उपवास तपश्चरणको सम्पन्न करनेके लिए अनेक प्रकारके व्रतोका विधान किया गया है। व्रत शब्दकी परिभाषा सागारधर्मामृतमे निम्न प्रकार बतलायी गयी है।

संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभकर्मणः।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभकर्मणि॥ सागार० अध्याय २

अर्थात्—सेवन करने योग्य विषयोमे संकल्पपूर्वक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मोसे सकल्पपूर्वक विरक्त होना अथवा पात्रदानादिक शुभ कर्मोमे सकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

रत्नत्रय, दशलक्षण, अष्टाह्निका, षोड़शकारण, मुक्तावली, पुष्पा-

ञ्जली आदि व्रतोंके सम्पन्न करनेसे आत्मनिर्मलताके साथ महान् पुण्य का बन्ध होता है। आचार्य वसुनन्दीने अपने श्रावकाचारमें व्रतोंके फलों का निरूपण करते हुए लिखा है—

फलमेयस्से मोत्तूण देव-मणुएसु इंदियजसुक्खं।
पच्छा पावइ मोक्खं थुणिज्जमाणो सुरिं देहिं॥

रत्नत्रय, षोड़शकारण, जिनगुण सम्पत्ति, नन्दीश्वरपक्ति, विमानपक्ति आदि व्रतोंके पालन करनेके फलसे यह जीव देव और मनुष्योंमें इन्द्रिय जनित सुख भोगकर, पश्चात् देवेन्द्रोंसे स्तुति किया जाता हुआ मोक्षपद प्राप्त करता है।

व्रताचरणकी आवश्यकतापर जोर देते हुए लिखा गया है—

व्रतेन यो विना प्राणी पशुरेव न संशयः।
योग्यायोग्यं न जानाति भेदस्तत्र कुतो भवेत्॥

व्रत रहित प्राणी निस्सन्देह पशुके समान है। जिसे उचित-अनुचितका ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशुमें क्या भेद है? अतः व्रतविधान करना प्रत्येक नर-नारीके लिए आवश्यक है।

व्रतोंके भेद-प्रभेद

शास्त्रकारोंने व्रतोंके प्रधान नौ भेद बतलाये हैं। उनके नाम इसी ग्रन्थमें निम्न प्रकार है—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवसिकानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति नवधा भवन्ति।

अर्थात्—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ ये नौ भेद व्रतोंके है। निरवधि व्रतोंमें कवलचन्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली आदि है। सावधि व्रत दो प्रकारके होते है—तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वात्रिंशत्भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशतिभावना और णमोकार पञ्चत्रिंशत्भावना आदि है। दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंमें दुःखहरणव्रत, धर्मचक्रव्रत, जिनगुणसम्पत्ति,

सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुतिकल्याणक, चन्द्रकल्याणक आदि हैं। दैवसिकव्रतोंमे दिनकी प्रधानता रहती है, पर्वतिथियों तथा दशलक्षण रत्नत्रय आदि दैवसिकव्रत हैं। आकाशपञ्चमी जैसे व्रत नैशिक माने जाते हैं। जिन व्रतोकी अवधि महीनेकी होती है, वे मासिक कहे जाते है जैसे षोडशकारण, मेघमाला आदि मासिक है। जो व्रत किसी अभीष्टकामनाकी पूर्तिके लिए किये जाते है, वे काम्य और जो निष्काम रूपसे किये जाते है वे अकाम्य कहलाते है। काम्यव्रतोमे सकटहरण, दुःखहरण, धनदकलश आदि व्रतोकी गणना है। उत्तम व्रतोंमे सिहनिष्क्रीडित, भाद्रवनसिहनिष्क्रीडित, सर्वतोभद्र आदि है। अकाम्योमे कर्मचूर, कर्मनिर्जरा, मेरुपक्ति आदि हैं।

व्रतोंका विकास

व्रतोंकी सख्या आरम्भमे बहुत थोडी थी। पौराणिक साहित्यमे व्रतोकी सख्याका विकास स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। पद्मपुराण और आदि-पुराणमे श्रावकाचार और श्रावकोके व्रतोका उल्लेख, दशलक्षण, रत्नत्रय, षोड़शकारण और अष्टाह्निका व्रतों के पालनके रूपमे ही हुआ है। श्रावकाचारोमे रत्नकरण्डश्रावकाचार, अमितगतिश्रावकाचार, सागारधर्मामृत, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा, गुणभूषणश्रावकाचार और लाटी सहितामे मूलगुण, बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमा और सल्लेखनाका ही निरूपण है, व्रतोका नहीं। पुराणोमे सबसे प्रथम हरिवशपुराणमे और श्रावकाचारोमे वसुनन्दिश्रावकाचारोमे कुछ प्रमुख व्रतोकी विवेचना की गयी है। वसुनन्दिश्रावकाचारमे पञ्चमीव्रत, रोहिणीव्रत, अश्विनीव्रत, सौख्यसम्पत्तिव्रत, नन्दीश्वरपक्ति व्रत और विमानपक्ति व्रत इन छः व्रतोका उल्लेख मिलता है। हरिवशपुराणमे सुप्रतिष्ठके नानाविध उपवासोका वर्णन करते हुए सर्वतोभद्र, वसन्तभद्र, महासर्वतोभद्र, रत्नावली, उत्तम मध्यम-जघन्य सिहनिष्क्रीड़ित आदि महोपवासोका वर्णन किया है। धवलाटीकामे आचार्य वीरसेनने भी उपवासोंकी उग्रताका विवेचन किया है। हरिवशपुराणमे बतलाया गया है—

तपोविधिविशेषैः स सर्वतोभद्रपूर्वकैः ।
वपुर्विभूषयाञ्चक्रे सिंहनिःक्रीडितोत्तरैः ॥

श्रवणादपि पापघ्नानुपवासमहाविधीन् ।
शृणु यादव ! ते वच्मि समाधाय मनःक्षणम् ॥
एकादिपूपवासेषु पञ्चान्तेषु यथाक्रमम् ।
अन्तयोः कृतयोरादौ शेषमंगसमुद्भवे ॥
कल्पितश्चतुरस्रोऽयं प्रस्तारः पञ्चमङ्गकः ।
सर्वतोऽप्युपवासाश्च गण्याः पञ्चदशाऽत्र हि ॥
पञ्चभिर्गुणितास्ते स्युः संख्यया पञ्चसप्ततिः ।
ताडिताः पञ्चभिः पञ्च पारणाः पञ्चविंशतिः ॥
सर्वतोभद्रनामायमुपवासविधिः कृतः ।
विद्यते सर्वतोभद्रं निर्वाणाभ्युदयोदयम् ॥
पञ्चादिषु नवान्तेषु भद्रोत्तरवसन्तकः ।
विधिस्तत्रोपवासास्तु प ञ्चत्रिंशत्समं परम् ॥

इससे सिद्ध है कि उपवासोंके सुनने और उनके अनुष्ठान करने मात्रसे पापोंका ध्वंस होता है, आत्मामें पुण्यका सञ्चय होता है। उपवास कर्म निर्जराके भी हेतु हैं। वीरसेनाचार्यने कर्मनिर्जराके लिए किये गये उग्र-तपश्चरणमें ही उपवासोंका वर्णन किया है। अतः संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंके आर्षग्रन्थोंमें थोड़ेसे ही व्रतोंका उल्लेख मिलता है। आराधना कथाकोश; हरिषेणकथाकोशमें भी महत्त्वशाली रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, दशलक्षण, पुष्पाञ्जलि, जैसे प्रमुख व्रतोंको सम्पन्न करके पुण्यार्जन करनेवाले व्यक्तियोंकी कथाएँ ही उपलब्ध हैं। भट्टारकों-द्वारा विरचित व्रतोद्यापनोंमें दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, पुष्पाञ्जलि, अनन्तव्रत, रविवारव्रत, नवग्रहव्रत, कवलचान्द्रायण, चतुर्दशी, सुगन्धदशमी, ऋषिपञ्चमी, कर्मचूर, चन्दनषष्ठी, मुकुटसप्तमी, निश्शल्य अष्टमी, रोट तीज, रोहिणी प्रभृति व्रतोंकी उद्यापन विधि बतलायी गयी है। इन समस्त उद्यापनोंका रचनाकाल चौदहवीं शतीसे सोलहवीं शती तकका है। कतिपय व्रतोंका उद्यापन-विधान ईडरसे प्रकाशित हुआ है। श्री जैनसिद्धान्तभवन आराके हस्तलिखित गुटकेमें लगभग २४-२५ व्रतो-

द्यापन सग्रहीत हैं। व्रतविधिके लिए सस्कृत और प्राकृत साहित्यमे कोई एक ग्रन्थ नही है, जिसके आधारपर व्रतोके स्वरूप, उनकी विधेय तिथियों, उनके अनुष्ठान, जाप्य मन्त्र, पारणामे ग्रहण की जानेवाली वस्तुका परिज्ञान किया जा सके। यह एक कमी थी। यद्यपि फुटकर रूपमे पुराणों, कथाग्रन्थो, श्रावकाचारो, उद्यापनों आदिमे व्रतोके सम्बन्धमे पूरी सामग्री वर्तमान है, तो भी एक प्रामाणिक ग्रन्थकी कमी थी। हिन्दीमे किसन सिहने अपने क्रियाकोशमे व्रतोका सविस्तार वर्णन कर बहुत अशोमे यह कमी पूरी की है। सन् १९५२ मे 'जैन व्रत विधान-संग्रह' श्री पं० बारेलालजी द्वारा सकलित प्रकाशित हुआ है। इन सभी ग्रन्थोंमे तिथि और व्रत व्यवस्थाका उतना सागोपाग विवेचन नही है जितना चाहिए। विधेय तिथियोके ऊपर निर्णयात्मक दृष्टिसे प्रकाश डालना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थमे तिथियोंकी व्यवस्थापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

नवीन वर्षका आरम्भ वीरशासनजयन्तीसे माना जाता है; अतः श्रावण माससे व्रतोंकी गणना करनी चाहिए। श्रावणमासमे वीरशासन-जयन्तीव्रत, अक्षयनिधि, गरुडपञ्चमी, षष्ठीव्रत, मोक्षसप्तमी, अक्षयफल-दशमी, द्वादशीव्रत और रक्षाबन्धन आते हैं। वीरशासनजयन्तीकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे विचार किया जा चुका है। इस व्रतको उसी दिन सम्पन्न करना होता है। इस दिन उपवास किया जाता है तथा पूजाके अनन्तर 'ओं श्रीमहावीरस्वामिने नमः' इस मन्त्रका जाप तीनो काल किया जाता है।

अक्षयनिधिव्रत श्रावणशुक्ला नवमीको पूजा स्वाध्यायके पश्चात् धारण करे। इन दिन एकाशनकर सयमका अभ्यास करे। श्रावणशुक्ला दशमी, जिस दिन उदयकालमे छः घटी हो उस दिन उपवास करे। दिनको धर्मध्यानपूर्वक बिताकर, रात्रि जागरण करे। श्रावणशुक्ला एकादशीसे भाद्रपद कृष्णनवमी तक एकाशन करे। अनन्तर दशमीका उपवास कर, पूर्वोक्त रीतिसे धर्मध्यानपूर्वक रात्रि बिताकर एकादशीको एकाशन करे।

द्वादशीसे दोनों समय भोजन करे। यह व्रत दशवर्षतक किया जाता है। इसमें त्रिकाल णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रत्येक व्रतकी धारणा और विसर्जनके समय इसी ग्रन्थमें वर्णित अष्टाह्निकाव्रतमें बतलाये गये संकल्प मन्त्रोंको बतलायी गयी विधिके अनुसार करना चाहिए।

अक्षयफल दशमी व्रत भी श्रावणशुक्ला नवमीको एकाशन कर धारण करना चाहिए और शुक्ला दशमीका उपवास कर धर्मध्यानपूर्वक दिन व्यतीतकर रात्रि-जागरण करना चाहिए। दिनमें तीनों काल **'ओं ह्रीं वृषभजिनाय नमः'** इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। दस वर्षतक इस व्रतका पालन कर उद्यापन किया जाता है। व्रतकी तिथि छःघटी प्रमाण उदयमें होनेपर ही ग्रहण की जाती है, अन्यथा पहले दिन व्रत सम्पन्न किया जाता है।

मोक्षसप्तमी व्रत श्रावणशुक्ला षष्ठीके दिन ग्रहण कर एकाशन किया जाता है। सप्तमीको धर्मध्यानपूर्वक उपवास करे। अष्टमीको पारणा करे। यह व्रत सातवर्षोंमें पूर्ण होता है। इसमें **'ओं ह्रीं पार्श्वनाथाय नमः'** मन्त्रका त्रिकाल जाप करना चाहिए। व्रतके लिए तिथि यहाँ भी छःघटी प्रमाण ही ग्रहण की गयी है।

गरुडपञ्चमी व्रत श्रावणशुक्ला चतुर्थीको एकाशन पूर्वक धारणकर पञ्चमीका उपवास विधिपूर्वक करना चाहिए। पाँच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। त्रिकाल **'ओं ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः'** मन्त्रका जाप करे।

मनोकामना सिद्ध करनेके लिए श्रावणशुक्ला षष्ठीका व्रत किया जाता है। यह व्रत पञ्चमीको एकाशनपूर्वक धारण किया जाता है। धारण करनेके दिन जिनालयमें आकर नित्य नियम पूजा करनेके उपरान्त भगवान् नेमिनाथकी पूजाके साथ भक्तामर और कल्याणमन्दिर स्तोत्रोंका पाठ करे। तथा इसी दिनसे **'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथायनमः'** इस मन्त्रका जाप करे। षष्ठीके दिन उपवास करे, पञ्चमीके समान पूजन-पाठ करे, धूप देकर भक्तामर स्तोत्रका पाठ करे और त्रिकाल **'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथाय**

नमः' इस मन्त्रका जाप करे। सप्तमीके दिन पारणा करे। पारणामें केवल एक ही अनाज रहना चाहिए। छः वर्षतक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। तिथिका मान छःघटी ही लेना चाहिए।

रक्षाबन्धनकी व्यवस्था पर पूर्वमे प्रकाश डाला जा चुका है। इस दिन उपवास करना तथा "ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमाराय नमः" मन्त्रका जाप करना चाहिए।

भाद्रपदमास अत्यन्त पवित्र है। इस महीनेमे सबसे अधिक व्रत आते है। बताया गया है कि इस महीनेमे दशलक्षण, षोडशकारण, रत्नत्रय, पुष्पाञ्जलि, आकाशपञ्चमी, सुगन्धदशमी, अनन्तचतुर्दशी, श्रुतस्कन्धव्रत, निर्दोषसप्तमी, चन्दनषष्ठी, तीसचौबीसी, जिनमुखावलोकन, रुक्मिणीव्रत, निःशल्यअष्टमी, दुग्धरसी, धनदकलश, शीलसप्तमी, नन्दसप्तमी, काँजी-बारस, लघुमुक्तावली, त्रिलोकतीज, श्रवणद्वादशी और मेघमाला व्रत सम्पन्न किये जाते है। इसी कारण मल्लिपुराणमे कहा गया है—

अहो भाद्रपदाख्योऽयं मासोऽनेकव्रताकरः।
धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥

अर्थात्—जिस प्रकार मनुष्योमे श्रेष्ठ राजा माना जाता है, उसी प्रकार समस्त मासोमे भाद्रपदमास श्रेष्ठ है; क्योकि यह अनेक प्रकारके व्रतोका स्थान स्वरुप है और धर्मका प्रधान कारण है।

पर्यूषणकी व्यवस्था

इस पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे होता है। पर्यूषणका आरम्भ दिन सृष्टिका आदि दिन है। क्योकि छठवे कालके अन्तमे भरत और ऐरावतमे खण्ड प्रलय होता है। बताया गया है—

संवत्तयणामणिलो गिरितरुभूपहुदि चुण्णणं करिय।
भमदि दिसंतं जीवा मरंति मुच्छंति छट्ठंते ॥
छट्ठमचरिमे होंति मरुदादी सत्तसत्त दिवसवट्ठी।
अदिसीदखारविसयसग्गीरजभूमवरिसाओ।

तेहिंतो सेसजणा णस्संति विसग्गिवरिसदड्ढमही ।
इगिजोयणमेत्तमधो चुण्णीकिज्जदि हु कालवसा ॥
त्रिलोकसार गाथा ६४–६७

अर्थात्—छटवे कालके अन्तमें संवर्त नामक पवन पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदिको चूर्णकर समस्त दिशा और क्षेत्रमें भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मूर्च्छित हो जाते हैं। विजयार्धकी गुफामें रक्षित ७२ युगलोंके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अन्तमें पवन, अत्यन्त शीत, क्षार रस, विष, कठोर अग्नि, धूलि और धुँआकी वर्षा एक-एक सप्ताहतक होती है। इसके पश्चात् उत्सर्पणीकालका प्रवेश होता है। अर्थात् छटवे कालके अन्त होनेके ४९ दिन पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

छटवें कालका अन्त आषाढी पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रके होनेपर होता है। अतः आषाढी पूर्णिमाके अनन्तर श्रावणी प्रतिपदासे ४९ दिनोंकी गणना की तो, इनकी समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमी उत्सर्पण और अवसर्पणके आरम्भका दिन हुआ। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छहों कालों—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषम-दुःषमा, दुःषमा, सुषमादुःषमा, और दुःषमा-दुःषमाका अन्त सदा आषाढी पूर्णिमाको होता है। अतः सृष्ट्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीका दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पर्व आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी है और समाप्तितिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। बीचमें किसी तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्तिकी तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिस दिन घट्यादिके प्रमाणानुसार व्रतके लिए चतुर्दशी मानी जायगी, उसी दिन इस पर्वकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्यक्ति पूर्णिमाको संयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनोंमे शुक्लपक्षकी चतुर्थीको सयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पूर्ण कर पूर्णिमाको संयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम मार्ग तो यही है कि दस उपवास किये जायं। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी इन चार दिनोंमे उपवास और शेष छः दिनोंमे एकाशन करना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम विधि है। अन्य सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमे किया ही गया है। अतः समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमे अगले प्रकरणो-द्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

विधि

अष्टमी और चतुर्दशीको पर्व तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशियोंको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इन तिथियोंके व्रत उदयकालमे छः घटीसे अल्प रहने पर पहले दिन किये जाते है। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मध्यान पूर्वक इन व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रती श्रावकको अष्टमीके दिन[1] सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र भक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीको सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पञ्चगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिए[2]। जिस व्यक्तिको केवल अष्टमीका व्रत परिमितकालके लिए करना हो, उसे उपवासपूर्वक **'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धाधिपतये नमः'** का त्रिकाल जाप करना चाहिए। आठ वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करनेवाले आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी प्रत्येक त्रयोदशीको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

पर्वतिथियाँ

---

१. अष्टम्यां सिद्ध-श्रुत-चारित्र-शान्तिभक्तयः।

२. सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुरुस्तुतिः।
शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया॥

—संस्कृत क्रियाकाण्ड

पूर्णिमाको पारणा की जाती है। **'ओं ह्रीं अनन्तनाथाय नमः'** इस मन्त्रका त्रिकाल जाप किया जाता है। १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए।

व्रतोंके उद्यापन

व्रत-विधान अवगत हो जानेपर उनके उद्यापनकी विधिका जान लेना आवश्यक है। सम्यक् प्रकार व्रतानुष्ठानके पश्चात् उद्यापन कर देने पर ही व्रतोंका फल प्राप्त होता है। उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है।

इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमाको किया जाता है अथवा पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर कभी भी किया जा सकता है। उद्या-

रत्नत्रय व्रतके उद्यापनकी विधि

पन करनेके दिन श्री मन्दिरजीमें जाकर सर्वप्रथम एक गोल चौकी या टेबुलपर रत्नत्रय व्रतोद्यापनका मण्डल (माडना) बनाना चाहिए। चौकी चार फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी होनी चाहिए। चौकीपर श्वेत-वस्त्र बिछाकर लाल, पीले, हरे, नीले और श्वेत रंगके चावलोंसे मण्डल बनाना चाहिए। इस मण्डलमें कुल ९३ कोठे होते हैं। मण्डल गोलाकार बनता है। मण्डलके बीचमें **'ओं ह्रीं रत्नत्रयव्रताय नमः'** लिखे। इसके पश्चात् दूसरा मण्डल सम्यग्दर्शनका होता है, इसके बारह कोठे हैं। तीसरा मण्डल सम्यग्ज्ञानका होता है, इसके ४८ कोठे हैं। चौथा मण्डल सम्यक् चारित्र का होता है, इसके ३३ कोठे हैं।

मन्दिरमें सर्वप्रथम भगवान्‌के अभिषेकके लिए जल लानेकी क्रिया करे। जलयात्राकी विधि[1] यहाँ दी जाती है। जल लानेके उपरान्त महा-

---

१. समस्त उद्यापनोंके लिए जलयात्राका विधान यह है कि सौभाग्यवती स्त्रियाँ घरसे तूलमें लिपटे और कलावासे सुसंस्कृत नारियलोंसे ढके कलश जलाशयके पास ले जावें। जलाशयके पूर्व भाग या उत्तर भागमें भूमिको जलसे धोकर पवित्र करे। पश्चात् उस भूमिपर चावलोंका चौक बनाकर, चावलोंका पुञ्ज रखे और कलशोंको उन पुञ्जोंपर

स्थापित कर दिया जाय। चौकके चारों कोनोंपर दीपक जलाना चाहिए। पश्चात् निम्न विधानकर कुँएसे जल निकाला जाय।

पद्मापादनतो महामृतभवानन्दप्रदाना नृणां
जैनो मार्ग इवावभासिविमलो योगीव शीतीभवन्।
जैनेन्द्रस्तपनोचितोदकतया क्षीरोदवत्तत्सतां
पूज्यं त्वां शुभशुद्धजीवननिधिं कासारसंपूजये ॥१॥

ओं ह्रीं पद्मकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। पढ़कर जलाशय—कुँए पर अर्घ चढावे।

श्रीमुख्यदेवीः कुलशैलमूर्धपद्मादिपद्माकरपद्मसक्ताः।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। यहाँसे जलाशय पूजा करे।

गङ्गादिदेवीरतिमङ्गलाङ्गा गङ्गादिविख्यातनदीनिवासाः।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥३॥

ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपा०।

सीतानदीविद्धमहाह्रदस्थान् ह्रदेश्वरान्नागकुमारदेवान्।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥४॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं नि०।

सीतोत्तरामध्यमहाह्रदस्थान् ह्रदेश्वरान्नागकुमारदेवान्।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥५॥

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रददेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं नि०।

क्षीरोदकालोदकतीर्थवर्तिश्रीमागधादीनमरानशेषान्।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥६॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्य नि०।

सीतातदन्यद्वयतीर्थवर्तिश्रीमागधादीनमरानशेषान्।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्मे ॥७॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्यः जलादि अर्घ्यं०।

समुद्रनाथांल्लवणोदमुख्यसंख्याव्यतीताम्बुधिभूतिभोक्तृ ।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥८॥
ओं ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः जलादि अर्घ्यं० ।
लोकप्रसिद्धांत्तमतीर्थदेवान्नन्दीश्वरद्वीपसरःस्थितादीन् ।
पयःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥९॥
ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं० ।
गङ्गादयः श्रीमुखाश्च देव्यः श्रीमागधाद्याश्च समुद्रनाथाः ।
ह्रदेशिनोऽन्येऽपि जलाशयेशास्ते सारयन्त्वस्य जिनोचिताम्भः ॥

उपर्युक्त श्लोकको पढकर कुँएसे जल निकालना आरम्भ करना चाहिए और जलको छानकर एक बडे बर्तनमें रख लेना, पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर कलशोंमें जल भरना चाहिए।

ओं ह्रीं श्री ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-शान्तिपुष्टयः श्रीदिक्कुमार्यो जिनेन्द्रमहाभिषेककलशमुखेष्वेतेषु नित्यविशिष्टा भवत भवत स्वाहा ।

तीर्थैर्नानेन तीर्थान्तरदुरधिगमोदारदिव्यप्रभावः
स्फूर्जत्तीर्थोत्तमस्य प्रथितजिनपतेः प्रेपितप्राभृताभान् ।
श्रीमुख्यख्यातदेवीनिवहकृतमुखाद्यम्मनोद्भूतशक्ति—
प्रागल्भ्यानुद्धरामो जयजयनिनदे शातकुम्भीयकुम्भान् ॥

इस श्लोकको पढकर जलशुद्धि विधानपूर्वक करे। विसर्जन करके जल-कलशोंको सौभाग्यवती स्त्रियां अथवा कन्याओं द्वारा ले आना चाहिए। कलशोंकी संख्या ९ रहती है।

जल लाकर भगवान्‌का अभिषेक करना चाहिए। अभिषेकके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर केशर मिश्रित जलधारा छोडनी चाहिए।

ॐ ह्री श्री क्ली ऐं अर्हं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेपदोष-कल्मपाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्न-प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामरकामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा पवित्रतर-गन्धोदकेन जिनमभिषिञ्चामि । मम सर्वशान्ति कुरु कुरु तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा ।

भिषेक, तदनन्तर स्वस्ति मङ्गल विधान करे। पश्चात् सकलीकरणकी क्रिया करनी चाहिए। यह सकलीकरणकी क्रिया स्नानोपरान्त जलयात्राके पूर्व भी की जा सकती है। परन्तु उत्तम मार्ग यही है कि जलयात्राके उपरान्त सकलीकरण क्रिया की जाय। इसके पश्चात् मङ्गलाष्टक, सहस्रनाम आदि स्वस्ति विधान एवं रत्नत्रय व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। पूजनके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर संकल्प छोड़ना चाहिए। संकल्पमें अक्षत, सुपाड़ी, हल्दी, पीली सरसों और एक पैसा रहना चाहिए।

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मते त्रैलोक्यमध्यमध्यासीने मध्यलोके श्रीमदनावृतयक्षसंसेव्यमाने दिव्यजम्बूवृक्षोपलक्षितजम्बूद्वीपे महनीयमहामेरोर्दक्षिणभागे अनादिकालसंसिद्धभरतनामधेयप्रविराजितषट्खण्डमण्डितभरतक्षेत्रे सकलशलाकापुरुषसम्बन्धविराजितार्यखण्डे परमधर्मसमाचरणविहारप्रदेशे[1] अस्मिन् विनेयजनताभिरामे आरानगरे[2] अस्मिन् दिव्यमहाचैत्यालयप्रदेशे एतदवसर्पिणीकालावसाने प्रवृत्तसुवृत्तचतुर्दशमनूपमान्वितसकललोकव्यवहारे श्रीवृषभस्वामिपौरस्त्यमङ्गलमहापुरुषपरिषत्प्रतिपादितपरमोपशमपर्वक्रमे वृषभसेनसिंहसेनचारुसेनादिगणधरस्वामिनिरूपितविशिष्टधर्मोपदेशे पञ्चमकाले प्रथमपादे महतिमहावीरवर्धमानतीर्थङ्करोपदिष्टसद्धर्मव्यतिकरे श्रीगौतमस्वामिप्रतिपादितसन्मार्गप्रवर्तमाने श्रेणिकमहामण्डलेश्वरसमाचरितसन्मार्गावशेषे

जलधाराके पश्चात् गन्धोदक लेनेका मन्त्र—

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकं
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गन्धोदकम्॥

१. इस स्थानपर अपने प्रदेशका नाम जोड़ना चाहिए।
२. इस स्थानपर अपने नगरका नाम जोड़ना चाहिए।

२०१३ मिते[1] विक्रमाब्के भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायां तिथौ गुरुवासरे प्रशस्ततारकायोगकरणनक्षत्रहोरामुहूर्त्तलग्नयुक्तायाम् अष्टमहाप्रातिहार्य-शोभितश्रीमदर्हत्परमेश्वरसन्निधौ अहं⋯रत्नत्रयनामकव्रतं स्थापयामि। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा सर्वशान्तिर्भवतु, सर्वकल्याणं भवतु श्रीं क्लीं नमः स्वाहा।

इसके अनन्तर पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन आदिको सम्पन्न करे।

रत्नत्रयव्रतोद्यापन की सामग्री

उद्यापनके लिए पूजन सामग्री; रत्नत्रय यन्त्र, तेरह शास्त्र, मन्दिरके लिए तेरह पूजनके बर्तन, छत्र, चमर, झारी आदि मगल द्रव्य, चँदोवा तथा नगदी रुपये दान देना चाहिए। उद्यापनके उपरान्त साधर्मी भाइयोंके तेरह घरोंमे फल भेजना चाहिए। यदि शास्त्र और पूजनके बर्तन तेरह-तेरह देनेकी शक्ति न हो तो कमसे कम तीन अवश्य देने चाहिए। इस व्रतका उद्यापन तीन वर्षोंमें किया जाता है। पूजनमे चढानेके लिए ९३ चाँदीके स्वस्तिक, इतनी ही सुपारियाँ, चार नारियल रहने चाहिए। ये नारियल प्रत्येक वलयकी पूजामे चढाने चाहिए। सुपारी, साथिया प्रत्येक अर्घमे लेना चाहिए। यह अर्घ माडनेके कोठेमे चढेगा।

इस व्रतके उद्यापनके लिए १०० कोठोवाला मण्डल गोलाकार बनाना चाहिए। मडल लाल, श्वेत, हरे, पीले और नीले वर्णके चावलोसे बनाना

दशलक्षण व्रतोद्यापन

चाहिए। इसके पश्चात् रत्नत्रय व्रतोद्यापनके समान ही जलयात्रा करनी होती है। पूजनकी विधि रत्नत्रय व्रतके समान है। सकलीकरण अगन्यास आदि क्रियाएँ पूर्ववत् कर लेनी चाहिए। अनन्तर उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। इस व्रतके उद्यापनके आदिमे बताया गया है—

आदौ गर्भगृहे पूजा क्रियते सद्बुधोत्तमैः।
जिननामावलिं शुद्धां सकलीकरणादिकम्॥

१. जिस दिन उद्यापन करना हो, उसके तिथ्यादि जोड़ना चाहिए।

सन्मण्डपप्रतिष्ठा च पठ्यते पण्डितोत्तमैः ।
नानाशास्त्रान्वितैः धीरैः कलागुणविराजितैः ॥
शतकमलसमूहं वर्तुलाकारचक्रं
भवशतयजनाशं सर्वमोक्षप्रचक्रम् ।
परमगुणनिधानं सद्व्रतौघप्रधानं
विविधकुसुमवन्यैः शुद्धयन्त्रे क्षिपामि ॥

उद्यापनके अनन्तर व्रतसमाप्ति सूचक रत्नत्रयवाले सकल्पको यहाँ भी पढकर रत्नत्रयके स्थानपर दशलक्षणव्रत जोड लेना चाहिए। अवशेष ग्राम, नगरादि और अपना नाम आदि भी जोड लेने चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

छत्र, चमर, झारी आदि मंगलद्रव्य, जपमाला, कलश, दस शास्त्र, मन्दिरके लिए दस वर्तन, दशलक्षण यन्त्र, १०० चाँदीके स्वस्तिक, दस नारियल, १०० सुपाडीकी आवश्यकता होती है। इस उद्यापनमें दस घरोमे फल बाँटना आवश्यक है।

षोडशकारण व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए कुल २५६ कोष्ठका मण्डल बनता है। प्रथम मण्डल दर्शनविशुद्धिका होता है, इसमें ९८ कोष्ठक होते हैं। द्वितीय मण्डल विनयसम्पन्नताका होता है, इसमे ५ कोष्ठक होते हैं। तृतीय मण्डल शीलभावनाका होता है, इसमे १० कोष्ठक होते हैं। चौथा मण्डल आभीक्ष्णज्ञानोपयोगका होता है, इसमे ४२ कोष्ठक होते हैं। पाँचवाँ सवेग नामकका मण्डल है, इसमे १४ कोष्ठक है। छठवाँ शक्ति समाज नामका मण्डल है, इसमे ४ कोष्ठक होते है। सातवाँ शक्तित्रय नामका मण्डल, है, इसमे २४ कोष्ठक होते है। आठवाँ साधु समाधि नामका मण्डल है, इसमे ४ कोष्ठक हैं। नवाँ वैयावृत्य है, इसमे ४ कोष्ठक है। दशवाँ अर्हद्भक्ति नामका मण्डल है, इसमे १३ कोष्ठक होते है। ग्यारहवाँ आचार्यभक्ति नामक मण्डल है, इसमे १२ कोष्ठक होते है।

बारहवाँ बहुश्रुतभक्ति नामका है, इसमें २ कोष्ठक होते है। तेरहवाँ प्रवचन भक्ति नामका है, इसमे ५ कोष्ठक होते है। चौदहवाँ आवश्यक-परिहाणि नामका है, इसमे ६ कोष्ठक है। पन्द्रहवाँ मार्ग-प्रभावना है, जिसमे १० कोष्ठक होते है। सोलहवाँ प्रवचनवात्सल्य नामका मण्डल है, इसमे ४ कोष्ठक होते हैं। इस प्रकार २५६ कोष्ठकका माडना रगीन चावलोंसे बना लेना चाहिए।

जलयात्रा, अभिषेक, मगलाष्टक, सकलीकरण, अगन्यास, स्वस्ति-वाचन आदिके उपरान्त षोडशकारण व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। संकल्प मन्त्र पूर्ववत् ही पढा जायगा; पर उसमे षोडशकारण व्रतका नाम तथा तिथि नक्षत्रादि जोडकर सकल्प छोडना चाहिए। पश्चात् पूर्ववत् पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर १६ घरोमे फल वितरित करना चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

षोडशकारण यन्त्र, पूजन सामग्री, २५६ चॉदीके स्वस्तिक, २५६ सुपाडी, १६ शास्त्र, १६ नारियल, बर्तन, छत्र, चमर आदि मगलद्रव्य, चन्दोवा, दान करनेके लिए नगद रुपये आदि आवश्यक सामान है।

अष्टाह्निका

इस व्रतके उद्यापनके लिए प्रत्येक दिशामे तेरह-तेरह चैत्रालय बनाकर कुल ५२ चैत्रालयोका मण्डल बना लेना चाहिए। कपडेपर बने माण्डना को काममे कभी भी नही लाना चाहिए। चावलो द्वारा निर्मित माडना ही उत्तम होता है। माडना बन जानेके उपरान्त, पूर्ववत् जलयात्रा और अभिषेक आदि क्रियाओको सम्पन्न करना चाहिए। इस व्रतका उद्यापन आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको करना चाहिए। सकलीकरण अगन्यास आदिके पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वक उद्यापन की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर रत्नत्रय व्रतोद्यापनमे बतलाये गये सकल्प मन्त्रको पढ़कर सकल्प करना चाहिए। पश्चात् पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

मन्दिरमें देनेके लिए आठ-आठ उपकरण, आठ शास्त्र, पूजन-सामग्री,

उद्यापनकी सामग्री

चन्दोवा, पूजनमे चढानेके लिए ५२ चाँदीके स्वस्तिक, ५२ सुपाडी, चार नारियलकी आवश्यकता होती है। सिद्धचक्र यन्त्र भी बनवाना चाहिए।

इस उद्यापनके लिए ८१ कोष्ठकोका मण्डल बनाया जाता है। मण्डल पर ही भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान की जाती है। अभिषेकके

रविवार व्रतोद्यापन

लिए जल लानेके पश्चात् सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधान करनेके पश्चात् गन्धकुटीकी पूजा करनी चाहिए। अनन्तर उद्यापनकी पूजा, पश्चात् पूर्वोक्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए। बताया गया है—

आदौ गन्धकुटीपूजा ततः स्नपनमाचरेत्।
पश्चात् कोष्ठगता पूजा कर्त्तव्या विबुधोत्तमैः॥
पार्श्वनाथजिनेन्द्रस्य प्रतिमां परमां शुभाम्।
आह्वाननादिविधिना स्थापयेत् स्वस्तिकोपरि॥
पश्चात् पूजा प्रकर्त्तव्या विधिवद्धा मुदा तथा।
उत्तमां सर्वसामग्रीं मेलयित्वा त्रिशुद्धितः॥

नौ शास्त्र, मन्दिरके लिए नौ बर्तन, उपकरण, चन्दोवा, पूजाके लिए ८१ गोटा या चाँदीके स्वस्तिक, ८१ सुपाड़ी, ९ नारियल, पूजन सामग्री,

उद्यापनकी सामग्री

नौ श्रावकोंके घर नौ नौ फल वितरित करनेके लिए एकत्र करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर नौ श्रावकोको भोजन कराना चाहिए।

शुद्ध कोरा घड़ा लेकर उसे धो लेना चाहिए। पश्चात् श्रीखण्ड, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओका लेपन उस घड़ेपर करना चाहिए। सुवर्ण,

अनन्तव्रतोद्यापन

चाँदी या पञ्चरत्नकी पुड़िया उस घडेमे छोड़नी चाहिए। घड़ेको श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर उसे पुष्पमालाएँ पहना देना चाहिए। अनन्तर घड़ेके ऊपर एक बडी थाली प्रक्षाल करके रखना, उस थालीमे अनन्तका मण्डल १९६ कोष्ठकोका बना

लेना। एक दूसरी थालीमे श्रीखण्डसे अनन्त यन्त्र लिखकर अथवा स्वस्ति लिखकर चौबीसी प्रतिमा विराजमान करना। गॉठ दिया हुआ अनन्त पहली थालीमे ही रखा जाता है। अथवा चांकी पर ही चौदह मण्डलका वृत्ताकार मॉडना बना लेना, प्रत्येक मण्डलमे चौदह-चौदह कोष्ठक बनाना। मण्डलके मध्यमे चौबीसी प्रतिमा विराजमान कर पूजन करना चाहिए। प्रत्येक कलशकी पूजामे नारियल चढाना चाहिए तथा प्रत्येक कोष्ठकपर सुपाडी। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यासके पश्चात् उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। पूजनोपरान्त सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

१४ प्रकारके उपकरण, १४ शास्त्र, पूजाके लिए १९६ सुपाडी, १९६ गोटे या चॉदीके स्वस्तिक, १४ नारियल और पूजन सामग्री एकत्र करनी चाहिए। उद्यापनके पश्चात् १४ श्रावकोको भोजन कराना चाहिए। अनन्तव्रतका यन्त्र भी बनवाया जाता है।

पुष्पाञ्जलि व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए २५ कमलका मण्डल बनता है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् उद्यापनकी पूजा की जाती है। उद्यापनके आरम्भमे विधि बतलाते हुए कहा गया है—

भो भव्याः श्रृण्वतामस्य सामग्र्यादि विधिं पुरा।
जलादिफलपर्यन्तं सर्वद्रव्यं समुत्तमम्॥
कंसालतालभृङ्गारघण्टातोरणमालिकाः।
चन्द्रोपकदीपमालाधूपस्य दहनानि च॥
भामण्डलादिकान्यत्र चैतेषां पञ्चकं पृथक्।
खज्जकमोदकादीनां पञ्चविंशतिकं पुनः॥
अन्यानि च सुवस्तूनि स्वाद्यखाद्यानि शुद्धितः।
आनेयमिति सद्द्रव्यैः सर्वं जिनमन्दिरं प्रति॥

पञ्चरत्नपृथक्चूर्णैः पञ्चविंशतिपद्मजम् ।
मण्डलं सुन्दरं कुर्यात् मध्ये मेरु सकर्णिकम् ॥
अतो गन्धकुटीसंस्थं जिनं संचर्च्य तत्परम् ।
जिनादीन् सच्छ्रुतं सूरिपादाब्जं च बुधाः क्रमात् ॥

अर्थात्—छत्र, चमर, झारी, तोरण, घटा, धूपदान, चदोवा, दीवट, भामण्डल, पाँच बर्तन, पाँच शास्त्र, २५ नैवेद्य, २५ सुपाड़ी, पाँच नारियल, पञ्चरत्नकी पुड़िया, २५ चाँदी या गोटेके स्वस्तिक आदि सामग्री एकत्र करके मण्डलके मध्य जिनप्रतिमा विराजमान करके उद्यापन पूजा सम्पन्न करनी चाहिए। पूर्णार्घके उपरान्त सकल्प, जाप, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाएँ करनी चाहिए। अनन्तर कम से कम पाँच श्रावकोको भोजन कराना, दान देना आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए।

इस व्रतके उद्यापनके लिए तीन मण्डलोमे चौबीस चौबीस कोष्ठक बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यमे 'ओं ह्रीं', लिखकर उसपर स्थापन रखनी

त्रिलोकतीज व्रतोद्यापन

चाहिए। मण्डलके चारो कोनोंपर "ओं ह्रीं भूत-भविष्यवर्त्तमानकालीनचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः" लिखना चाहिए। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् मगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर उद्यापनकी ७२ पूजाएँ करनी चाहिए। पूर्णार्घके उपरान्त, पूर्वोक्त सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाओके उपरान्त इस व्रतकी जाप लोगोसे करनी चाहिए।

उद्यापनके लिए ७२ चाँदी या गोटेके स्वस्तिक, तीन नारियल, ७२ सुपाड़ी, उपकरण, बर्तन, कम से कम तीन शास्त्र, पूजन सामग्री आदि एकत्र करनी चाहिए। उद्यापनके अनन्तर २४ श्रावकोको भोजन कराना, २४ श्रावकोंके घर फल भेजना चाहिए।

इस व्रतके उद्यापनके लिए सात कोष्ठोंका एक वलयाकार मण्डल बनाना चाहिए। अथवा एक कोरे घड़ेको स्वच्छ और सुगन्धित कर

मुकुटसप्तमीव्रत

उसके ऊपर एक थाली रखनी चाहिए। इस थालीमें सात कोठे एक ही मण्डलमें बना लेना चाहिए। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् चतुर्विंशतिजिनपूजा, पश्चात् प्रत्येक वर्षके व्रतकी आदिनाथ स्वामी की पूजा करनी चाहिए। उद्यापनके समय जिनालयको सात सात उपकरण, सात शास्त्र, चन्दोवा, माण्डल, बर्तन आदि देना तथा श्रावक और मुनियोंको आहार-दान देना चाहिए। यह उद्यापन श्रावण सुदी अष्टमीको किया जाता है।

इस व्रतके उद्यापनके लिए एक मण्डलाकार दस कोष्ठकोंका मण्डल बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यमें "ॐ ऋषभाय नमः" लिखना चाहिए।

अक्षयफल दशमी व्रतोद्यापन

इस व्रतका उद्यापन श्रावण शुक्ला एकादशीको किया जाता है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमें मन्दिरको दस शास्त्र, दस बर्तन, चन्दोवा, भामण्डल, छत्र, चमर आदि देना तथा श्रावकोंको भोजन कराना, पाठशालाओं, औषधालयों एव अन्य उपयोगी सस्थाओके लिए दान देना चाहिए। इस व्रतके उद्यापनमें दस श्रावकोंके घर दस-दस आम या नारगी ही वितरित की जाती है।

यह व्रत बारह वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए बारह कोठोंका मण्डलाकार मडल बनाया

श्रावण द्वादशी व्रतोद्यापन

जाता है। मध्यमें 'ॐ ह्रीं असि आ उसाय नमः' लिखा जाता है। मडलके चारों कोनोंपर णमोकार मन्त्र लिख दिया जाता है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन-पूजा की जाती है। प्रत्येक कोठेमें पृथक् पूजन किया जायगा। प्रत्येक कोठेके पूजनमें एक एक नारियल भी चढाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है। उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निर्माण और प्रतिष्ठा

करके विराजमान करना चाहिए। चार शास्त्र, चार उपकरण, पूजनके बर्तन, चन्दोवा, तोरण, घण्टा, छत्र, चमर आदि मन्दिरको चढाना चाहिए। चारो प्रकारका दान देना, रोगी-दुखियोंकी सेवा करना एवं शिक्षाका प्रन्बध करना चाहिए।

रोहिणी-व्रतोद्यापन

पॉच वर्ष, पॉच महीना करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए एक कोरा मिट्टीका घड़ा लेकर उसे जलसे शुद्ध करनेके पश्चात् उसपर चन्दन और केशरका लेप करना चाहिए। पश्चात् उसे एक श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर पुष्पमाला पहना देना चाहिए। अनन्तर उसके ऊपर एक थाली रखकर पूजा करनी चाहिए। थालीमे ऋद्धि यन्त्र बनाया जाय। कुल रोहिणी सख्या व्रतके दिनोमे ७२ प्रमाण होती है अतः इस व्रतके उद्यापनमे त्रिकाल चतुर्विंशतिपूजन पृथक्-पृथक् करना होगा। पूजनकी प्रक्रिया पूर्ववत् है—जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास; मगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर ७२ पूजाएँ होती है। प्रत्येक पूजाके अर्घमें चॉदी या गोटोंका स्वस्तिक, नारियल या सुपाड़ी चढ़ाई जाती है। उद्यापनमे कमसे कम ५ शास्त्र, पूजनके बर्तन, चन्दोवा झारी घण्टा आदि चढाया जाता है। शक्ति हो तो ७२ श्रावकोको भोजन कराया जाता है।

आकाशपञ्चमी व्रतोद्यापन

पॉच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त इसका उद्यापन भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को किया जाता है। उद्यापनके लिए एक घडा लेकर शुद्धकर, पुष्पमालाएँ उसे पहनाकर थालीमे सत्रह कोठोका विनायक यन्त्र बनावे। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा करे। यह उद्यापन पूजन प्रकाशित नही है, अतः इसमे पृथक् पृथक् मत्रसे परमेष्ठी पूजन करनेके पश्चात् विनायक-यन्त्रकी सत्रह पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्घ के उपरान्त सकल्प, पुण्याहवाचन आदि क्रियाएँ करे। सत्रह अर्घों मे सुपाड़ी, स्वस्तिक चढ़ावे। कलशमें पचरत्नकी पुड़िया छोड़नी चाहिए।

मन्दिरके लिए पाँच शास्त्र, पाँच बर्तन, छत्र, चमर, वेष्ठन आदि दान करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर कमसे कम पाँच श्रावकोंको भोजन कराना तथा पाँच घरोमे पाँच पाँच फल भेजना आवश्यक है।

कोकिलापञ्चमी व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए पञ्चपरमेष्ठी मण्डल बनाया जाता है। प्रथम वलयमें ४६ कोष्ठक, द्वितीय सिद्धवलयमे ८ कोष्ठक, तृतीय आचार्य वलयमे ३६ कोष्ठक, चतुर्थ उपाध्यायमे २५ कोष्ठक और पचम साधुवलयमे २८ कोष्ठक बनाये जाते है। इस व्रतके कुल १४३ कोष्ठक होते है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त पञ्चपरमेष्ठी पूजा, जो माघनन्दी आचार्य द्वारा विरचित है, करनी चाहिए। प्रत्येक अर्घमें सुपाड़ी और स्वस्तिक चढ़ाया जाता है तथा प्रत्येक वलयकी पूजामे नारियल, पूजाके पश्चात् पूर्ववत् संकल्प, पुण्याह-वाचनादि करने चाहिए। मन्दिरके लिए पाँच शास्त्र, पाँच बर्तन, उपकरण, घण्टा, चन्दोवा आदिका दान करना तथा २५ व्यक्तियोंको भोजन कराना, यदि शक्ति हो तो १४३ व्यक्तियोंको भोजन कराना तथा २५ घरोमे पाँच-पाँच फल बाँटना चाहिए।

चन्दनषष्ठी व्रतोद्यापन

छः वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद कृष्णा सप्तमीको होता है। घड़ेको शुद्ध कर उसको पुष्प-माला पहनाकर उसके ऊपर एक बड़ा थाल, जिसमे केशरसे विनायक-यन्त्र बनाया गया हो, स्थापित करे। अभिषेक आदि क्रियाओंके पश्चात् उद्यापन करे। उद्यापनमे भूतकालीन चतुर्विंशति, वर्तमानकालीन चतुर्विंशति, भविष्यकालीन चतुर्विंशति, विद्यमान विंशति तीर्थंकर, पञ्चपरमेष्ठी और महावीरस्वामी इस प्रकार कुल छः पूजा की जाती है। पूर्ण अर्घके पश्चात् सकल्प, पुण्याहवाचनादि करे। मन्दिरको छः शास्त्र, छः उपकरण, छः बर्तन प्रदान करे। चारो प्रकारका दान दे। कमसे कम छः श्रावकोंको भोजन करावे।

यह व्रत सात वर्ष करनेके उपरान्त भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको इस

व्रतका उद्यापन किया जाता है। पूर्ववत् मिट्टीके कलशके ऊपर थाल रखकर उद्यापनकी पूजा होती है। थालमे सात-दलका कमल बनाया जाता है। तथा प्रत्येक दल पर क्रमशः 'ओं ह्रीं अ सि आ उ सा' लिखा जाता है। पूर्ववत् सभी क्रियाओके करनेके उपरान्त पच परमेष्ठी और समुच्चय-चौबीसी पूजाके पश्चात् ऋषभनाथसे सुपार्श्वनाथ तक सात पूजाएँ की जाती है। उद्यापनमे सात शास्त्र, सात उपकरण, सात बर्तन मन्दिरको दिये जाते है तथा चारोंका दान दिया जाता है।

निर्दोषसप्तमी-व्रतोद्यापन

सोलह वर्ष पर्यन्त करनेके पश्चात् भाद्रपद शुक्ला नवमीको इस व्रत-का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापनके लिए मिट्टीका कलश लेकर शुद्ध करे, उसे चन्दन और केशरसे लिप्त करे, पश्चात् पुष्पमाला पहनाकर उसपर विनायक यन्त्र बनाकर थाल रखे और उसी थालमे पूजा करे। अभिषेककी क्रियाके पश्चात् सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधान, पच-परमेष्ठी पूजन और समुच्चयचौबीसी पूजनके पश्चात् चौबीसी पूजनमेंसे आरम्भके सोलह तीर्थंकरोकी पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्घके अनन्तर सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे। उद्यापनमे सोलह उपकरण, सोलह शास्त्र, पूजनके बर्तन मन्दिरको भेट करे। सोलह श्रावकोके यहाँ मिठाई फल भेजे। कमसे कम सोलह श्रावकोंको घर बुलाकर भोजन करावे।

निश्शल्य अष्टमी व्रतोद्यापन

इस व्रतका उद्यापन दस वर्ष व्रतका पालन करनेके उपरान्त भाद्र-पद शुक्ला एकादशीको होता है। एक घड़ा लेकर उसे पूर्ववत् शुद्ध और सुगन्धित कर पुष्पमालाओसे आच्छादित करे। उसके ऊपर एक थालमे विनायक-यन्त्र बनाकर विराजमान करे। अभिषेक आदि क्रियाओंके पश्चात् पचपरमेष्ठी, चौबीसी, आदिनाथ, चन्द्रप्रभु, शीतलनाथ, विमलनाथ, धर्मनाथ, शान्ति-नाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीकी पूजा करे। संकल्प, पुण्याह-

सुगन्धदशमी व्रतोद्यापन

वाचन पूर्ववत् करे। उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण, पूजाके बर्तन आदि मन्दिरको दान दे। साधर्मी श्रावकोंको भोजन करावे। दस-दस फल दस श्रावकोंके घर भेजे। शक्ति हो तो दस घरोंमें बर्तन बाँटे।

इस व्रतके उद्यापनके लिए बीचमें एक अष्टदल कमल बनाकर पश्चात् मण्डलाकार दो पंक्तियोंमें तीस कोष्ठक अर्थात् प्रत्येक पंक्तिमें पन्द्रह

कवलचान्द्रायण व्रतोद्यापन

पन्द्रह कोष्ठक बनावे। अष्टदल कमलके ऊपर सिंहासन रखकर प्रतिमा विराजमान करे, पश्चात् जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्ति-विधान करनेके अनन्तर उद्यापन पूजा करे। पूर्ण अर्घके पश्चात् संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे। उद्यापनके अनन्तर जिनालयको शास्त्र, बर्तन, उपकरण दान दे। तीस श्रावकोंको भोजन करावे तथा तीस श्रावकोंके घर फल और मिठाई भेजे।

इस व्रतमें ६३ उपवास किये जाते हैं; अतः इसका मण्डल भी ६३ कोष्ठकोंका होता है। प्रथम मण्डल तीर्थंकर कहलाता है जिसके चौबीस

जिनगुणसम्पत्ति-व्रतोद्यापन

कोष्ठक होते है। द्वितीय मण्डल चक्रवर्तीका है, इसके बारह कोष्ठक होते है। तीसरा मण्डल नारायणका है, इसके ९ कोष्ठक होते है, चौथा मण्डल प्रतिनारायणका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते है। पाँचवाँ मण्डल बलदेवका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते है। मण्डलके मध्यमें भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान कर उद्यापन पूजन करना चाहिए। आरम्भमें जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके अनन्तर उद्यापनकी ६३ पूजाएँ करनी चाहिए। उद्यापनकी प्रत्येक पूजाके अन्तिम अर्घमें स्वस्तिक, सुपारी नैवेद्य लेना चाहिए। उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण मन्दिरको देना चाहिए। ६३ श्रावकोंको भोजन कराना तथा ६३ श्रावकोंके यहाँ फल-मिठाई भेजना और शक्तिके अनुसार ६३ घरोंमें बर्तन बाँटना चाहिए।

चौदहवर्षतक व्रत पालन करनेके उपरान्त भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके दिन एक घड़ा लेकर,

चतुर्दशी व्रतोद्यापन उसे शुद्ध करे। पश्चात् उसी घड़ापर विनायक-यन्त्र लिखकर एक थाली रखे। इसी थालीमें उद्यापन पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमे चौदह उपकरण, चौदहशास्त्र, बर्तन आदि मन्दिरको देना चाहिए। चौदह श्रावकोको भोजन तथा चौदह घरोंमे फल भेजना चाहिए।

इस व्रतका उद्यापन करनेके लिए ९ दलका कमल-मण्डल बनाया जाता है। बीचमे 'ॐ ह्रीं' लिखा जाता है। जलयात्रा, अभिषेक आदिके

निर्जरपञ्चमी व्रतोद्यापन उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। इस पूजामे पचपरमेष्ठीकी पृथक् पृथक् पॉच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमान विंशति तीर्थंकर पूजन, आदिनाथ पूजन और महावीर स्वामीका पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते है। उद्यापनमे मन्दिरके लिए नौ उपकरण, नौ शास्त्र, नौ बर्तन दिये जाते है। चारो प्रकारका दान देना, नौ श्रावकोको भोजन कराना, नौ घरोमे फल भेजना भी इसकी विधिमे परिगणित है।

इस व्रतके उद्यापनके लिए आठ मण्डलका १४८ कोठोका मण्डल बनाया जाता है। पहला मण्डल ज्ञानावरणीयका है, इसमे ५ कोष्ठक होते

कर्मक्षय-व्रतोद्यापन है। दूसरा दर्शनावरणीयका होता है, इसमे ९ कोष्ठक होते है। तीसरा वेदनीयका है, इसमे २ कोष्ठक; चौथा मोहनीयका है, इसमे २८ कोष्ठक; पॉचवॉ आयुका है, इसमे ४ कोष्ठक; छठवॉ नामकर्मका है इसमे ९३ कोष्ठक; सातवॉ गोत्रका है, इसमे दो कोष्ठक एव आठवॉ अन्तरायका है, इसमे ५ कोष्ठक होते है। उद्यापन पूजनके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण आदि क्रियाएँ पूर्ववत् करनी चाहिए। पश्चात् उद्यापनके उपलक्षमे मन्दिरको कम से कम ८ उपकरण, ८ शास्त्र, ८ बर्तन दे तथा साधर्मियोको भोजन करावे। शक्तिके अनुसार चारों प्रकारका दान दे।

अवशेष समस्त व्रतोंके उद्यापनके लिए उस व्रतके उपवास या वर्षोंके अनुसार माण्डना बना लेना चाहिए। जिन व्रतोका माण्डना नहीं बन

अन्य व्रतोंके उद्यापनकी विधि

सकता हो, उन व्रतोंके उद्यापनके लिए सुसंस्कृत मिट्टीके कलशके ऊपर थाल रखकर पूजा करनी चाहिए। पूजाके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधान सभी उद्यापनोंमे होगा। पूजाके पूर्ण अर्घके उपरान्त सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन किया जायगा। उद्यापनकी पूजाके कार्यमे सुपाडी, स्वस्तिक चढ़ाना चाहिए। मन्दिरको उपकरण, बर्तन और शास्त्र देने चाहिए। किसी भी व्रतका उद्यापन व्रतकी समाप्तिके दिन किया जाता है। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसरपर कभी भी किसी भी व्रतका उद्यापन किया जा सकता है।

प्रथमानुयोग और व्रतविधान

प्रथमानुयोगके शास्त्रोंमे व्रतविधान और व्रतोंके फल प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित है। हरिवंशपुराणके ३४ वे सर्गमे सर्वतोभद्र, रत्नावली, सिहनिष्क्रीडित आदि व्रतोका विस्तारपूर्वक वर्णन अकित है। बताया गया है कि श्रेणिकने भगवान्‌के समवशरणमे गौतम स्वामीसे प्रश्न कर व्रतोके स्वरूप और उनके फल प्राप्तकर्ताओके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त की है। पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, आराधनाकथाकोश व्रतकथाकोष, हरिषेणकथाकोश आदि ग्रन्थोमे व्रत पालन करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित है। इस प्रसगमे प्रमुख व्रतोकी कथाओका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है। इन आख्यानोंके अध्ययनसे जनसाधारणकी प्रवृत्ति व्रतधारण करनेकी ओर होगी।

समस्त व्रतोंमे प्रधान रत्नत्रय व्रत है। विधिपूर्वक इस व्रतके पालन करनेसे स्वर्गादिके सुखोको भोगकर व्यक्ति निर्वाणपद प्राप्त करता है। इस व्रतके पालन करनेवाले राजा वैश्रवणकी कथा निम्न प्रकार है—

सुदर्शन मेरुकी दक्षिणदिशामे विदेहक्षेत्रके कच्छावती देशके मध्य वीतशोकपुर नामके नगरमे वैश्रवण नामका राजा धर्म और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करता था। एक दिन वह नृपति वसन्तऋतुमें वनविहारके

लिए गया। यहाँ प्रकृतिकी सुन्दर छटाको देखकर इसके मनमें अनेक प्रकारकी भावना उत्पन्न होने लगी। इसी मानसिक द्वन्द्वके बीच उसकी दृष्टि पासमें ही एक शिलापर ध्यानस्थ मुनिराजके ऊपर पड़ी। वह हर्ष-विभोर हो मुनिराजके पास गया और विनययुक्त हो उनके चरणोंके निकट नमोऽस्तु कहकर बैठ गया। मुनिराजने धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया, पश्चात् राजाको सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया—'राजन्, मिथ्यात्वके कारण ही यह प्राणी ससारमें परिभ्रमण करता है। मिथ्यात्वसे ही नवीन कर्मोंका आस्रव होता है तथा इसके कारण ज्ञान और चारित्र भी विपरीत होते है। सम्यग्दर्शन ही आत्माका निजी स्वभाव है, इसके प्राप्त होते ही यह प्राणी आत्माके निज परणतिमें रमण करता है। अतः रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिए सर्वदा प्रयास करना चाहिए। रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके धारण करनेसे ही जीव सुख-शान्ति प्राप्त करता है। रत्नत्रय शरण है, यही मोक्षका मार्ग है। इस रत्नत्रयको जीवनमे लानेके लिए रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिए। व्रत क्रियारूप अनुष्ठान होता है, इसके पालन करनेसे जीवनमे रत्नत्रयका स्फुरण होता है।

मुनिराजके इस उपदेशको सुनकर राजा वैश्रवणने पुनः मुनिराजसे कहा—'प्रभो! मानव पर्यायकी सार्थकता किसमें है? गृहस्थावस्थामें रहकर व्यक्ति किस प्रकार धर्मका पालन कर सकता है? क्या उस रत्नत्रय व्रतको मुझ जैसे श्रावक भी धारण कर सकते है? इस व्रतके धारण करनेका फल क्या है?'

मुनिराज—'राजन्! मानव पर्यायकी सार्थकता धर्मसाधनमें है। जो व्यक्ति इस अमूल्य पर्यायका उपयोग धर्मसाधनके लिए करता है, वह धन्य है। गृहस्थाश्रममें रहकर भी व्यक्ति धर्मका पालन कर सकता है। यह आश्रम ही जीवनकी तैय्यारीका क्षेत्र है। रत्नत्रय आत्माका धर्म है अथवा यो कहना चाहिए कि आत्मा ही स्वयं रत्नत्रय स्वरूप है। इस रत्नत्रय धर्मको श्रावक भी धारण कर सकता है। विधिपूर्वक रत्नत्रयका पालन करनेसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

राजा वैश्रवणने मुनिराजसे रत्नत्रय व्रत ग्रहण किया। उसने १३ वर्षों-तक यथाविधि इस व्रतका पालन किया। इसके पश्चात् उत्साहपूर्वक व्रतका उद्यापन कर दिया। रत्नत्रय व्रतके आचरणके कारण उस नृपति-की आत्मा इतनी पावन हो गयी कि उसे ससार नीरस दिखलायी पडने लगा। एक दिन उसे तूफानके कारण एक वृक्ष जडसे उखडा हुआ दिखलायी पडा। विशालकाय वृक्षका इस प्रकार पतन होते देख राजा सोचने लगा—'इस ससारके सभी मोहक पदार्थ विध्वंसशील है। यहाँ सभी पदार्थोंकी पर्यायें निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। एक दिन मुझे भी मृत्युके मुखमें जाना पडेगा।'

अतः अब आत्मकल्याणका अवसर आ गया है। वह द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करने लगा, जिससे उसकी आत्मा वैराग्यसे परि-पूर्ण हो गयी। उसने राजपाट छोडकर दिगम्बर-दीक्षा धारण की। रत्न-त्रय व्रतके अभ्यासके कारण उसकी आत्मामें अपरिमित शक्तियाँ आविर्भूत हो चुकी थीं। अपनी आयुका अन्तिम समय जान उसने समाधिमरण धारण किया, जिससे वह अपराजित नामक विमानमें अहमिन्द्र हुआ। पश्चात् वहाँसे चयकर मिथिलापुरीमें महाराज कुम्भरायके यहाँ सुप्रभावती महारानीके गर्भसे मल्लिनाथ तीर्थंकर हो उसने निर्वाणपद पाया।

दश लक्षणव्रत अत्यन्त प्रभावशाली है। इस व्रतके निष्काम पालन करनेसे लौकिक अभ्युदयोंके साथ स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है। महान्

दशलक्षण-व्रतकथा

पापके उदयसे प्राप्त स्त्रीपर्यायका छेद भी इस व्रतके धारण करनेसे हो जाता है। बताया गया है कि प्राचीन कालमें धातकीखण्डके पूर्वविदेह देशमें सीतोदा नदीके तटपर विशालाक्षा नामकी नगरी थी। इस नगरके राजा प्रियकरकी पुत्री मृगाक-रेखा, इस नृपतिके मन्त्रीकी पुत्री कामसेना, इस नगरीके सेठ मतिसागर की पुत्री मदनवेगा और लक्ष्मभद्र पुरोहितकी पुत्री रोहिणी इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी। एक दिन वसन्त ऋतुमे ये चारों कन्याएँ अपने अभिभावकोंकी आज्ञा लेकर वनक्रीडाके लिए

निकलीं। ये चारों वनकी शोभा देखती देखती बहुत दूर निकल गयीं। वसन्तके कारण वनके प्रत्येक वृक्षमे नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नयी उमंग दिखलायी पड़ रही थी। वन-सुषमा अपना सर्वत्र साम्राज्य स्थापित किये हुए थी। शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर उनके चित्तको विश्रान्ति दे रहा था। वे चारों कन्याएँ आनन्दविभोर हो प्रकृतिके सौन्दर्यावलोकनमे मगन थीं। इसी बीच उनकी दृष्टि एक वृक्षके नीचे शिलातलपर बैठे हुए मुनिराजकी ओर गयी। उन कन्याओने भक्तिभावपूर्वक उन योगिराजको नमस्कार किया और उनसे इस निन्द्य स्त्रीपर्यायसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा।

मुनिराज—'बालिकाओ! मनुष्य अपने आचरणके कारण ही उन्नत या अवनत होता है। कर्मवश यह परतन्त्र आत्मा अहर्निश राग-द्वेषमे सलग्न रहती है। जब तक आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकारोंसे युक्त है, तबतक इसे संसारमे अनेक पर्याय धारण करनी पड़ती है। पर्याय धारण करनेका कारण कर्म ही है। अतः समस्त वैभाविक पर्यायोके त्यागका कारण आत्मानुभूतिकी प्राप्ति है। जब प्राणीको आत्मानुभूति हो जाती है, तब उसे यथार्थ सुखकी प्राप्ति हो जाती है। यह सुख कही बाहरसे नही आता है और न यह आत्माके अखण्ड स्वरूपसे भिन्न कोई पदार्थ ही है। अतः अपनी आत्माका निज स्वभाव प्राप्त करनेके लिए तीव्र मोहोदयको हटाना चाहिए। इसके लिए उत्तम दशलक्षण व्रतका पालन करना आवश्यक है। यह व्रत समस्त पापोंको नाश करनेवाला है तथा सभी प्रकारके सुखोको देनेवाला है।

मुनिराजसे विधिपूर्वक व्रत ग्रहण कर वे चारो कन्याएँ नगरमे वापस लौट आई और विधिपूर्वक व्रत पालन करनेमे सलग्न हो गई। विधिपूर्वक दस वर्ष पर्यन्त व्रतका पालनकर उन्होने उद्यापन कर दिया। आयुके अन्तिम समय समाधिमरण धारण किया; जिससे वे चारो ही कन्याएँ महाशुक्र नामक दसवें स्वर्गमे अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्द्धिक देव हुई। वहाँसे च्युत होकर वे देव उज्जयिनी नगरीके

राजा मूलभद्रके घर लक्ष्मीमती रानीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवराज, गुणचन्द्र और पद्मकुमार नामक सुन्दर पुत्र हुए। समय पाकर इनके विवाह नन्दन नगरके राजाकी कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कक् नामकी कन्याओंके साथ हुए। ये दम्पति बहुत समय तक आनन्दपूर्वक ससारके सुख भोगते रहे। राजा मूलभद्रके विरक्त होकर दीक्षा धारण करनेके उपरान्त चारो पुत्रोंने धर्म-नीतिपूर्वक राज्यका सचालन किया। कुछ समय पश्चात् चारो ही ससारसे विरक्त हो गये और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर उग्रतपश्चरण किया, जिससे इन्हे केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। पश्चात् योग-निरोध कर अघातिया कर्मोका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

षोडशकारण व्रत कथा

विहार प्रदेशमे राजगृही नामकी नगरी है। यहाँ प्राचीनकालमे राजा हेमप्रभु अपनी रानी विजयावती सहित राज्य करते थे। इस राजाके यहाँ महाशर्मा नामक ब्राह्मण नौकर था और इसकी स्त्री का नाम प्रियवदा था। इस प्रियवदाके गर्भसे काल-भैरवी नामकी अत्यन्त कुरूपा कन्या उत्पन्न हुई; जिसे देखकर सभी लोग घृणा करते थे।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए उस नगरमे आये। महाशर्मा भक्तिपूर्वक पड़गाहकर उन्हे विधिपूर्वक आहार दान दिया। पश्चात् विनयपूर्वक अपनी कन्याके कुरूपा और कुलक्षणी होनेका कारण पूछा। मुनिराजने अवधिज्ञान-द्वारा समस्त वृत्तान्त ज्ञातकर कहा—'यह कन्या पूर्वभवमे उज्जयिनी नगरीके राजा महीपालकी विशालाक्षी नामकी पुत्री थी। एक दिन इसने अभिमानमे आकर चर्यासे निवृत्त होकर जाते समय महातपस्वी ज्ञानसूर्य नामक मुनिराजके ऊपर थूक दिया। पश्चात् राजपुरोहित-द्वारा धमकाये जाने पर इसे पश्चात्ताप हुआ और इसने मुनिराजके पास जाकर नमोऽस्तु कर क्षमा याचना की। वहाँसे मरणकर यह आपके यहाँ पूर्वजन्ममे मुनि-उपसर्ग करनेके कारण कुरूपा हुई है।' पुनः महाशर्माने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! इस पापसे छुटकारा पानेका उपाय कहे।'

मुनिराज—'वत्स ! धर्मका प्रभाव संसारमे अमिट होता है। जो व्यक्ति धर्मधारण करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रत—तपश्चरण करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्म भस्म हो जाते है। अतः उसकी यह कन्या षोड़श कारण भावना भावे और इस व्रतका पालन करे तो इसका यह पाप भस्म हो जायगा तथा यह स्त्री लिंग छेद कर मोक्ष भी प्राप्त कर लेगी।'

मुनिराज-द्वारा बतलायी हुई विधिसे कुरूपाने इस व्रतका पालन किया। सोलह वर्ष तक उक्त व्रतका पालन करनेके उपरान्त उसने उस व्रतका उद्यापन कर दिया। पश्चात् समाधिमरण धारण कर प्राण त्याग किया, जिससे स्त्री पर्यायका विनाशकर सोलहवे स्वर्गमे देव हुई। वहाँसे च्युत होकर उक्त व्रत द्वारा किये गये पुण्यार्जनके प्रभावसे उसने विदेह-क्षेत्रमे सीमन्धर तीर्थंकरका पद प्राप्त किया। यह सोलहकारण व्रत तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला है, विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करनेसे आत्मा अत्यन्त पवित्र हो जाती है।

अष्टाह्निका व्रतकथा

अष्टाह्निका व्रतके पालन करनेसे आज तक अगणित व्यक्तियोने अपनी आत्माको पावन किया है। इस व्रतका पालन कर मैनासुन्दरीके व्रतोपार्जित पुण्य-द्वारा कोटिभट राजा श्रीपाल तथा उनके ७०० वीरोका गलित कुष्ठ दूर हुआ। इस व्रतके प्रभावसे अनन्तवीर्यने चक्रवर्तीका पद और जरासिन्धुने प्रतिवासुदेवका पद प्राप्त किया। सुलोचनाने व्रत जनित पुण्यके कारण सन्यासमरण धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया। इस व्रतकी प्रसिद्ध कथा निम्न प्रकार है—

"अयोध्या नगरीमे हरिषेण नामका चक्रवर्ती सम्राट् अपनी गन्धर्वसेना नामक पटरानीके साथ न्यायपूर्वक शासन करता था। एक दिन सम्राट् अपनी छेयानबे हजार रानियों सहित वनक्रीड़ाके लिए गया। वहाँ उसने एक निरापद स्थानमे शिलापट्टपर आसीन अरिञ्जय और अमितञ्जय नामके दो चारणमुनियोंको ध्यानारूढ़ देखा। राजा भक्तिपूर्वक

मुनिराजोंके पास गया और नमोऽस्तु कर बोला—'स्वामिन्! मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे यह बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है?'

श्रीगुरु—राजन्! इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामके सेठके तीन पुत्र थे–श्रीवर्मा, जयकीर्त्ति और जयवर्मा। श्रीवर्मा शैशवसे ही विचार-शील और धार्मिक प्रकृतिका था। एक दिन इसने मुनिराजकी वन्दना कर नन्दीश्वर व्रत लिया। इसने इस व्रतका आचरण बड़ी सावधानीके साथ किया। आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे यह प्रथम स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ और वहाँ असख्यात वर्षों तक देवोचित सुख भोगकर तुम यहाँ चक्रवर्ती हुए हो। अष्टाह्निका व्रतके प्रभावसे तुमको नवनिधि, चौदह रत्न, छयानवे हजार रानियाँ आदि विभूतिके साथ छः खण्डका राज्य प्राप्त हुआ है। तुम्हारे भाई जयकीर्त्ति और जयवर्माने भी धर्मगुरुसे श्रावकके व्रत ग्रहण किये तथा उन दोनोंने भी अष्टाह्निका व्रतका पालन किया जिसके प्रभावसे समाधिमरण धारण किया तथा स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए। पश्चात् वहाँसे चयकर हस्तिनापुरमें विमल नामक सेठकी स्त्री लक्ष्यवतीके गर्भसे अरिजय और अमितजय नामके पुत्र हुए। ये दोनों भाई हम हैं।' इस प्रकार व्रतका माहात्म्य सुन राजा प्रसन्न हुआ।

यह व्रत समस्त मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इसके पालन करनेसे दुःख दारिद्रय नष्ट हो जाते है तथा अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। सन्तान प्राप्त करनेवालोंको इस व्रतका श्रद्धा और विधिके साथ पालन करना चाहिए, निश्चय उनकी मनोकामना पूर्ण होगी। इस व्रतकी कथा निम्न प्रकार है—

रविव्रत कथा

प्राचीन कालमें वाराणसी नगरीके शासक महीपाल नृपति थे। इसके राज्यमें मतिसागर नामक सेठ अपनी गुणसुन्दरी नामकी स्त्रीके साथ सुखपूर्वक निवास करता था। सेठको सात पुत्र थे; सभी होनहार, योग्य और विद्वान्। एक दिन इस नगरीकी वाटिकाके बाहरी भागमें गुण-सागर नामके मुनिराज पधारे। मुनिराजके आगमनका समाचार सुनकर नगरके नर नारी मुनिदर्शनके लिए गये। सेठानी गुणसुन्दरी भी वहाँ

गयी। धर्मोपदेश सुननेके पश्चात् उसने मुनिराजसे करबद्ध प्रार्थना की—'प्रभो! मुझे कोई व्रत दीजिए'।

मुनिराज—'वत्से! श्रावकको दृढ़-श्रद्धानी होकर अपने मूल गुण और उत्तर गुणोको निर्मल करना चाहिए। बेटी! तुम रविव्रत करना आरम्भ करो। यह व्रत सभी इच्छाओको पूर्ण करनेवाला है तथा इसके द्वारा आत्मकल्याण भी होता है'।

गुणसुन्दरी व्रत ग्रहण कर घर आई। उसने अपने परिवारके सभी व्यक्तियोको मुनिराज-द्वारा ग्रहण किये गये व्रतकी बात कही। सभी लोग रविव्रतकी बात सुनकर हँसने लगे और सबने व्रतका निरादर किया। कुछ समय पश्चात् पापके उदयसे मतिसागर सेठकी सम्पत्ति क्षीण होने लगी। धीरे-धीरे उसके घरमे दरिद्रता देवीने आसन जमा लिया। सेठके सातो पुत्र परदेश चले गये और वे अयोध्यानगरीके सेठ जिनदत्तके घर जाकर नौकरी करने लगे। सेठ-सेठानो वाराणसीमे रहकर दुःख भोगने लगे। उनके यहाँ अन्नाभाव रहनेसे किसी-किसी दिन उन्हे निराहार रह जाना पड़ता था। पुत्रोके वियोगके कारण सेठ-सेठानीको और अधिक वेदना थी। एक दिन उस नगरीमे अवधिज्ञानी मुनिका आगमन हुआ। सेठके साथ गुणसुन्दरी मुनि-दर्शनके लिए गई और अपनी दरिद्रताका कारण पूछा।

मुनिराज—'बेटी! तुमने लिये गये व्रतकी अवहेलना की है, इसी का यह परिणाम है। अब तुम पुनः रविवारव्रतको करना आरम्भ करो, तुम्हारा सकट सब दूर हो जायगा।' सेठ-सेठानीने मुनिराजसे पुनः व्रत ग्रहण कर लिया और दोनोंने विधिपूर्वक व्रतका पालन करना आरम्भ किया। व्रतके प्रभावसे उनका समस्त दुःख दारिद्र्य नष्ट हो गया तथा उनके पुत्र भी उनके पास चले आये। कुछ समय पश्चात् सेठ मतिसागर ने आयुका अन्त जान सन्यास मरण धारण किया, जिसके प्रभावसे उसे उत्तम भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई। कुछ कालके पश्चात् उसने निर्वाणपद प्राप्त किया।

श्रुतस्कन्ध व्रत करनेसे ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जरा होती है। जिन्हें

विद्याकी सिद्धि करनी हो, ज्ञानी बनना हो; उन्हे इस व्रतका पालन अवश्य करना चाहिए। इस व्रतके प्रभावसे धनकी प्राप्ति, यश-कुलकी वृद्धि तथा ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है। कथामे बताया गया है कि प्राचीनकालमे पटना नगरके राजा चन्द्ररुचिकी पट्टरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालिनी नामकी सुन्दरी कन्या थी। इस कन्याको जिनमति नामकी आर्यिकाके पास अध्ययनार्थ भेजा गया। कन्या थोड़े ही दिनोंमे विद्यामें पारगत हो गयी। कन्याने एक दिन वहीं-पर चौकीपर श्रुतस्कन्धका मण्डल बनाकर द्वादशाङ्ग जिनवाणीकी पूजा की, जिसे देखकर आर्यिका अत्यन्त प्रसन्न हुयीं तथा उसे पूर्ण विदुषी समझ राजाके यहाँ भेज दिया।

श्रुतस्कन्धव्रत कथा

एक दिन इस नगरके उद्यानमें वर्द्धमान नामके मुनि आये। मुनिके आगमनका समाचार सुन कर राजा पुरजन-परिजनके साथ उनकी वदनाके लिए गया। मुनिराजने धर्मोपदेश दिया, सभीने यथाशक्ति व्रत ग्रहण किये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा—'स्वामिन्! यह कन्या किस पुण्यसे इतनी सुन्दरी और विदुषी हुयी है? इसने पूर्व जन्ममे किस प्रकारके व्रत धारण किये है?'

मुनिराज—'राजन्! पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमे पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। यहाँ गुणभद्र नामका राजा और गुणवती नामकी रानी थी। एक दिन राजा रानी सहित सीमन्धर स्वामीकी वन्दनाके लिए गया और वहाँ वन्दना कर मनुष्यके कोठेमे बैठकर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् राजाने प्रश्न किया—'प्रभो, श्रुतस्कन्ध व्रतका क्या स्वरूप और प्रभाव है?' भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा व्रतका स्वरूप और प्रभाव अवगत कर व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे वे राजा राजी स्वर्गमे इन्द्र और इन्द्राणी हुए। वहाँसे रानीका जीव चय कर तुम्हारे यहाँ श्रुतशालिनी नामकी कन्या हुआ है। इस प्रकार गुरुमुखसे व्रतका माहात्म्य सुनकर कन्याने पुनः श्रुतस्कन्धव्रत धारण किया। विषय और कषायोंको अत्यन्त मन्द कर आत्मशोधनमे संलग्न हो गयी। व्रतके

प्रभावसे अन्तसमयमें समाधिमरण धारण कर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ अनुपम सुख भोगकर अपरविदेहमें कुमुदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पट्टरानी जितपद्माके गर्भसे वह जीवन्धर नामका तीर्थङ्कर हुआ। साथ ही इसे चक्रवर्ती और कामदेव पद भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार श्रुतशालिनीके जीवने श्रुतस्कन्धव्रतके प्रभावसे निर्वाणपद प्राप्त किया।

पुष्पाञ्जलिव्रत आत्माके शोधनके साथ सांसारिक इष्ट पदार्थोंकी उपलब्धिका भी कारण है। इस व्रतके आख्यानमें बतलाया गया है कि

पुष्पाञ्जलिव्रत कथा

विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुर नामका नगर है। वहाँ राजा वज्रसेन अपनी रानी जयावती सहित सानन्द राज्य करता था। सन्तान न होनेके कारण रानी अत्यन्त उदास रहती थी। एक दिन जब राजा पत्नीसहित जिन-मन्दिरमें दर्शनके लिए गया हुआ था, तो इस दम्पतिने वहाँ ज्ञानसागर मुनिराजके दर्शन किये। अवसर पाकर राजाने मुनिराजसे पूछा— "प्रभो ! हमारी रानीको पुत्र न होनेका क्या कारण है ? क्या इसे पुत्रकी प्राप्ति होगी" ? मुनिराजने कहा—"राजन्, आपके यहाँ शीघ्र ही प्रभावशाली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा"।

राजा रानीसहित घर आया और आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। कुछ समय उपरान्त राजाको एक सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई; जिसका नाम रत्नशेखर रखा। रत्नशेखर बचपनसे ही होनहार और प्रतिभाशाली था। एक दिन जब यह बगीचेमें क्रीड़ा कर रहा था, तब आकाशमार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने इसे देखा। रत्नशेखरके प्रति मेघवाहनके हृदयमें अपूर्व प्रेम उमड़ा और वह नीचे उतरा तथा इसका मित्र बन गया। रत्नशेखरने मेघवाहनके सहयोगसे पाँच सौ विद्याएँ सीख ली तथा विमान-रचनाका प्रकार भी ज्ञात कर लिया। अब उसने मेघवाहन आदि मित्रोंके साथ ढाई द्वीपके समस्त जिनालयोंकी वन्दनाके लिए प्रस्थान किया। वह विजयार्धपर्वतके सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा-स्तवनकर बैठा ही था कि इतनेमें दक्षिणश्रेणीके अधिपति रथनूपुर

नगरकी राजकन्या मदनमंजूषा भी सखियों सहित दर्शनके लिए आयी। उसकी जैसे ही रत्नशेखरपर दृष्टि पडी, वैसे ही उसने अपना हृदय रत्नशेखरको सौंप दिया। अब वह उदास रहने लगी, राजा-रानीने उसकी उदासीका कारण ज्ञातकर स्वयंवर मण्डपका आयोजन किया। स्वयंवरमें रत्नशेखर भी सम्मिलित हुआ। कुमारीने वरमाला रत्नशेखरके गलेमें डाल दी, जिससे अन्य समस्त विद्याधर रुष्ट हुए। वे कहने लगे, "विद्याधर कन्या विद्याधरोंको छोडकर भूमिगोचरीके साथ विवाह नहीं कर सकती है। जब विवाद अधिक बढ गया तो रत्नशेखरका विद्याधरोंके साथ युद्ध होने लगा। उसने अपने पराक्रम-द्वारा सभी विरोधी विद्याधरोंको परास्त कर दिया। इसीसमय उसे चक्ररत्नको भी प्राप्ति हुई। अब उसने षट्खण्ड पृथ्वीको वशमें कर लिया और चक्रवर्तीके पदसे शोभित हो गया।

एक दिन चक्रवर्ती रत्नशेखर माता-पिता सहित सुदर्शन मेरुकी वन्दनाके लिए गया हुआ था। वहाँ उसने भाग्योदयसे दो चारण मुनियोंके दर्शन किये और अपने भवान्तर मुनिराजसे पूछे तथा यह भी प्रार्थना की कि मदनमजूषा और मेघवाहनका मुझपर क्यों अधिक प्रेम है?

मुनिराज—'सम्राट्! भरत क्षेत्रमें मृणालपुर नामका नगर है। इस नगरका शासन राजा जितारि अपनी रानी कनकावतीके साथ करता था। इस नगरमें श्रुतकीर्त्ति नामका ब्राह्मण अपनी स्त्री बन्धुमतीके साथ रहता था। इस विप्रदेवके प्रभावती नामकी पुत्री थी। इस पुत्रीने जैनगुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी, अतः इसका सम्यग्दर्शन निरन्तर उज्ज्वल होता जा रहा था।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वनक्रीडाके लिए गया। वहाँ उसकी स्त्रीको साँपने काट लिया, जिससे उसका प्राणान्त हो गया। पत्नीके वियोगसे विप्रदेव वेदना-विह्वल हो गया, उसकी अवस्था उन्मत्तों जैसी हो गई। कुमारी प्रभावतीने पिताको बहुत समझाया। संसारका स्वरूप बतलाया तथा कर्मगतिकी विचित्रता समझाकर उसे शान्त किया। पश्चात् उसे दिगम्बर दीक्षा दिलायी। श्रुतकीर्त्तिने उग्र

तपश्चरण कर कुछ ऋद्धियाँ प्राप्त कर ली तथा अनेक तन्त्र-मन्त्र सिद्धकर वह भ्रष्ट हो गया तथा विद्याके प्रभावसे नगर बसाकर गृहस्थी सहित रहने लगा। जब प्रभावतीको यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने पिताके पास आई और उसे समझाया—"पिताजी, आपने पवित्र दिगम्बर दीक्षा धारण की है। यह आत्माका कल्याण करनेवाली है। आप इस ममतामें फँसकर अपने धर्मको कलंकित न करें।" पुत्रीकी बातोंका प्रभाव श्रुतकीर्त्तिपर कुछ नहीं हुआ, वह प्रभावतीकी बातोंसे चिढ़ गया, अतः उसने विद्याबलसे उसे एक नीरव वनमें छोड़ दिया। प्रभावती नमस्कार मन्त्र जपती हुई वनमें बैठी थी कि वहाँ वनदेवी प्रस्तुत हुई और बोली—'बेटी! तुम्हारी दृढ़ता, शीलव्रत और अटूटभक्तिने मुझे विचलित कर दिया है। मैं तुमसे अधिक प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, कहो। मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करना चाहती हूँ'। प्रभावतीने कैलाशयात्राकी इच्छा प्रकट की। देवीने अपने प्रभावसे उसे कैलाशपर पहुँचा दिया। प्रभावती वहाँ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीके दिन पहुँची, इस दिन देव भी वहाँ भगवान्‌की पूजा करनेके लिए आये हुए थे। यहाँपर प्रभावतीने पद्मावतीदेवीके निर्देशानुसार पुष्पाञ्जलि व्रत धारण किया और उसका विधिवत् पालन करना आरम्भ कर दिया। उसने वहीं रहकर पाँच वर्ष तक यह व्रत पाला तथा इसके पश्चात् उद्यापन कर दिया। उद्यापनके उपरान्त पद्मावती देवीने इसे मृणालपुर पहुँचा दिया। वहाँ जाकर इसने स्वयप्रभु गुरुसे आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लिये और उग्र तपश्चरण करने लगी। इसकी तपस्याकी प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। पिता श्रुतकीर्त्तिको प्रभावतीकी प्रशंसा सह्य नहीं हुई। अतः उसने उसकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित करनेके लिए विद्याएँ भेजीं, पर प्रभावती उन विद्याओंसे तनिक भी विचलित नहीं हुई। अन्तमें समाधिमरण धारणकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। उसका नाम पद्मनाभ रखा गया।

एक दिन पद्मनाभ देवने विचार किया कि हमारे पूर्व जन्मका पिता मिथ्यात्वमें फँस गया है। इसका उद्धार करना आवश्यक है। अतः वह

श्रुतकीर्त्तिके पास गया तथा उसे खूब समझाया। श्रुतकीर्त्तिने समस्त प्रपंच छोड़ दिये और वह जिनोक्त तपश्चरणमें सलग्न हो गया। आयुके अन्तिम समयमें समाधिमरण धारण किया जिसके प्रभावसे वह स्वर्गमे प्रभासदेव हुआ। वही पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तुम रत्नशेखर हुए हो और तुम्हारी स्वर्गकी देवी यह मदनमजूषा हुई है। मेघवाहन तुम्हारे पूर्वभवके पिता श्रुतकीर्त्तिका जीव है। पुष्पाञ्जलि व्रतकी इस महिमाको सुनकर चक्रवर्तीने इस व्रतको ग्रहण कर लिया। कुछ समय तक राज्य करनेके उपरान्त उसे विरक्ति हो गई और दिगम्बर दीक्षा धारणकर उग्र तपश्चरण किया। केवलज्ञान-लक्ष्मीकी प्राप्ति की। तत्पश्चात् योगनिरोध कर अघातिया कर्मोंको नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

रोहिणी व्रतका समाजमे अधिक प्रचार है। इस व्रतके पालन करनेसे धन, ऐश्वर्य, पुत्र, विद्याकी प्राप्ति एव अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्त्ति होती है।

रोहिणी व्रत-कथा

आख्यानमे बताया गया है कि हस्तिनापुरका राजकुमार अशोक अपनी प्रिया रोहिणीके शान्त स्वभावके कारण अत्यधिक चिन्तित था। एक दिन उसने मुनिराजके दर्शनकर उनसे अपनी प्रियाके शान्त रहनेका कारण पूछा।

मुनिराज—"कुमार, प्राचीनकालमें इसी नगरमे एक धनमित्र नामका व्यक्ति रहता था। इसके दुर्गन्धा नामकी कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे मातापिता अत्यन्त चिन्तित रहते थे कि इसका विवाह किस प्रकार होगा। किसी प्रकार उसका विवाह श्रीषेण नामक व्यसनी व्यक्तिके साथ सम्पन्न हो गया। श्रीषेण भी अपनी पत्नीको एक ही महीनेमें त्यागकर चला गया, जिससे दुर्गन्धाको महान् कष्ट रहने लगा। एक दिन अमृतसेन नामके मुनि उस नगरमे आये। धनमित्र अपनी कन्या दुर्गन्धासहित उनकी वन्दनाके लिए गया। अवसर पाकर उसने दुर्गन्धाके भवान्तर उनसे पूछे।"

मुनिराज—"वत्स! सोरठ देशमें गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है। उसमें भूपाल नामका राजा अपनी भार्या सिन्धुमती सहित निवास करता है।

एक दिन वसन्त ऋतुमे राजा रानी सहित वनक्रीड़ाको गया। मार्गमें मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा—तुम लौट जाओ, मुनिराजके लिए आहार तैयार करो। रानी राजाके आदेशानुसार लौट तो आई, पर मुनिराजको वन-विहारमे बाधक समझकर उसने कडुवे लौकेका आहार तय्यार किया। मुनिराज चर्य्याके लिए आये। रानीने पडगाहकर उन्हें कडुवे लौकेका आहार करा दिया, जिससे मुनिराजके शरीरमे अपार वेदना हुई और उनका प्राणान्त हो गया। रानीके दुष्कृत्यकी बात राजाको अवगत हुई, अतः उसने उसे घरसे निकाल दिया। रानीके शरीरमे उसी जन्ममे गलित कुष्ठ उत्पन्न हो गया, जिससे सकल्प-विकल्प पूर्वक उसने प्राण त्याग किये, जिसके प्रभावसे वह नरक गई। वहाँसे च्युत होकर गायका जन्म धारण किया और अब यह तुम्हारे यहाँ दुर्गन्धा हुई है।"

धनमित्र—"स्वामिन्! इसके पापके प्रायश्चित्तके लिए कोई व्रतविधान बतलानेकी कृपा करें, जिससे इसका जीवन सुखी हो सके।"

मुनिराज—"वत्स! सम्यग्दर्शन-सहित प्रतिमास रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास करे। इस दिनको चैत्यालयमे धर्मध्यान, पूजन आदिके साथ व्यतीत करे। ५ वर्ष और ५ मास तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर दे।"

दुर्गन्धाने मुनिराज-द्वारा प्रतिपादित विधिके अनुसार उक्त व्रतका पालन किया, जिसके प्रभावसे यह प्रथम स्वर्गमे देवी हुई। वहाँसे च्युत होकर यह तुम्हारी भार्या बनी है। तुम भी पहले भील थे। तुमने एक मुनिराजको घोर उपसर्ग दिया था, जिस पापके कारण तुम सातवें नरक गये। वहाँसे निकलकर अनेक कुयोनियोमे भ्रमण करनेके पश्चात् एक वणिक्के घर जन्म लिया। तुम्हारा शरीर यहाँ अत्यन्त घृणित और दुर्गन्धित था। तुम्हारे पास भी कोई नही आता था। तुमने मुनिराजसे रोहिणी व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे तुम स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे च्युत होकर विदेहमें अर्ककीर्त्ति चक्रवर्ती हुए। वहाँ दीक्षा धारण कर तपस्या की, जिससे देवेन्द्र पद प्राप्त किया। स्वर्गसे च्युत होकर तुम अशोक नामके राजा हुए हो। राजा अशोकने कालान्तरमे दीक्षा धारणकर तपश्चरण

किया; जिससे उसे निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई। रोहिणीने भी समाधिमरण धारण कर स्त्री-पर्यायका छेद कर स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया।

लब्धिविधान व्रतका पालन करनेसे समस्त संचित पाप भस्म हो जाता है। आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। बतलाया गया है कि

लब्धिविधान व्रत कथा

बनारस नगरीके राजा विश्वसेनकी रानीका नाम विशालनयना था। इसकी दो सखियाँ थीं—चमरी और रंगी। एक दिन राजाने अपनी सभामें एक अभिनयका आयोजन कराया। अभिनय बहुत ही सुन्दर हुआ। रानी अभिनेताओंकी कुशलतापर मुग्ध हो गई और उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया। रानी एक दिन रातमें अपनी दोनों सखियोंके साथ घरसे निकल पड़ी और भ्रष्ट होकर वेश्या कर्म करने लगी। इन तीनों ने एक दिन मुनिराजकी तपस्यामें विघ्न उत्पन्न किया, उन्हें नाना प्रकारके उपसर्ग दिये। इसी पापके उदयसे उन तीनोंको बहुत कालतक अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करना पड़ा। पश्चात् उज्जयिनी नगरीके पास पलास नामके ग्राममें एक शूद्रके घर तीनों पुत्रियाँ हुईं, जो अत्यन्त कुरूपा थीं। इनके माता-पिता जन्मते ही मरणको प्राप्त हो गये थे, इनके कुत्सित व्यवहारके कारण ग्रामवासियोंने इन तीनोंको ग्रामसे निकाल दिया था। फलतः तीनों ही भटकती हुई पाटलिपुत्रके उद्यानमें पहुँचीं। वहाँ मुनिराजके दर्शन कर तीनोंने अपने जन्मको धन्य समझा। उनके उपदेशामृतसे प्रभावित होकर तीनोंने लब्धिविधान व्रत ग्रहण किया और उसका बहुत ही श्रद्धा और भक्तिके साथ पालन करने लगीं। व्रताचरणके कारण उनकी परिणति निर्मल होने लगी, परिणामोंमें कोमलता आ गई। उन्होंने आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे व्रतके प्रभावसे वे पाँचवें स्वर्गमें देव हुईं। वहाँसे चयकर विशालनयनाका जीव तो मगध देशके बाडवनगरमें काश्यगोत्रीय साण्डिल्य ब्राह्मणकी साण्डिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। यही गौतम भगवान् महावीरके समवशरणका प्रथम गणधर हुआ, जिसने निर्वाणपद पाया। चमरी और रंगीके जीव देवपर्याय

से चयकर मनुष्य हुए। व्रतके संस्कारके कारण इनकी आत्मामें निर्मलता थी, अतः निमित्त पाकर ये विरक्त हुए तथा दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तपश्चरण करने लगे। उत्तरोत्तर उग्र तपश्चरण धारण करनेके कारण इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् योगोंका निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

इस व्रतका फल अनेक भव्यजीवोंको प्राप्त हुआ है। बताया गया है कि प्राचीनकालमें विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमे शिवमन्दिर नामका नगर था। वहाँके राजाका नाम प्रियकर और रानीका नाम मनोरमा था। इन्हें अपने धन-यौवनका अत्यन्त गर्व था, जिससे रानी मनोरमाने सुगुप्त नामके मुनिके ऊपर जो कि नगरमे परिचर्याके लिए जा रहे थे, पानकी पीक थूक दी; जिससे मुनिराज अन्तराय होनेके कारण बिना ही आहार किये वनको लौट गये।

सुगन्धदशमी व्रतकथा

मुनिको उपसर्ग देनेके कारण रानी मरकर गधी हुई, पुनः शूकरी, कूकरी पर्यायोंको धारण करनेके उपरान्त मगधदेशके वसन्ततिलक नगरमे विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाके गर्भसे दुर्गन्धा नामकी कन्या हुई। कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे इसके निकट कोई नही रह सकता था।

एक दिन उस नगरमें सागरसेन नामके मुनि पधारे। मुनिके दर्शनके लिए सारा नगर उमड़ चला। राजा भी वन्दनाके लिए गया और उसने अवसर पाकर मुनिराजसे पूछा—'प्रभो! मेरी इस कन्याकी यह अवस्था किस कारणसे हुई है'? मुनिराजने दुर्गन्धाकी पूर्वभवावलीका निरूपण कर बताया कि मुनिराजका अपमान करनेका यह फल प्राप्त हुआ है। पुनः राजाने कहा—'स्वामिन्! इस पापसे छुटकारा कैसे होगा?'

मुनिराज—"राजन्! सम्यग्दर्शन सहित श्रावकके व्रत धारण करने एवं सुगन्धदशमी व्रतका पालन करनेसे यह अशुभ कर्म नष्ट हो जायगा। दुर्गन्धाने मुनिराजका आदेश स्वीकार कर सुगन्धदशमी व्रत ग्रहण कर लिया। विधिपूर्वक व्रतके पालन करनेसे निदान बाँधनेके कारण वह स्वर्गमें

अप्सरा हुई। पश्चात् वहाँसे चयकर मगधदेशके पृथ्वीतिलक नगरके राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई। यह कन्या अत्यन्त सुन्दरी और सुगन्धित शरीरवाली थी। इसका विवाह कौशाम्बी-नरेश अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ सम्पन्न हुआ। कुछ दिनोंके उपरान्त मदनवतीने ससारसे विरक्त होकर आर्यिकाके व्रत धारण किये। उग्र तपश्चरणके प्रभावसे उसने स्त्रीपर्यायका छेद किया और सोलहवें स्वर्गमे देव हुई। वहाँसे च्युत होकर वह वसुन्धरा नगरीके मकरकेतु राजाके यहाँ कामकेतु नामका पुत्र हुई और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

यह व्रत स्वर्गापवर्ग देनेवाला है। इस व्रतके पालन करनेसे धन-धान्यकी प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि अपर विदेह क्षेत्रमे गान्धिल नामका देश है, इसमे पाटलीपुर नामके नगरमे नागदत्त नामका एक सेट और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी। निर्धन होनेके कारण नागदत्त और सुमतिको लकडी ढोनेका कार्य करना पडता था। एक दिन सुमति जगलसे लकडी लेनेके लिए गयी हुई थी। वह प्यासकी वेदनासे त्रस्त होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठ गयी। उसने देखा कि बहुतसे व्यक्ति पिहिताश्रव नामके केवलीकी वन्दनाके लिए जा रहे हैं। वह भी अपनी वेदना भूलकर सब लोगोंके साथ भगवान्की वन्दनाके लिए चल दी। समवशरणमे पहुँचकर उसने भक्तिभावपूर्वक भगवान्की वन्दना की और एकाग्रचित्तसे उपदेश सुनने लगी। अवसर पाकर उसने अपने दरिद्री होनेका कारण पूछा। भगवान्ने उसके भवान्तरोंका वर्णन किया तथा मुनिनिन्दाके कारण ही इस प्रकारकी दरिद्रता प्राप्त होनेकी बात कही। पश्चात् उक्त महापापसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए जिनगुणसम्पत्ति व्रत पालन करनेकी बात कही। उसने श्रद्धा और भक्तिसहित उक्त व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे अनेक भव धारणकर वह हस्तिनापुरमें श्रेयान्स नृपति हुई, जिसने भगवान् आदिनाथको आहार दिया, पश्चात्

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकथा

दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

मुकुटसप्तमी व्रतकथा

हस्तिनापुरके राजा विजयसेनकी रानीका नाम विजयावती था। उसके दो पुत्रियाँ थी। मुकुटशेखरी और विधिशेखरी। इन दोनो बहनोमे परस्पर अत्यन्त स्नेह था, एकके बिना दूसरी रह ही नहीं सकती थी। राजाने दोनों कन्याओका विवाह अयोध्याके राजपुत्र तिलकमणिके साथ कर दिया। एक दिन राजा विजयसेनने चारण ऋद्धिधारी मुनियोंसे पूछा—'प्रभो! मेरी कन्याओके पारस्परिक प्रेमका क्या कारण है।' मुनिराज कहने लगे—'इस नगरके सेठ धनदत्तकी कन्या जिनमतीका सख्यभाव मालीकी कन्या वसन्तीके साथ था। दोनोंने मुनिराजके उपदेशसे मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। एक दिन बगीचेमें इन दोनों कन्याओको सर्पने काट लिया। णमोकार मन्त्रका ध्यान करनेके कारण वे स्वर्गमे देवियाँ हुईं। वहाँसे चयकर तुम्हारे यहाँ कन्याएँ हुई है। इनका स्नेह भवान्तरसे चला आ रहा है। इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर उन कन्याओने श्रावकके द्वादशव्रत धारण किये तथा मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया। विधिपूर्वक व्रतका पालन किया। आयुके अन्तमे समाधिमरण धारण किया, जिससे स्त्रीलिंगका छेदकर स्वर्गमे देव हुई। अब वहाँसे चयकर मोक्षपद प्राप्त करेगी।

त्रिलोकतीज कथा

त्रिलोकतीज व्रतका पालन हस्तिनापुरके राजा विशाखदत्तकी रानी विजयसुन्दरीने किया था, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर देवपद प्राप्त किया और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर निर्वाणपद पाया।

ज्येष्ठजिनवरव्रत-कथा

इस व्रतको गुजरात देशकी खभहुरी नगरीके सोमशर्मा ब्राह्मणके पुत्र यज्ञदत्तकी स्त्री सोमश्रीने धारण किया था; जिसके प्रभावसे वह श्रीधर राजाकी पुत्री कुम्भश्री हुई। मुनिराजके उपदेशसे इस भवमें उसने ज्येष्ठजिनवर व्रत धारण किया। प्रति दिन अभिषेक करके गन्धोदक लाकर अपनी पूर्वपर्यायकी सासुके

शरीरको लगाकर उसका कुष्ठरोग दूर किया । व्रतके प्रभावसे वह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई और भवान्तरमे मोक्षपद प्राप्त करेगी ।

अक्षयफलदशमी व्रतकथा

इस व्रतके अनुष्ठानसे पुत्रकी प्राप्ति होती है । राजगृही नगरीके मेघनाद राजाकी रानी पृथ्वीदेवी पुत्रके अभावमे उदास रहती थी । एक दिन उसने शुभकर नामक मुनिराजके दर्शन किये और उनसे पुत्र प्राप्तिका उपाय पूछा । मुनिराजने कहा—'भवान्तरमे मुनिदानमे अन्तराय करनेके कारण पुत्रप्राप्तिमें अन्तराय हो रहा है । अतः इस पापके शासनके लिए अक्षयदशमी व्रतका पालन करो । उन दोनोंने मुनिके आदेशानुसार विधिपूर्वक व्रतका अनुष्ठान किया । पश्चात् उसका उद्यापन कर दिया । व्रतके प्रभावसे रानीको सात पुत्र और पॉच कन्याओंकी प्राप्ति हुई । राजाने आयुके अन्तमे समाधिमरण धारण किया, जिससे स्वर्गकी प्राप्ति हुई । पश्चात् मोक्षपद प्राप्त किया ।

श्रवणद्वादशी व्रतकथा

इस व्रतके पालन करनेका फल मालव प्रान्तके पद्मावतीपुर नगरके राजा नरब्रह्माकी रानी विजयवल्लभाके गर्भसे उत्पन्न शीलवती नामकी कन्याको प्राप्त हुआ है । इसने मुनिनिन्दा की थी तथा मुनिको उपसर्ग दिया था, इस पापके कारण अनेक कुयोनियोमे परिभ्रमण करनेके उपरान्त यह उक्त राजाकी कानी, कुबडी और कुरूपा कन्या हुई थी । मुनिराज-द्वारा श्रवणद्वादशी व्रत धारण करनेके प्रभावसे स्वर्गापवर्ग प्राप्तिके योग्य हुई ।

आकाशपञ्चमीव्रत आख्यान

इस व्रतका पालन सोरठ देशके तिलकपुर नामक नगरके भद्रशाह नामक व्यापारीकी पुत्री विशालाने किया था । यह कन्या सुन्दरी थी, पर मुखके ऊपर श्वेतकुष्ठका दाग था, जो सिद्ध चक्रकी आराधना करनेसे आधा हो गया था । भद्रशाहने अपनी इस पुत्रीका विवाह विधान करनेवाले वैद्यके साथ ही कर दिया था ।" एक दिन देशाटन करते समय भीलोंने वैद्यराजको मारकर उसका सब धन लूट लिया । विशाला किसी प्रकार

बच कर दुःखी होती हुई एक नगरमे गयी। वहाँ मुनिराजके दर्शनकर उनका उपदेश श्रवण किया और उनसे आकाशपंचमी व्रत ग्रहण किया। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे विशालाने अनेक पर्याय व्यतीत करनेके उपरान्त निर्वाणपद प्राप्त किया।

णमोकार पैंतीसी व्रताख्यान

इस व्रतका सम्यक् पालन करनेके कारण गोपाल नामका ग्वाला चम्पानगरीमें वृषभदत्त सेठके यहाँ सुदर्शन नामका पुत्र हुआ और उसने विरक्त होकर दिगम्बरी दीक्षा धारण की। तथा तपश्चरण द्वारा कर्मनाश कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

बारासो चौंतीसी व्रत

इस व्रतका पालन उज्जयिनी नगरीके राजा हेमवर्माने किया था, जिसके प्रभावसे तीसरे भवमे विदेहक्षेत्रकी विजयापुरी नगरीमें धनञ्जय राजाके चन्द्रभानु नामका तीर्थङ्कर पुत्र हुआ और पञ्चकल्याणक प्राप्तकर निर्वाणलाभ लिया।

मुक्तावलिव्रत आख्यान

इस व्रतका पालन दुर्गन्धा नामकी ब्राह्मण कन्याने किया था, जिसके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमे देव हुई थी और वहाँसे चयकर मथुरामें श्रीधर-राजाके यहाँ उसका जीव पद्मरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इसने वासुपूज्य स्वामीके समवशरणमे दीक्षा ग्रहण की और उनका गणधरपद प्राप्त किया। पीछे तपश्चरण द्वारा कर्मनाश कर मोक्षपद प्राप्त किया।

मेघमालाव्रत आख्यान

कौशाम्बी नगरीमे वत्सराज नामका सेठ था और उसकी पत्नीका नाम पद्मश्री था। पूर्व अशुभ कर्मोदयसे सेठके घर दरिद्रताका निवास था। इसके सोलह पुत्र और बारह कन्याएँ थी। दरिद्रताके कारण यह परिवार अत्यन्त दुःखी था। एकदिन एक चारण ऋद्धिधारी मुनि पधारे। सेठने मुनिसे अपनी दरिद्रताके विनाशका उपाय पूछा। मुनिराजने मेघमालाव्रत करनेका उपदेश दिया। व्रतका पालन करनेसे उस दम्पत्तिके सारे दुःख नष्ट हो गये। वे स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए और वहाँसे चयकर मनुष्य होकर कर्म-नाशकर मोक्षपद प्राप्त किया।

पाटलिपुत्र नगरमे पृथ्वीपाल राजा रहता था, इसकी रानीका नाम मदनावती था। इसी नगरमे सेठ अर्हद्दास भी अपनी पत्नी लक्ष्मीमतीके साथ रहते थे। इन्हीके पड़ोसमें सेठ धनपति भी रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम नन्दनी था। नन्दनीके मुरारीनामका इकलौता पुत्र था, जिसकी साँपके काटनेसे मृत्यु हो गयी। नन्दनीके घरमे पुत्रशोकके कारण बहुत दिनोतक कोलाहल होता रहा। लक्ष्मीमतीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, अतः वह भ्रमवश हँसती हुई उसके यहाँ गई। नन्दनीको लक्ष्मीका यह बर्ताव बुरा लगा और उसने बदला लेनेकी बात सोची। एकदिन अपनी दासी द्वारा एक साँप घड़ेमे बन्दकर लक्ष्मीमतीके पास हार कहलाकर भेजा। लक्ष्मीमतीने उसे घड़ेमेसे खोल गलेमें पहन लिया। उसने गलेमे वह सच्चा हार दिखलाई पडता था। एक दिन रानी मदनावतीने लक्ष्मीमतीके गलेमे उस तरहके हारको देखकर घर आई और राजासे कहा—महाराज मुझे लक्ष्मीमती सेठानी जैसा हार चाहिए। राजाने अगले दिन सेठ अर्हद्दासको बुलाकर वैसा ही हार बनवानेको कहा। सेठने उसी हारको ले जाकर राजाको भेट किया; किन्तु यहाँ विचित्र दृश्य था। सेठके हाथका हार राजाके हाथमे जाते ही सर्प बन गया, इससे राजाको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, और इसने मुनिराजसे इसका रहस्य पूछा। मुनिराजने निर्दोष सप्तमी व्रतका प्रभाव बतलाया। राजा और सेठ अर्हद्दासने इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे वे देव हुए।

निर्दोषसप्तमीव्रत आख्यान

उज्जयिनीमे जिनदत्त सेठके पुत्र ईश्वरचन्द्र तथा उसकी पत्नी चन्दनाने इस व्रतका पालन किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गसुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

चन्दनषष्ठीव्रत

इस व्रतका पालन आजतक सहस्रो नर-नारियोने किया है। प्रथमानुयोगमे अयोध्यानगरीके निकटवर्ती पद्मखण्ड नामक ग्राममे सोमशर्मा ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री सोमने किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्णादिक सुख भोगकर सोमशर्माने मोक्षपद

अनन्तचतुर्दशीव्रत

प्राप्त किया तथा सोमा भविष्यमें निर्वाण लाभ करेगी।

जिनरात्रिव्रतका पालन भगवान् आदिनाथके पोते मारीचके जीवने सिंहकी पर्यायमें चारणमुनि अमितकीर्त्तिके उपदेशसे किया था, जिसके प्रभावसे अनेक पर्यायोंमें सुख भोगकर अन्तमें कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थके यहाँ अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जन्म हुआ और पञ्चकल्याणक जैसे महाभ्युदयको प्राप्तकर मोक्षपद प्राप्त किया।

जिनरात्रिव्रत आख्यान

इस व्रतका पालन कुरुजागलदेशमें गगानदीके तटवर्ती राजनगर नामक ग्राममें धनपाल सेठके पुत्र धनभद्र और जिनभक्त सेठकी पुत्री जिनमतीने किया था, जिसके प्रभावसे लौकिक उत्तमोत्तम सुख भोग अविनाशी पद प्राप्त किया। यह व्रत सभी प्रकारके वैभवोंको देनेवाला है। इसके द्वारा सभी प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण किया जा सकता है। सन्तान प्राप्ति और धनप्राप्तिके लिए इस व्रतकी उपयोगिता अधिक बतलायी गयी है।

कोकिलापञ्चमी व्रताख्यान

इस व्रतका पालन लक्ष्मीमती ब्राह्मणीके जीवने किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि सुख भोगकर कुण्डलपुर नगरमें राजा भीष्मके यहाँ रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई। यह सौराष्ट्रदेशके द्वारावती नगरीके राजा श्रीकृष्णचन्द्रकी पट्टरानी हुई और अन्तमें अपने पुत्र प्रद्युम्नकुमारके साथ दीक्षा लेकर उत्तम सुखको प्राप्त किया।

रुक्मिणी व्रताख्यान

इस व्रतका पालन श्रेष्ठिपुत्री धनश्रीने किया था, जिसके कारण उसने स्वर्गके अनुपम सुखोंको प्राप्त किया।

कर्मनिर्जराव्रत

प्राचीनकालकी बात है कि मगधदेशके सुप्रतिष्ठ नगरके एक बगीचेमें सागरसेन नामके मुनिके पास मासका लोलुपी एक स्यार रहता था। मुनिराजने उसे धर्मोपदेश देकर रात्रि-भोजनका त्याग कराया और व्रत दिया। उस स्यारने उसका अपने जीवन पर्यन्त भावपूर्वक पालन किया, जिसके प्रभावसे मृत्युके उपरान्त उसी ग्राममें सेठ कुबेरदत्तके यहाँ प्रीतिंकर नामका पुत्र हुआ

अनस्तीव्रताख्यान

और दिगम्बरी दीक्षा धारण कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

यह व्रत भगवान् ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलि स्वामीने किया था, जिसके कारण दीक्षा लेकर निर्वाणपद प्राप्त किया। भगवान् आदिनाथकी पुत्री

कवलचन्द्रायण

ब्राह्मी और सुन्दरीने भी इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुईं और पुनः पुरुष पर्याय धारण कर दीक्षासे निर्वाणपद प्राप्त किया।

निःशल्यअष्टमीव्रत

यह व्रत दक्षिण देशके सुपारा नगरमें सेठ नन्दकी पुत्री लक्ष्मीमतीने ग्रहण किया था, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर मोक्षपद प्राप्त किया।

मौनव्रताख्यान

मौन व्रतका पालन कौशलदेशके कूट नामक ग्राममे कुणकीकी कन्या तुंगभद्राने किया था, जिसके प्रभावसे वह कौशलदेशमे यमुनाके तटवर्ती कोशाम्बी नगरीके राजा हरिवाहनके यहाँ कोशल नामका पुत्र हुआ और ससारसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ग्रहण की। दोनों पितापुत्र विहार करते हुए किसी वनमे पहुँचे और उनके भडारी मतिसागरके जीवने, जो सिंह हुआ था, पूर्वभवके बैरके कारण उन दोनोंका शरीर विदारण कर दिया। दोनों योगिराज ध्यानमे लीन रहे, अतः कर्मोंका नाशकर अन्तःकृतकेवली होकर मोक्ष गये।

षष्ठीव्रताख्यान

इसका पालन मालवदेशके चिंच नामक ग्राममें एक नागगौड़की पुत्री चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रभावसे नदीमे शत्रु द्वारा बहाये हुए अपने पुत्रको पुनः प्राप्त किया और उसने चारित्रमती आर्यिकासे दीक्षा लेकर तपश्चरण किया, जिससे स्वर्गमे देव हुई; पश्चात् जिनदीक्षा ग्रहण कर कर्मनाश किया।

गरुड़पंचमी व्रत आख्यान

इस व्रतका पालन चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रसादसे पिताकी मूर्छा दूर की थी और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त किया।

चतुर्दशीव्रताख्यान सुजानी नामक सेठानीने विधिपूर्वक चतुर्दशीका व्रत धारण किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार प्रथमानुयोगमें व्रतोका फल प्राप्त करनेवालोंके आख्यान-वर्णित है। इन आख्यानोंसे एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि नारियोंने जितने अधिक व्रतोंका पालन किया है, पुरुषोंने नहीं। व्रत पालन करनेवालोंमे सम्भ्रान्त परिवारके अतिरिक्त दरिद्र-दीन परिवारोंकी नारियाँ भी है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या, पशु-पक्षियोने भी व्रत धारण किये हैं। व्रतोंसे आत्मा पवित्र हो जाती है। विषय-कषाय जन्म विकार शान्त होते हैं, जिससे अपने ऊपर विचार करनेका अवसर प्राप्त होता है। अतः समस्त नर नारियोंको व्रतप्राप्तिके लिए प्रयास करना चाहिए। हरिवंशपुराण और पद्मपुराणमे वर्णित है कि उग्र तपश्चरण व्रतोपवासके द्वारा ही प्राप्त होता है। कर्मनिर्जराका साधन व्रत हैं।

ग्रन्थकर्त्ता

इस ग्रन्थका रचयिता कौन है, यह अनिर्णीत है। ग्रन्थके ऊपर सिंहनन्दी आचार्यका नाम लिखा है। दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थमें सिंहनन्दीकी एक कृति व्रततिथिनिर्णयका उल्लेख किया है। पर यह प्रस्तुत कृति सिंहनन्दीकी नहीं है; उनके ग्रन्थके आधारपर किन्हीं भट्टारक महानुभावने इसका संकलन किया है। ग्रन्थके आरम्भमे कहा गया है—

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन वाऽपरा।
हरिषेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम्॥
ग्राह्यं तच्चेदिवान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम्।
विधानं च व्रतानां वै ग्राह्यं प्रोक्तं समुत्तमम्॥
श्रुतसागरसूरिशभावशर्माभ्रदेवकः।
छत्रसेनादित्यकीर्त्तिसकलादिसुकीर्त्तिभिः॥

अर्थात्—पद्मनन्दी, पद्मदेव, हरिषेण, देवसेन, आदिसेन, श्रुतसागर, भावशर्मा, अभ्रदेव, छत्रसेन, आदित्यकीर्त्ति और सकलकीर्त्तिके ग्रन्थोका अवलोकन कर प्रस्तुत रचना सकलित की गयी है। रचयिताने पूज्यपादके शिष्य, इन्द्रनन्दी, काष्ठासंघके आचार्य, मूलसघके आचार्य, कर्णामृत पुराणके रचयिता केशवसेन आदिके मतोंकी भी आलोचना की है। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थका सकलन किसी भट्टारकने विक्रम सवत्की १७वीं शतीमें किया है। श्रुतसागरसूरि मूलसघ सरस्वती गच्छ, बलात्कार-

गणमें हुए। यह तार्किक, वैयाकरण और परमागममें प्रवीण थे। इन्होंने अपने गुरुका नाम विद्यानन्दी बताया है। विद्यानन्ददेवेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे और देवेन्द्रकीर्त्ति पद्मनन्दिके शिष्य। इन्हीं पद्मनन्दिकी शिष्य परम्परामें सकलकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, विजयकीर्त्ति और शुभचन्द्र भट्टारक हुए हैं। श्रुतसागर सूरिका व्रतकथाकोश प्रसिद्ध है, इसमे आकाशपञ्चमी, मुकुट-सप्तमी, चन्दनषष्ठी, श्रवण द्वादशी, अष्टाह्निका आदि व्रतोंकी कथाओंमे उनकी विधियाँ भी बतलायी गयी है। शुभचन्द्र भट्टारकने पल्यव्रतोद्यापन ग्रन्थ लिखा है, इस ग्रन्थमे इसकी विधिका भी जिक्र है। विक्रम सवत् १६८८ मे केशवसेनसूरिने कर्णामृतपुराणकी रचना की है। उसके भी एक दो श्लोक इस ग्रन्थमें उद्धृत है। अतः यह निश्चित है कि इसका सकलन किसी भट्टारकने सत्रहवी शताब्दीके अन्तिमपादमें किया। इसी कारण इसमें ११वी शतीसे १७वी शतीतकके आचार्यों और ग्रन्थोके उद्धरण विद्यमान है। सकलन उत्तम और क्रमबद्ध हुआ है। आवश्यक सभी व्रतोंकी तिथियोकी व्यवस्था प्रतिपादित कर दी गयी है।

आत्मनिवेदन

इस ग्रन्थका सम्पादन आदरणीय प० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकी प्रेरणासे व्यवहारोपयोगी होनेके कारण सन् १९५० मे ही किया गया था। उक्त पण्डितजी इसे वर्णी ग्रन्थमालासे प्रकाशित करना चाहते थे, उस ग्रन्थमालाके सम्पादक थे। प० जगन्मोहनलालजी शास्त्रीने अपना अभिमत ग्रन्थको शीघ्र प्रकाशित करनेके लिए दिया था। किन्तु अर्थाभावके कारण उक्त ग्रन्थमालासे प्रकाशित न किया जा सका।

इस कृतिको प्रकाशमे लानेका श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ काशीके सुयोग्य मन्त्री श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय एव श्रीमूर्त्तिदेवी जैनग्रन्थमाला के सस्कृत-प्राकृत विभागके सम्पादकद्वय डॉ० हीरालालजी और डॉ० ए० एन० उपाध्येजीको है। मै इन लोगोंका हृदयसे आभारी हूँ। प्रूफ देखनेमें श्री प० महादेवजी चतुर्वेदीसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है, अतः उनका भी आभार स्वीकार करता हूँ। उपर्युक्त आदरणीय शास्त्रीद्वयको भी धन्यवाद देता हूँ, जिनके प्रोत्साहनसे सम्पादन कार्य पूर्ण हुआ।

आरा आकाशपञ्चमी, वीराब्दः २४८२ } —नेमिचन्द्र शास्त्री

व्रततिथिनिर्णय

•

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

मङ्गलाचरण

श्रीमन्तं वर्धमानेशं भारतीं गौतमं गुरुम् ।
नत्वा वक्ष्ये तिथीनां वै निर्णयं व्रतनिर्णयम् ॥१॥

अर्थ—श्रीमन्त—अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंगश्री और समवशरण आदि विभूति रूप बहिरंग श्रीसे युक्त भगवान् महावीरस्वामीको, जिनवाणीको—सरस्वती रूप दिव्यध्वनिको एवं गुरु गौतम गणधरको नमस्कार कर निश्चयसे व्रतनिर्णय और तिथिनिर्णयको कहता हूँ।

प्रस्तावना

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन वाऽपरा ।
हरिषेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥२॥
ग्राह्यं तच्चेदिवान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।
विधानं च व्रतानां वै ग्राह्यं प्रोक्तं समुत्तमम् ॥३॥

अर्थ—श्री पद्मनन्दिमुनि, अपर पद्मदेवमुनि, हरिषेण एवं देवसेनसे जो चतुर्गुण प्रकल्पित—यथा समय नियत तिथिको धारण, विधिपूर्वक पालन, विधेय मन्त्रका जाप और प्रोषधोपवासयुक्त उत्तम व्रत कहे गये हैं, उन्हें ग्रहण करना चाहिये। अथवा इन्हीं आचार्योंके समान अन्य आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रतोंको ग्रहण करना चाहिए। व्रतोंके लिए जो विधान—विधि, नियत तिथि, जाप्य मन्त्र, अनुष्ठान करनेके नियम; बताया गया है, उसे निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

श्रुतसागरसूरीशभावशर्माभ्रदेवकः ।
छत्रसेनादित्यकीर्त्तिसकलादिसुकीर्त्तिभिः ॥४॥

अर्थ—श्रुतसागर आचार्य, भावशर्मा, अभ्रदेव, छत्रसेन, आदित्य-कीर्त्ति, सकलकीर्त्ति आदि आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रततिथिनिर्णयको कहता हूँ ।

क्रमतोऽहं प्रवक्ष्ये वै तिथिव्रतसुनिर्णयौ ।
मतं ग्राह्यं साम्प्रतं कुलाद्रिघटिकाप्रभम् ॥५॥

अर्थ—क्रमसे मैं तिथिनिर्णय और व्रतनिर्णयको कहता हूँ। इस समय व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथिका मान ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—प्राचीन भारतमें हिमाद्रि और कुलाद्रि दो मत व्रत-तिथियोंके निर्णयके लिए प्रचलित थे। हिमाद्रि मतका आदर उत्तर भारतमें था और कुलाद्रि मतका दक्षिण भारतमें। हिमाद्रि मतमें वैदिक आचार्य तथा कतिपय श्वेताम्बराचार्य परिगणित हैं। हिमाद्रि मतमें साधारणतः व्रततिथिका मान दस घटी प्रमाण स्वीकार किया गया है। हिमाद्रिमत केवल व्रतोंका निर्णय ही नहीं करता है, बल्कि अनेक सामाजिक, पारिवारिक व्यवस्थाओंका प्रतिपादन भी करता है। हिमाद्रिमतके उद्धरण देवीपुराण, विष्णुपुराण, शिवसर्वस्व, भविष्य एवं निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मिलते हैं। इन उद्धरणोंको देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें उत्तरभारतमें इसका बड़ा प्रचार था। पारिवारिक और सामाजिक जीवनकी अर्थव्यवस्था, दण्डव्यवस्था, जीवनोन्नतिके लिए विधेय अनुष्ठान आदिका निर्णय उक्त मतके आधारपर ही प्रायः उत्तर-भारतमें किया जाता था। ऋषिपुत्रकी संहिताके कुछ उद्धरण भी इस मतमें समाविष्ट हैं। हेमचन्द्राचार्य द्वारा प्ररूपित नियम भी हिमाद्रि मतमें गिनाये गये हैं। गर्ग, वृद्ध गर्ग और पाराशरके वचन भी हिमाद्रिमतमें शामिल हैं।

कुलाद्रिमत दक्षिण भारतमें प्रचलित था। इस मतकी द्रविड संज्ञा भी पायी जाती है। दिगम्बर जैनाचार्योंकी गणना भी इस मतमें की जाती थी, किन्तु प्रधानरूपसे केरलपक्ष ही इसमें शामिल था। इस मतमें वही तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मानी जाती थी, जो सूर्योदय कालमें छः घटी हो। यों तो इस मतमें भी कई शाखा-उपशाखाएँ प्रचलित थीं, जिनमें व्रत-तिथिकी भिन्न-भिन्न घटिकाएँ परिगणित की गयी है।

ज्योतिष शास्त्रमें वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिवस ये छः कालके भेद बताये गये हैं। वर्षके सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य ये पाँच भेद हैं। हेमाद्रिमतमें सौर, चान्द्र और बार्हस्पत्य ये तीन वर्षके भेद माने गये है। सावन वर्षमें ३६० दिन, सौर वर्षमें ३६६ दिन, चान्द्र वर्षमें ३५४ $\frac{१३}{६३}$ दिन तथा अधिक मास सहित चान्द्रवर्षमें ३८३ दिन २१ $\frac{१६}{६२}$ मुहूर्त्त और नाक्षत्र वर्षमे ३२७ $\frac{५१}{६७}$ दिन होते हैं। बार्हस्पत्य वर्षका प्रारम्भ ई० पू० ३१२८ वर्षोंसे हुआ है। यह माघसे लेकर प्रायः माघतक माना जाता है। इसकी गणना बृहस्पतिकी राशिसे की जाती है, बृहस्पति एक राशिपर जितने दिन रहता है, उतने दिनोंका बार्हस्पत्य वर्ष होता है। गणना करनेपर प्रायः यह १३ महीनोंका आता है। व्यवहारमे चान्द्रवर्ष ही ग्रहण किया जाता है[1]। इसका आरम्भ चैत्र-शुक्ला प्रतिपदासे होता है। अयनके सम्बन्धमें ज्योतिष शास्त्रमें बताया है कि तीन सौर ऋतुओंका एक अयन होता है

सूर्य आकाशमण्डलमें जिस पथसे जाते हुए देखा जाता है वही भूकक्ष अथवा अयनमण्डल है। यह चक्राकार है परन्तु बिल्कुल गोल नहीं, कहीं-कहीं कुछ वक्र भी है। इसके उत्तर दक्षिण कुछ दूरतक फैला हुआ एक चक्र है जो राशिचक्र कहलाता है। राशिचक्र और अयनमण्डल दोनों तीन सौ साठ ३६० अंशोंमे विभक्त हैं क्योंकि एक वृत्तमें चार समकोण होते हैं और प्रत्येक समकोणमें ९० अंश माने

१. स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा।
नान्य यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥—आष्टिषेण, नि० सि०

जाते हैं। इस प्रकार तीन सौ साठ ३६० अंशको १२ राशियोंमें विभक्त करनेपर प्रत्येक राशिका ३० अंश प्रमाण आता है। इन विभक्त राशियोंके नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

राशिचक्रका कल्पित निरक्षवृत्त विषुवरेखा कहलाता है। इस रेखाके उत्तर दक्षिण तेईस २३ अंश अट्ठाईस २८ कलाके अन्तरपर दो विन्दुओंकी कल्पना की जाती है। इनमें एक बिन्दु उत्तरायणान्त—उत्तर जानेकी अन्तिम सीमा, और दूसरा विन्दु दक्षिणायनान्त—सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। इन दोनों विन्दुओंके मध्य जो एक कल्पित रेखा है उसीका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तरायण और जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाता है उसे दक्षिणायन कहते हैं। व्यवहारमें कर्कराशिके सूर्यसे लेकर धनुराशिके सूर्य पर्यन्त दक्षिणायन और मकरसे लेकर मिथुन पर्यन्त सूर्यका उत्तरायण होता है। कुछ कार्योंमें अयनशुद्धि ग्राह्य समझी जाती है। माङ्गलिक कार्य प्रायः उत्तरायणमें ही सम्पन्न होते हैं।

दो महीनेकी एक ऋतु होती है। सौर और चान्द्र ये दो ऋतुओंके भेद हैं। चैत्र महीनेसे आरम्भ की जानेवाली गणना चान्द्रऋतु गणना होती है अर्थात् चैत्र-वैशाखमें वसन्तऋतु, ज्येष्ठ-आषाढमें ग्रीष्मऋतु, श्रावण-भाद्रपदमें वर्षाऋतु, आश्विन-कार्त्तिकमें शरद्ऋतु, अगहन-पौषमें हेमन्तऋतु और माघ-फाल्गुनमें शिशिरऋतु होती है। सौर ऋतुकी गणना मेष राशिके सूर्यसे की जाती है अर्थात् मेष-वृष राशिके सूर्यमें वसन्तऋतु, मिथुन-कर्क राशिके सूर्यमें ग्रीष्मऋतु, सिंह-कन्या राशिके सूर्यमें वर्षाऋतु, तुला-वृश्चिक राशिके सूर्यमें शरद्ऋतु, धनु-मकर राशिके सूर्यमें हेमन्तऋतु और कुम्भ-मीन राशिके सूर्यमें शिशिरऋतु होती है। विवाह, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य सौर मासके हिसाबसे ही किये जाते हैं।[1]

---

१. श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु।
तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्॥—निर्णयसिन्धु पृ० २

मासगणना चार प्रकारकी होती है—सावन, सौर, चान्द्र और नाक्षत्र। तीस दिनका सावनमास होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे लेकर अगली संक्रान्तिपर्यन्त सौरमास माना जाता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्रमास माना जाता है। अश्विनी नक्षत्रसे लेकर रेवती पर्यन्त नाक्षत्रमास माना गया है, यह प्रायः २७ २/६ १/७ दिनका होता है। व्यवहारमें शुभाशुभके लिए चान्द्र और सौरमास ही ग्रहण किये जाते हैं। कई आचार्योंका मत है कि विवाह और व्रतमें सौर-मास, शान्ति-पौष्टिकमें सावनमास, सांवत्सरिक कार्यमें चान्द्रमास ग्राह्य माने गये हैं[1]। अधिमास और क्षयमास सभी शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं। हेमाद्रिके मतसे कोई भी शुभकार्य इन दोनो मासोंमें नहीं करना चाहिए; किन्तु कुलाद्रिमतमें अधिकमास और क्षयमासकी अन्तिम तिथियाँ त्याज्य हैं। मध्यभाग इन दोनों महीनोंका ग्राह्य बताया गया है।

पक्षके दो भेद हैं—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। प्रायः सभी मांगलिक कार्योंमें शुक्लपक्ष ही ग्रहण किया जाता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमी तिथिके पश्चात् पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा जैसे शुभ कृत्य नहीं होते है।

प्रतिपदादि तिथियोंके नाम प्रसिद्ध हैं। अमावस्या तिथिके आठ प्रहरोंमेंसे पहले प्रहरका नाम सिनीवाली, मध्यके पाँच प्रहरोंका नाम दर्श और सातवें तथा आठवें प्रहरका नाम कुहू है। किन्हीं-किन्हीं आचार्योंका मत है कि तीनघटी रात्रि शेष रहनेके समयसे रात्रिके समाप्तितक सिनीवाली, प्रतिपदासे विद्ध अमावास्याका नाम कुहू, चतुर्दशीसे विद्ध अमावास्या दर्श कहलाती है। सूर्यमण्डल समसूत्रसे अपनी कक्षाके

१. सौरोमासो विवाहादौ यागादौ सावनः स्मृतः।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥
विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते।
पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके॥
आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा।
सावनेनैव कर्त्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना॥ —निर्णयसि० पृ० ७

समीपमें स्थित परन्तु शरवशसे पृथक् स्थित चन्द्रमण्डल जब हो तो सिनीवाली, सूर्यमण्डलमें आधे चन्द्रमाका प्रवेश हो तो दर्श और जब सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल समसूत्रोंमें हों तो कुहू होती है। प्रतिपदा-संयुक्त अमावास्या भी कुहू मानी जाती है। दिनक्षय या दिनवृद्धि होने पर समस्त अमावास्या दर्श संज्ञक मानी जाती है। प्रतिपदा सिद्धि देने-वाली, द्वितीया कार्य साधन करनेवाली, तृतीया आरोग्य देनेवाली, चतुर्थी हानिकारक, पंचमी शुभप्रद, षष्ठी अशुभ, सप्तमी शुभ, अष्टमी व्याधि-नाशक, नवमी मृत्युदायक, दशमी द्रव्यप्रद, एकादशी शुभ, द्वादशी और त्रयोदशी कल्याणप्रद, चतुर्दशी उग्र, पूर्णिमा पुष्टिप्रद एवं अमावास्या अशुभ है।

व्यवहारके लिए द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियाँ सभी कार्योंमें प्रशस्त बतायी गयी है। व्रतोंके लिए भिन्न-भिन्न आचार्योंने तिथियोंका भिन्न-भिन्न प्रमाण बताया है।

तिथिके सम्बन्धमें केशवसेन और महासेनका मत

केषाञ्चित् धर्मघटिकाप्रमं सम्मतमस्ति च।
केषाञ्चिद्विंशतिघटिकाप्रमं सम्मतमस्ति च ॥ ६ ॥

केषाञ्चित् केशवसेनादीनां मते कर्णामृतपुराणादिषु धर्म-घटिकाप्रमं मतम्। केचिदाहुः—सेनादीनां काष्ठासंघीणां मते विंशतिघटीमतम्। तेषां ग्रन्थेषु सारसंग्रहादिषु तन्मतं तद्द्वयं दशप्रमं विंशतिघटीप्रमं न मूलसंघरतसूरयः समाद्रियन्ते। अत-स्तद्द्वयं निर्मलसमं बहुभिः कुलाद्रिमतमादृतमित्यत अनवच्छिन्न-पारंपर्यात् तदुपदेशकबहुसूरिवाक्याच्च सर्वजनसुप्रसिद्धत्वात् रसघटीमतं श्रेष्ठमन्यतकल्पनोपेतं मतं सेननन्दिदेवा उपेक्षन्ते-ऽनाद्रियन्तेऽतः कुन्दकुन्दाद्युपदेशात् रसघटिका ग्राह्या कार्या इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अर्थ—किसीके मत (केशवसेनके मत) से दसघटी तिथि होनेपर भी— सूर्योदयसे लेकर दसघटीतक अर्थात् चार घण्टेतक तिथिके रहने पर दिनभरके लिए वही तिथि मानी जाती है। दूसरे आचार्योंके मतसे बीसघटी अर्थात् सूर्योदयसे आठ घंटोंतक रहनेपर ही तिथि दिनभरके लिए मानी गयी है।

आचार्य केशवसेनके मतसे सूर्योदय कालमें दसघटी रहनेपर ही तिथि ग्राह्य मान ली जाती है। सेनगण और काष्ठपारीणोंके मतमें बीसघटी रहनेपर ही तिथि पूरी मानी जाती है। इन दोनों सम्प्रदायोंके मतोंको— दसघटी और बीसघटी वाले मतोंको मूलसंघके आचार्य प्रमाण नहीं मानते हैं। अतः इन दोनों मतोंके समान निर्मल बहुतोंके द्वारा मान्य कुलाद्रिमत माना गया है। इस मतके द्वारा समर्थित निर्दोष परम्परासे प्राप्त तथा इस निर्दोष परम्पराके उपदेशक आचार्योंके वचनोंसे एवं सभी मनुष्योंमें प्रसिद्ध होनेसे छःघटी प्रमाण तिथिका प्रमाण माना गया है। अन्य जो तिथिका मान कहा गया है, वह कल्पनामात्र है, समीचीन नहीं है। इसको सेन और नन्दिगणके आचार्य उपेक्षा अर्थात् अनादर करते हैं। अतएव कुन्दकुन्दादि आचार्योंके उपदेशसे सभी मतोंकी अपेक्षा छःघटी प्रमाण तिथिका मान ग्राह्य है।

विवेचन—जिस प्रकार तारीख सदा २४ घण्टेतक रहती है, उस प्रकार तिथि सदा २४ घण्टेतक नहीं रहती। तिथिमें वृद्धि और ह्रास होता रहता है। कभी-कभी एक तिथि दो दिनतक जाती है, जिसे तिथिकी वृद्धि कहते हैं। कभी एक तिथिका लोप हो जाता है, जिसे अवम या क्षयतिथि कहते हैं। अधिकसे अधिक एक तिथि २६ घंटा ५४ मिनटकी हो सकती है अर्थात् पहले दिन जो तिथि सूर्योदयसे आरम्भ होती है, वह अगले दिन सूर्योदयके २ घंटा ५४ मिनटतक रह सकती है। एक तिथिका घट्यात्मक या दण्डात्मक मान ६७ घटी १५ पल होता है। प्रायः ६० घटी प्रमाण एकाध ही तिथि आती है। प्रतिदिन हीनाधिक प्रमाण तिथि होती रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब ६० घटी

प्रमाणतिथि न हो तो व्रतादिके लिए कौनसी तिथि ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि पाँच घटीके हिसाबसे तिथि वृद्धि और छःघटीके हिसाबसे तिथिक्षय होता है।

उदाहरण—ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है। जिस व्यक्तिको पञ्चमीका व्रत करना है, क्या वह मंगलवारको पञ्चमीका व्रत करेगा। यदि मंगलवारको व्रत करता है तो उस दिन ५ घटी ३० पल अर्थात् सूर्योदयके २ घण्टा १२ मिनटके पश्चात् षष्ठी तिथि आ जाती है। व्रत उसे पञ्चमीका करना है षष्ठीका नहीं, फिर वह किस प्रकार व्रत करे। आचार्यने विभिन्न मत-मतान्तरोंका खण्डन करते हुए कहा है कि जिस दिन सूर्योदयकालमें ६ घटीसे न्यून तिथि हो उस दिन उस तिथि सम्बन्धी व्रत नहीं करना चाहिए; किन्तु उसके पहले दिन व्रत करना चाहिए। जैसे ऊपरके उदाहरणमें पञ्चमीका व्रत मंगलवारको न कर सोमवारको ही करना पड़ेगा। क्योंकि मंगलवारको पञ्चमी ६ घटीसे कम है, यदि इस दिन पञ्चमी ६ घटी १५ पल होती तो यह व्रत इसी दिन किया जाता। तिथियोंका मान—घटी, पल प्रत्येक पञ्चांगमें लिखा रहता है।

व्रतके सिवा अन्य कार्योंके लिए वर्तमान तिथि ही ग्रहण की जाती है। अर्थात् जिस कार्यका जो काल है, उस कालमें व्याप्त तिथि जब हो, तभी उसको करना चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जा सकता है कि किसी व्यक्तिको ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीमें विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न करना है। ज्येष्ठ-पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है तथा सोमवारको ज्येष्ठसुदी चतुर्थी १० घटी १५ पल है। विद्यारम्भके लिए मंगलवारकी अपेक्षा सोमवार श्रेष्ठ होता है, सोमवारको चतुर्थी ६ घटीसे ऊपर है, अतः व्रतकी दृष्टिसे इस दिन चतुर्थी ही कहलायेगी, पर यों १० घटी १५ पलके उपरान्त पञ्चमी मानी जायगी। १० घटी १५ पलके ४ घण्टा ६ मिनट हुए। सूर्योदय इस दिन ५ बजकर २० मिनटपर होता है, अतः ९ बज-कर २६ मिनटके पश्चात् सोमवारको विद्यारम्भ किया जा सकता है।

यात्राके लिए भी यही बात है। यदि किसीको पश्चिम दिशामें जाना है तो वह सोमवारको पञ्चमी तिथिमें ९ बजकर २६ मिनटके उपरान्त जायगा तथा पूर्वमें जानेवाला मंगलवारको पञ्चमी तिथिके रहते हुए प्रातःकाल ७ बजकर ३२ मिनटतक यात्रारम्भ करेगा।

दान, अध्ययन, शान्ति-पौष्टिक कार्य, आदिके लिए सूर्योदय कालकी तिथि ही ग्राह्य मानी गयी है[1]। तिथियोंकी नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाएँ बतायी गयी हैं[2]। प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीकी नन्दा ; द्वितीया, सप्तमी और द्वादशीकी भद्रा संज्ञा; तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीकी जया ; चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्ता संज्ञा एवं पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्याकी पूर्णा संज्ञा है। नन्दा संज्ञक तिथियाँ मंगलवारको, रिक्ता संज्ञक तिथियाँ शनिवारको एवं पूर्णा संज्ञक तिथियाँ बृहस्पतिवारको पड़े तो सिद्धा कहलाती है। सिद्धा तिथियोंमें किया गया व्यापार, अध्ययन, देन-लेन अथवा किसी भी प्रकारका नवीन कार्य सिद्ध होता है। नन्दा संज्ञक तिथियोंमें चित्रविद्या, उत्सव, गृहनिर्माण, तान्त्रिक कार्य (जड़ी, बूटी, ताबीज आदि देनेके कार्य), कृषि सम्बन्धी कार्य एवं गीत, नृत्य प्रभृति कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न होते हैं। भद्रा संज्ञक तिथियोंमें विवाह, आभूषणनिर्माण, गाड़ीकी सवारी, एवं पौष्टिक कार्य ; जयासंज्ञक तिथियोंमें संग्राम, सैनिकोंका भर्ती करना, युद्ध क्षेत्रमें जाना एवं खर और तीक्ष्ण वस्तुओंका संचय करना ; रिक्ता संज्ञक तिथियोंमें शस्त्रप्रयोग, विषप्रयोग, निन्द्य-कार्य, शास्त्रार्थ आदि कार्य एवं पूर्णा संज्ञक तिथियोंमें माङ्गलिक कार्य,

१. या तिथि समनुप्राप्य उदय याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ —ज्योतिश्च० पृ० ५

२. नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चेति त्रिरन्विता।
हीना मध्योत्तमा शुक्ला कृष्णा तु व्यत्ययात्तिथिः ॥ आरभ सि० पृ० ४
तुलना—दिनशुद्धिदीपिका गाथा ८; धवलाटीका भाग १
ज्योतिश्चन्द्रार्क पृ० ५४

विवाह, यात्रा, यज्ञोपवीत आदि कार्य करना अच्छा होता है। अमावस्याको मांगलिक कार्य नहीं किये जाते हैं। इस तिथिमें प्रतिष्ठा, जापारम्भ, शान्ति और पौष्टिक कार्य भी करनेका निषेध किया गया है।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियोंकी पक्षरन्ध्र संज्ञा है। इनमें उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना अशुभ बताया है। यदि इन तिथियोंमें कार्य करनेकी अत्यन्त आवश्यकता हो तो इनके प्रारम्भकी पाँच घटिकाएँ अर्थात् दो घण्टे अवश्य त्याज्य हैं। अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त तिथियोंमें सूर्योदयके दो घण्टे बाद कार्य करना चाहिए।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मंगलवारको पञ्चमी, बुधवारको तृतीया, बृहस्पतिवारको षष्ठी, शुक्रवारको अष्टमी और शनिवारको नवमी तिथिके होनेपर दग्धयोग कहलाता है। इस योगमें कार्य करनेसे नानाप्रकारके विघ्न आते हैं। अभिप्राय यह है कि वार और तिथियोंके संयोगसे कुछ शुभ और अशुभ योग बनते हैं। यदि रविवार को द्वादशी तिथि हो तो दग्धयोग कहलाता है, इसमें शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आगेवाली तिथियोंको भी समझना चाहिए।

रविवारको चतुर्थी, सोमवारको षष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुधवारको द्वितीया, बृहस्पतिवारको अष्टमी, शुक्रवारको नवमी और शनिवारको सप्तमी तिथि विषमयोग संज्ञक होती हैं। अर्थात् उपर्युक्त तिथियाँ रवि आदि वारोंके साथ मिलनेसे विषम हो जाती हैं, इन विष योगोंमें भी कोई शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। नामके समान ही यह योग फल देता है।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको षष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुधवारको अष्टमी, बृहस्पतिवारको नवमी, शुक्रवारको दशमी और शनिवार को एकादशी ;तिथि हुताशनयोग संज्ञक होती हैं। इन तिथियोंमें भी रवि आदि वारोंके संयोग होनेपर शुभ कार्य करना त्याज्य है।

दग्ध-विष-हुताशन योग बोधक चक्र

रवि.	सो.	मं.	बुध	बृह.	शुक्र.	शनि.	योग
१२	११	५	३	६	८	९	दग्धयोग
४	६	७	२	८	९	७	विषयोग
१२	६	७	८	९	१०	११	हुताशनयोग

चैत्रमें दोनों पक्षोंकी अष्टमी, नवमी ; वैशाखमें दोनों पक्षोंकी द्वादशी ; ज्येष्ठमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, शुक्लपक्षकी त्रयोदशी ; आषाढमें शुक्लपक्षकी सप्तमी ; कृष्णपक्षकी षष्ठी, श्रावणमें द्वितीया, तृतीया, भाद्रपदमें प्रतिपदा, द्वितीया ; आश्विनमें दशमी, एकादशी ; कार्त्तिकमें कृष्णपक्षकी पंचमी, शुक्लपक्षकी चतुर्दशी ; मार्गशीर्षमें सप्तमी, अष्टमी ; पौषमें चतुर्थी, पंचमी ; माघमें कृष्णपक्षकी पंचमी और शुक्लपक्षकी षष्ठी एवं फाल्गुनमें शुक्लपक्षकी तृतीया मास शून्य संज्ञक हैं। इन तिथियोंमें मांगलिक कार्य आरम्भ करनेसे वंश और धनकी हानि होती है। ज्योतिष शास्त्रमें उपर्युक्त तिथियाँ निर्बल बतायी गयी हैं। इनमें विद्यारम्भ, गृहारम्भ, वेदीप्रतिष्ठा, पंचकल्याणक, जिनालयारम्भ, उपनयन आदि कार्य नहीं करने चाहिए।

मेष और कर्क राशिके सूर्यमें [1]षष्ठी, मीन और धनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, कन्या और मिथुनके सूर्यमें अष्टमी, सिंह

१. षष्ठी कर्कटके मेषे चापे मीने द्वितीयकाम् ।
चतुर्थी वृषभे कुम्भे दशमी सिंहवृश्चिके ॥
युग्मेऽष्टमी च कन्याया द्वादशी मकरे तुले ।
दहत्यर्को यतस्तस्माद्वर्जनीया इमाः सदा ॥
—वसुनन्दिप्रतिष्ठा पाठ प्र० प० श्लो० १५–१६

और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी, मकर और तुलाके सूर्यमें द्वादशी तिथि दग्धा संज्ञक बतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यमें षष्ठी, मिथुन और कन्याके सूर्यमें अष्टमी, सिंह और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी एवं तुला और मकरके सूर्यमें द्वादशी तिथि सूर्य-दग्धा संज्ञक होती हैं।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमामें द्वितीया, मेष और मिथुनके चन्द्रमामें चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमामें षष्ठी, मकर और मीनके चन्द्रमामें अष्टमी, वृष और कर्कके चन्द्रमामें दशमी एवं वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमामें द्वादशी तिथि चन्द्र-दग्धा कहलाती हैं। इन तिथियोंमें उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना वर्जित है।

सूर्यदग्धा तिथि-यन्त्र

धनु और मीनके	सूर्यमें	२	मिथुन और कन्याके	सूर्यमें	८
वृष और कुम्भके	सूर्यमें	४	सिंह और वृश्चिकमें	सूर्यमें	१०
मेष और कर्कके	सूर्यमें	६	तुला और मकरके	सूर्यमें	१२

चन्द्रदग्धा तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके	चन्द्रमामें	२	मकर और मीनके	चन्द्रमामें	८
मेष और मिथुनके	चन्द्रमामें	४	वृष और कर्कके	चन्द्रमामें	१०
तुला और सिंहके	चन्द्रमामें	६	वृश्चिक और कन्याके	चन्द्रमामें	१२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर अशुभ तिथियोंका त्याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ-कार्यमें समय शुद्धिका विचार करना परमावश्यक है। व्रतारम्भके लिए तिथिका प्रमाण छः घटी सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया है।

तिथि प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनियतं रसघटीप्रमम् ।
अयं श्रीपद्मदेवादिसूरिभिर्ज्ञानधारिभिः ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार व्रत-तिथिके प्रमाणके लिए नाना मत-मतान्तरों का अवलोकन कर ज्ञानवान् श्रीपद्मदेव आदि महर्षियोंने रस-घटी—छः घटी प्रमाण-तिथिके मतको ही प्रमाण माना है। अर्थात् जैन मान्यतामें उदया-तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु छः घटी प्रमाण-तिथि होनेपर ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

पद्मदेवके मतका उपसंहार

तदेव पद्मदेवाचार्योक्तं रसघटीमतं व्रतविधाने ग्राह्यम् ।
धर्मप्रमाणं मतं न ग्राह्यमिति ॥

अर्थ—व्रत-विधानके लिए छः घटी प्रमाण ही पद्मदेव आचार्यके मत से ग्रहण करना चाहिए। दस घटी प्रमाण व्रततिथिको नहीं मानना चाहिए। श्रीकुन्दकुन्दाचार्य तथा मूलसंघके अन्य आचार्योंका मत भी छः घटी प्रमाण-तिथि ग्रहण करनेका है।

प्रश्न

विविधातिथिसमायाते क्रियते हि व्रतं कथम् ।
पप्रच्छेति गुरुं शिष्यो विनयावनतमस्तकः ॥८॥

अर्थ—एक ही दिन कई तिथियोंके आ-जानेपर व्रत कब करना चाहिए अर्थात् कभी-कभी एक ही दिन तीन तिथियाँ रह सकती हैं, ऐसी अवस्थामें व्रत कब करना चाहिये ? इस प्रकारका प्रश्न विनम्र एवं नतमस्तक होकर शिष्योंने गुरुसे पूछा।

विवेचन—मध्यम मान तिथिका यद्यपि ६० घटी है, परन्तु स्पष्टमान तिथिका सदा घटता-बढता रहता है। कोई भी तिथि ६० घटी प्रमाण

एकाधबार ही आती है। कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठ सुदी द्वितीया प्रातःकाल १ घटी १५ पल है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पल पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस-दिन ५ बजकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ बजकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्थी तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयी। जिस व्यक्तिको तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्ध तिथियोंमें कैसे व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करना है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतका फल नहीं मिलेगा तथा इसके पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नहीं मिलती है, अतः किस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत-तिथिके निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथियोंके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शंकास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु व्यक्ति पशोपेशमें पड जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतका फल तभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टालकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार असमयकी वर्षा कृषिके लिए उपयोगी होनेके बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार असमयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्म-शुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निर्जरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निर्जरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियोंका बन्ध भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधायाः लक्षणं किमिति चेदाह ; सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्त्ताभावात्, क्षयाभावाच्च विद्धा सा वेधा ज्ञेया। सूर्योदयकालवर्तिन्या तिथ्या वेधत्वात्।

अर्थ—वेधा तिथिका लक्षण क्या है? आचार्य कहते हैं कि सूर्योदय समयमें जो तिथि तीन मुहूर्त—छःघटीसे कम होने अथवा उसका क्षय–अभाव होनेके कारण अन्य तिथिके साथ सम्बद्ध रहती है वेधा या विद्ध-तिथि कहलाती है। सूर्योदयकालमें रहनेवाली तिथिके साथ वेध—सम्बन्ध करनेके कारण वेधातिथि कहलाती है।

व्रतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान

सोदयं दिवसं ग्राह्यं कुलाद्रिघटिकाप्रमम् ।
व्रते वटोपमागत्यं गुरुः प्राह त्विति स्फुटम् ॥९॥

अर्थ—छःघटी प्रमाण तिथिके होनेपर दिनभरके लिए वही तिथि मान ली जाती है, अतः व्रतग्रहण, उपनयन, प्रतिष्ठा आदि कार्य उसी तिथिमें करने चाहिए। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रश्नके उत्तरमें गुरुने स्पष्ट कहा है।

विवेचन—प्राचीन भारतमें तिथिज्ञानके लिए दो मत प्रचलित थे—हिमाद्रि और कुलाद्रि। हिमाद्रि मत उदयकालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था, पर कुलाद्रि मत छः घटी प्रमाण उदय-कालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था। षट् कुलाचल होनेके कारण छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका प्रमाण माननेसे ही इस मतका नाम कुलाद्रि मत या कुलाद्रिघटिका मत पड़ गया था। कुछ लोग हिमाद्रि मतका प्रमाण दसघटी भी मानते थे।

ज्योतिषशास्त्रमें तिथियाँ दो प्रकारकी बतायी गयी हैं—शुद्धा और विद्धा। 'दिने तिथ्यन्तरसम्बन्धरहिता शुद्धा' अर्थात् दिनमानमें एक ही तिथि हो, किसी अन्य तिथिका सम्बन्ध न हो तो शुद्धा तिथि होती है। 'तत्सहिता विद्धा' एक ही दिनमें दो तिथियोंका सम्बन्ध हो तो विद्धा तिथि कहलाती है। आरम्भसिद्धि ग्रन्थमें विद्धा तिथिका विश्लेषण करते हुए कहा गया है—"जो तिथि तीन वारोंमें वर्तमान रहे

वह वृद्धि तिथि कहलाती है, मतान्तरसे इसका नाम भी विद्धा तिथि है। जब एक ही दिनमें तीन तिथियाँ या दो तिथियाँ वर्तमान रहें, वहाँ पर भी विद्धा तिथि मानी जाती है। जब एक दिनमें तीन तिथियाँ वर्तमान रहती हैं तो मध्यवाली तिथिका क्षय माना जाता है[१] तथा जब एक दिनमें दो तिथियाँ रहती हैं तो उत्तरवाली तिथिका क्षय माना जाता है[२]। उदाहरण—जैसे रविवारकी रातमें तीन घटी रात शेष रहनेपर पञ्चमी आरम्भ हुई, सोमवारको साठ घटी पञ्चमी है तथा मंगलको प्रातःकालमें तीन घटी पञ्चमी है, पश्चात् षष्ठी तिथि आरम्भ होती है। यहाँ पञ्चमी तिथि रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों दिनोंमें व्याप्त है अतः वृद्धितिथि मानी जायगी। यह वृद्धितिथि प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, उपनयन आदि समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

तीन तिथियोंकी स्थिति एक ही दिन इस प्रकार रहती है कि शुक्रवारको प्रातःकाल अष्टमी १ घटी १५ पल है, नवमी ५२ घटी ४० पल है और दशमी ६ घटी ५ पल है तथा शनिवारको दशमी ४९ घटी २० पल है। इस प्रकारको स्थितिमें शुक्रवारको अष्टमी, नवमी और

१. त्रीन्वारान् स्पृशती त्याज्या त्रिदिनस्पर्शिनी तिथिः।
वारे तिथित्रयस्पर्शीत्यवम मध्यमा च या ॥
यत्र तिथेर्वृद्धिस्तत्रैका तिथिर्वारत्रय स्पृशतीति सा त्रिदिनस्पर्शिनी। तस्याः फल्गुरिति नाम हर्षप्रकाशग्रन्थे। यत्र तु तिथिपातस्तत्रैको वारस्तिस्त्रस्तिथीः स्पृशति। तासु या मध्यमा तिथिः साऽवममित्युच्यते। एते द्वे अपि त्याज्ये। —आरम्भसिद्धि पृ० ६

२. या एकस्मिन् वासरे द्वयन्ता द्वयोस्तिथ्योः यत्र समाप्तिः तत्रोत्तरा क्षयतिथिः। यथा गुरुवासरे घटिकाद्वय तृतीया तदुत्तर चतुर्थी षट्पञ्चाशद्घटिकापर्यन्त, एवमुत्तरा चतुर्थी क्षयतिथिः। एव क्षयतिथिर्नष्टा, सूर्योदये वारस्याप्राप्तेः। फलम्—कृतं यन्मगल तत्र त्रिद्युस्पृगवमे तिथौ। भस्मीभवति तत्सर्वं क्षिप्रमग्नौ यथेन्धनम् ॥
—ज्योतिश्चन्द्रार्क पृ० ५०

दशमी तीनों तिथियाँ रहीं। इन तीनोंमेंसे नवमी तिथि क्षयतिथि मानी जायगी। अतः नवमीको प्रत्येक शुभ कार्यके करनेका निषेध रहेगा।

जैनाचार्योंने प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, व्रतोपनयन प्रभृति मांगलिक कार्योंके लिए तिथि-वृद्धि और तिथिक्षय दोनोंको त्याज्य बताया है। प्रातःकालमें जबतक ६ घटी प्रमाण तिथि नहीं हो, कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

विष्णुधर्मपुराण, नारदसंहिता, वशिष्ठसंहिता, मुहूर्त्तदीपिका, मुहूर्त्त-माधवीय आदि वैदिक ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी धर्मकृत्यके लिए तीन मुहूर्त्त अर्थात् छः घटी प्रमाण तिथिका विधान किया गया है। विद्धातिथि होने पर किसी-किसी आचार्यने तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिको भी अग्राह्य बताया है।

समस्त शुभ कार्योंमें व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति नामका योग, अमावास्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, कुलिक योग, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ और वज्रके तीन-तीन दण्ड, परिघ योगका पूर्वार्द्ध, शूलयोगके पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्डके छः छः दण्ड एवं व्याघात योगके नौ दण्ड समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं।

प्रत्येक शुभकार्यके लिए पञ्चाङ्गशुद्धि देखी जाती है—तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण। इन पाँचोंके शुद्ध होनेपर ही कोई भी शुभ कार्य करना श्रेष्ठ होता है। यों तो भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए भिन्न-भिन्न तिथियाँ ग्राह्य की गयी हैं, परन्तु समस्त शुभ कार्योंमें प्रायः १।४।९।१२। १४।३० तिथियाँ त्याज्य मानी गयी हैं। ग्राह्य तिथियोंमें भी क्षय और वृद्धि तिथियोंका निषेध किया गया है।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २७ नक्षत्र हैं। धनिष्ठासे रेवतीतक पाँच नक्षत्रोंमें पञ्चक माना जाता है। इन पाँचों

नक्षत्रोंमें तृण-काष्ठका संग्रह करना, खटिया बनाना एवं झोंपड़ी छवाना निषिद्ध है। अश्विनी, रेवती, मूल, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन पाँच नक्षत्रोंमें जन्मे बालकको मूलदोष माना जाता है। कोई-कोई मघा नक्षत्रको भी मूलमें परिगणित करते हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी ध्रुव एवं स्थिर संज्ञक हैं। इनमें मकान बनवाना, बगीचा लगाना, जिनालय बनवाना, शान्ति और पौष्टिक कार्य करना शुभ होता है। स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र चर या चल संज्ञक हैं। इनमें मशीन चलाना, सवारी करना, यात्रा करना शुभ है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा उग्र अथवा क्रूर संज्ञक हैं। इनमें प्रत्येक शुभ कार्य त्याज्य है। विशाखा और कृत्तिका मिश्र संज्ञक हैं, इनमें सामान्य कार्य करना अच्छा होता है। हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् क्षिप्र अथवा लघु संज्ञक हैं। इनमें दुकान खोलना, ललितकलाएँ सीखना या ललितकलाओंका निर्माण करना, मुकद्दमा दायर करना, विद्यारम्भ करना, शास्त्र लिखना उत्तम होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्र संज्ञक हैं। इनमें गायन-वादन करना, वस्त्र धारण करना, यात्रा करना, क्रीडा करना, आभूषण बनवाना आदि शुभ हैं। मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुण संज्ञक हैं। इनका प्रत्येक शुभ कार्यमें त्याग करना आवश्यक है।

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति ये २७ योग होते हैं। इन योगोंमें वैधृति और व्यतीपात योग समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं, परिघ योगका आधा भाग वर्ज्य है। विष्कम्भ और वज्रयोगकी तीन-तीन घटिकाएँ, शूलयोगकी पाँच घटिकाएँ एवं गण्ड और अतिगण्डकी छः छः घटिकाएँ शुभ कार्योंमें वर्ज्य हैं।

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनी, चतुष्पद,

नाग और किंस्तुघ्न ये ११ करण होते हैं। बव करणमें शान्ति और पौष्टिक कार्य; बालवमें गृह निर्माण, गृह प्रवेश, निधि स्थापन, दान-पुण्यके कार्य; कौलवमें पारिवारिक कार्य, मैत्री, विवाह आदि; तैतिलमें नौकरी, सेवा, राजासे मिलना, राजकार्य आदि; गरमें कृषि कार्य; वणिज-में व्यापार, क्रय-विक्रय आदि कार्य; विष्टिमें उग्र कार्य; शकुनीमें मन्त्र-तन्त्र सिद्धि, औषधनिर्माण आदि; चतुष्पदमें पशु खरीदना-बेचना, पूजा-पाठ करना आदि; नागमें स्थिर कार्य एवं किंस्तुघ्नमें चित्र खींचना, नाचना, गाना आदि कार्य करना श्रेष्ठ माने गये हैं। विष्टि—भद्रा[1] समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

वारोंमें रविवार, मंगलवार और शनिवार क्रूर माने गये हैं। इनमें शुभ कार्य करना प्रायः त्याज्य है। मतान्तरसे रविवार ग्रहण भी किया गया है, किन्तु मंगलवार और शनिवारको सर्वथा त्याज्य बताया है। शुक्र, गुरु और बुधवार समस्त शुभ कार्योंमें ग्राह्य माने गये हैं। सोम-वारको मध्यम बताया है। राज्याभिषेक, नौकरी, मन्त्रसिद्धि, औषध-निर्माण, विद्यारम्भ, संग्राम, अलंकार-निर्माण, शिल्प-निर्माण, पुण्यकृत्य, उत्सव, यान-निर्माण, सूतिका-स्नान आदि कार्य रविवारको करनेसे; कृषि, व्यापार, गान, चाँदी-मोतीका व्यापार, प्रतिष्ठा आदि कार्य सोम-वारको करनेसे; क्रूरकार्य, खान खोदना, ऑपरेशन कराना, सूतिका-स्नान

१. न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्या विषारिघातादिषु तन्त्रसिद्धिः।
न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्या जीवितार्थी कदाचन।
शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थी परार्धे।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात् तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः॥
भावार्थ—भद्रामें कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है। शुक्ल पक्षकी अष्टमी और पौर्णमासीके पूर्वार्द्धमें तथा एकादशी और चतुर्थीके परा-र्धमें एव कृष्णपक्षकी तृतीया और दशमीके परार्धमें और सप्तमी तथा चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें भद्रा होती है।

—सुगम ज्योतिष पृ० ८५

आदि काम मंगलको करनेसे ; अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काव्य-निर्माण, काव्य-तर्क-कला आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि कार्य बुधको करनेसे ; दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध-निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, विवाह, स्तनपान, सूतिका-स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे ; विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूड़ाकरण, वाग्दान, विवाह, व्रतोपनयन, षोडश संस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एवं गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते हैं ।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्त्तको ही ग्रहण करना चाहिए । सामान्यसे उपर्युक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए ग्राह्य बताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए । शुभ समयपर किया गया कार्य ज़्यादा फल देता है ।

व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदयं शुभदिनमसद्दृष्टिपूर्वा नराः
तेषां कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेवेति च ॥
धर्माधर्मविचारहेतुरहिताः कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्
तिर्यक्शुभ्रमवाश्रिता जिनपतेर्बाह्यं गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं । ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथिको ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और तिर्यञ्च गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

विवेचन—विधिपूर्वक व्रत करनेसे समस्त पाप-सन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्योंने व्रतकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छः घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिको ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यों कहना चाहिये कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी दस पल है। जैनाचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छः घटीसे न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा। अजैन—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा; क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदयकालीन तिथि ही दिनभरके लिए ग्राह्य मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयशुद्धि है। असमयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन गुणकी विशुद्धिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। आरम्भ और परिग्रहका उतने समयके लिए त्याग करता है। भगवान्‌की पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती श्रावक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्कसे रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

सहायक होते हैं। इस व्रततिथिनिर्णयमें आचार्यने व्रतोंके लिए तिथियोंका निश्चय किया है। जैनाचारमें व्रत-उपवासके लिए तिथियोंका विधान किया गया है। आचार्यने यहाँ कितने प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत करना चाहिए, इसका विस्तारसे निरूपण किया है। योग्य समयमें व्रत करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है[1]।

तिथिह्रासे प्रकर्त्तव्यं किं विधानम् ? सकला तिथिः का? कथं मतनिर्णयः इति चेत्तदाह—

अर्थ—तिथिके ह्रासमें व्रत करनेका क्या नियम है ? कब व्रत करना चाहिए। सकला—सम्पूर्ण तिथि क्या है। उसमें किस प्रकारका मत व्यक्त किया गया है ? इस प्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर आचार्य कहते हैं—

तिथिह्रासमें व्रत करनेका विधान

त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया उपवासादिकर्मणि ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—यस्यां तिथौ त्रिमुहूर्त्तेष्वग्रे वर्तमानेषु षट्स्वर्कः उदेति सा तिथिः दैवसिकव्रतेषु रत्नत्रयाष्टाह्निकदशलाक्षणिकरत्नावलीकनकावलीद्विकावल्येकावलीमुक्तावलीषोडशकारणादिषु सकला ज्ञेया। चकारात् या तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथ्युदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिना गतदिवसेऽपिवर्तमाना तिथिः त्रिमुहूर्त्तादिना सा अस्तंगता तिथिर्ज्ञेया। तद्व्रतं गतदिवसे एव स्यात् अर्कस्तमनकाले त्रिमुहूर्त्ताधिकत्वादिति हेतोः। चशब्दात् द्वितीयोऽर्थोऽपि ग्राह्यः त्रिमुहूर्त्तेषु सत्सु

१. नमितसकलदेवपापतापापहारम्,
जिनपसमुदिष्ट जन्मपाथोधितारम्।
कुरुत सकललोकाश्चारुभावेन सारम्,
व्रतमिदमिति पूज्य देवनाथस्य पूज्यम्॥—व्रतोद्यापनसंग्रह पृ० २२

यस्यामर्कः अस्तमेति सा तिथिर्जिनरात्रिर्गगनपञ्चमीचन्दनषष्ठ्या-दिषु नैशिकव्रतेषु सकला ग्राह्या; इति तात्पर्यार्थः।

अर्थ—दैवसिक व्रतों में—रत्नत्रय, अष्टाह्निका, दशलक्षण, रत्नावली, एकावली, द्विकावली, कनकावली, मुक्तावली, षोडशकारण आदिमें सूर्योदयके समय तीन मुहूर्त्त अर्थात् छः घटीसे लेकर छः मुहूर्त्त अर्थात् बारहघटी पर्यन्त उक्त व्रतोंमें प्रतिपादित तिथियोंके होनेपर व्रत किये जाते हैं। रात्रिव्रतोंमें—जिनरात्रि, आकाशपञ्चमी, चंदनषष्ठी, नक्षत्रमाला आदिमें अस्तकालीन तिथि ली गयी है अर्थात् जिस दिन तीनमुहूर्त्त—छःघटी तिथि सूर्यके अस्त समयमें रहे, उस दिन वह तिथि नैशिकव्रतोंमें ग्रहण की गयी है। अभिप्राय यह है कि दैवसिक व्रतोंमें उदयकालमें छःघटी तिथिका और नैशिक व्रतोंमें अस्तकालमें छःघटी तिथिका रहना आवश्यक है।

विवेचन—श्रावकके व्रत मूलतः दो प्रकारके होते हैं—नित्य व्रत और नैमित्तिक व्रत। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंका नित्य पालन किया जाता है, अतः ये नित्य व्रत कहे जाते हैं। नैमित्तिक व्रतोंका पालन किसी विशेष अवसरपर ही किया जाता है, इनके लिए तिथि और समय निश्चित है तथा नैमित्तिक व्रतोंके कालमें श्रावक अपने मूल गुण और उत्तरगुणोंको विशुद्ध करता है, उत्तरोत्तर अपनी आत्माका विकास करता जाता है। नैमित्तिक व्रतोंकी संख्या १०८ है, इन १०८ व्रतोंमें कुछ पुनरुक्त व्रत होनेके कारण व्यवहारमें ८० व्रत लिये जाते हैं। वर्तमानमें प्रमुख दस-पन्द्रह व्रतोंका ही प्रचार देखा जाता है।

नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान दो भेद है—दैवसिक और नैशिक। जिन व्रतोंकी समस्त क्रियाएँ दिनमें की जाती हैं, वे दैवसिकव्रत एवं जिनकी क्रियाएँ रातमें सम्पन्न की जाती है, वे नैशिकव्रत कहलाते हैं। दोनों ही प्रकारके व्रतोंमें प्रोषधोपवास, ब्रह्मचर्य एवं धर्मध्यानका करना आवश्यक माना गया है। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनका व्रतकी उपयोगिता और व्यावहारिकताके अनुसार रात या दिनमें करना आवश्यक है।

रत्नावलीव्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत

श्रावण कृष्ण द्वितीयासे आरम्भ किया जाता है। इसमें प्रत्येक मासमें छः उपवास करनेका विधान है। व्रत करनेवाला प्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन एकाशन करता है और श्रावण कृष्ण द्वितीयाका उपवास करता है। उपवासके दिन पूजा, स्वाध्याय और जाप करता हुआ ब्रह्मचर्यसे रहता है। श्रावणकृष्ण तृतीयाके दिन दोनों समय शुद्ध भोजन करता है, पुनः चतुर्थीके दिन एकाशन करता है तथा पञ्चमीको प्रोषधोपवास करता है। सप्तमीको एकाशन करता हुआ अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमीको करता है। शुक्लपक्षमें द्वितीयाको एकाशन कर तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको एकाशन, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको एकाशन, सप्तमीको एकाशन और अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करता है। श्रावणमास वर्षका प्रथम मास माना जाता है, अतः व्रतका आरम्भ श्रावण माससे होता है। व्रत करनेवाला श्रावण में कुल छः उपवास करता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें द्वितीया,पञ्चमी और अष्टमी तथा शुक्लमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करने चाहिए। प्रत्येक महीनेमें छः उपवास करते हुए वर्षान्ततक कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। रत्नावलीव्रत एक वर्षतक ही किया जाता है। द्वितीय वर्ष भाद्रपद मासमें उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दो वर्ष व्रत करना चाहिए।

एकावलीव्रत भी श्रावण माससे आरम्भ किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना तथा श्रावण शुक्ल-पक्षमें प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना; इस प्रकार श्रावण मासमें कुल सात उपवास करना। भाद्रपद आदि मासोंमें भी कृष्णपक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक मासमें करने चाहिए। वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। एक वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए।

द्विकावलीव्रतमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। इस व्रतके लिए भी दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। श्रावण कृष्ण-पक्षमें चतुर्थी-पंचमी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-अमावास्या तथा शुक्ल-पक्षमें प्रतिपदा-द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमा इस प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिए। भाद्रपद आदि मासोंमें भी उक्त तिथियोंमें ही व्रत करना चाहिए। एक वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवास दो दिनोंका होता है।

इन दैवसिक व्रतोंके लिए सूर्योदय कालमें कमसे कम छःघटी तिथि-का रहना आवश्यक है। जैसे किसीको रत्नावलीव्रत करना है, इस व्रत-का प्रथम उपवास श्रावण कृष्ण द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनि-वारको द्वितोया तिथि छःघटीसे अल्प हो तो यह व्रत शुक्रवारको किया जायगा। इसी प्रकार आगे वाले व्रतोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए।

आकाशपञ्चमीव्रत भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीको किया जाता है। चतुर्थीको एकाशन कर पञ्चमीको व्रत रखना चाहिए। रात णमोकार मन्त्रका जप करते हुए, स्तोत्र पढ़ते हुए, शास्त्र स्वाध्याय करते हुए बिताना चाहिए। रातको जागकर बिताना आवश्यक है। खुले स्थानमें रातको पद्मासन लगाकर ध्यान करना चाहिए। इस व्रतके दिन रात आकाशकी ओर देखते हुए बितायी जाती है।

भाद्रपद कृष्णा षष्ठीको चन्दनषष्ठीव्रत किया जाता है। इस दिन प्रोषधोपवास करते हुए रात जागरण करना पड़ता है। चन्दनषष्ठी व्रतमें रातको विशेष क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। खड़े होकर पञ्च परमेष्ठीका ध्यान करते हुए रात बितानेका इस व्रतमें विधान है। रात्रिकी क्रियाओंकी विशेषता होनेके कारण ये व्रत नैशिक कहलाते हैं।

---

१. या तिथि समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्॥
या प्राप्यास्तमुदेत्यर्कः सा चेत् स्यात्त्रिमुहूर्तगा।
धर्मकृत्येषु सर्वेषु सम्पूर्णा ता विदुर्बुधाः॥ —निर्णयसिन्धु पृ० १३

नैशिक व्रतोंके लिए उदयकालीन तिथि[1] ग्रहण नहीं की जाती है। अस्तकालीन तिथि लेनेका विधान किया गया है। सूर्यके अस्त समयमें तीन घटी तिथि हो तो प्रदोष या नैशिक व्रत करने चाहिए। उदाहरण—रविवारको पञ्चमी तिथि १० घटी १५ पल है, इस दिन उदयकालीन तिथि है, पर अस्त समयमें पञ्चमी नहीं है, किन्तु षष्ठी आ जाती है। अतः आकाशपञ्चमीका व्रत रविवारको न कर शनिवारको ही करना चाहिए। यद्यपि ऐसी अवस्थामें दशलक्षणव्रत रविवारसे ही आरम्भ किया जायगा, किन्तु आकाशपञ्चमीका व्रत शनिवारको ही कर लिया जायगा। 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा' अर्थात् रात्रि-व्रतोंके लिए सन्ध्याकालीन तिथिका[1] ग्रहण करना आवश्यक है। आकाश-पञ्चमीव्रत रात्रि-व्रतोंमें परिगणित है, अतः इसके लिए सन्ध्याकालमें पञ्चमी तिथिका रहना आवश्यक है।

तिथिह्रासे सति किं विधानमिति चेत्तदाह—

अर्थ—तिथिह्रास होनेपर व्रत करनेका क्या नियम है, इस प्रश्नका आचार्य उत्तर देते हैं—

दशलाक्षणिक और अष्टाह्निक व्रतोंमें बीचकी तिथि घट जानेपर व्रत करनेका नियम

तिथिह्रासे प्रकर्त्तव्यं सोदये दिवसे व्रतम्।
तदादिदिनमारभ्य व्रतान्तं क्रियते व्रतम् ॥१२॥

---

१. त्रिमुहूर्त्त प्रदोषः स्याद्भानावस्त गते सति।
नक्त तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥ —नि० सि० १० १५
मुहूर्तोनं दिन नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमाहुरन्ये गणाधिपाः ॥
प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवानक्तं विधीयते।
तिथौ सत्यामथो नक्तं सदैवार्कदिने दिवाः।
—ज्योतिषचन्द्रार्क संस्कृत टीका पृ० ५७

अर्थ—तिथिके क्षय होनेपर जिस दिन उदयकालमें छः घटी तिथि हो, उसी दिनसे व्रत आरम्भ करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि दशलक्षण एवं अष्टाह्निका आदि व्रतोंमें तिथि-क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए।

तिथिह्रासे क्षये सति वा कुलाद्रिघटिकाप्रमाणहीने सति सोदये दिवसे व्रतं कार्यम्। सोदयस्य लक्षणं किमिति चेत्तर्हि 'सोदय दिवसं ग्राह्य कुलाद्रिघटिकाप्रमिति वक्तव्यम्' व्रतप्रारम्भस्यादिदिनमारभ्य व्रतान्तं व्रतं क्रियते। यथाष्टाह्निकदिवसेषु मध्ये काचित्तिथिः क्षयंगता अतो व्रतस्यादिदिनं सप्तमी दिनं ग्राह्यम्। एवं दशलाक्षणिकदशदिनेषु मुख्यपञ्चमी चतुर्दशीपर्यन्तेषु तिथिक्षयवशाच्चतुर्थी ग्राह्या। तथैव सर्वत्रापि ग्राह्यम्। परञ्चैतावान् विशेषः, अय नियमः दैवसिकनियतावधिकनैशिकेषु भवति ग्राह्यः। न तु मासिकादिषु मासिकादीनि मेघमालाषोडशकारणादीनि। तत्रापि यथा षोडशकारणव्रतं प्रतिपद्दिनमारभ्य षोडशभिरुपवासैः पञ्चदशपारणाभिश्चैकत्रीकृतैरेकत्रिंशद्दिवसैः प्रतिपत्पर्यन्तं समाप्तिमुपगच्छति। यदि प्रतिपदमारभ्य तृतीयप्रतिपत्पर्यन्तं तिथिक्षयवशाद्दिनसंख्याहानिः स्यात्; तदा यस्मिन्दिने प्रतिपदमारभ्य प्रतिपत्पर्यन्तं कार्य, तस्य प्रतिपत्त्रयमेव ग्राह्यं कथितम्, न तु मासिकजातस्य दिनं त्वपरमासे ग्राह्यं भवति, तदा व्रतकर्त्तुः व्रतहानिर्भवति।

अर्थ—तिथिके क्षय होनेपर अथवा उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिके न होनेपर सोदयमें—एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। सोदयका लक्षण क्या है? आचार्य कहते हैं—जिस दिन कमसे कम छः घटी प्रमाण तिथि हो, वही दिन सोदय कहलाता है। अतः तिथिक्षय होनेपर या उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिके न होनेपर व्रत प्रारम्भ होनेके एक दिन पहलेसे ही व्रत करना चाहिए और व्रतकी समाप्ति

पर्यन्त व्रत करते रहना चाहिए। जैसे अष्टाह्निका व्रत अष्टमीसे आरम्भ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है, इन आठ दिनोंके मध्यमें दशमी तिथिका अभाव है, अतः यहाँ आठ दिनके बदले सात ही दिन व्रत करना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें मध्यमें तिथिके क्षय होनेपर सप्तमीसे ही व्रतारम्भ किया जायगा। इसी प्रकार दशलाक्षणिकव्रतके दिनोंमें भी यदि तिथिका अभाव हो तो पञ्चमीके बदले चतुर्थीसे ही व्रत आरम्भ करने चाहिए। क्योंकि पर्यूषण पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे लेकर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी तक माना जाता है। यह दशलक्षणव्रत दस दिनों तक किया जाता है, यदि इसमें किसी तिथिकी हानि होनेसे दिनसंख्या कम हो तो यह व्रत चतुर्थीसे ही कर लिया जायगा। हाँ, जिन्हें पञ्चमी, अष्टमी, चतुर्दशी आदिका व्रत करना होगा, उन्हें तो इन तिथियोंके आनेपर ही करना होगा।

इस नियम—तिथिका अभाव होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिये—में इतनी विशेषता है कि यह सर्वत्र लागू नहीं होता। नियत अवधिवाले दैवसिक और नैशिक व्रतोंमें ही लागू होता है। मासिक व्रत मेघमाला और षोड़शकारण आदिमें नहीं लगता है। जैसे षोड़शकारणव्रत प्रतिपदासे आरम्भ होकर सोलह उपवास और पन्द्रह पारणाएँ, इस प्रकार इकतीस दिनतक करनेके उपरान्त प्रतिपदाको समाप्त होता है। इस व्रतमें तीन प्रतिपदाएँ पड़ती हैं—पहली भाद्रपद कृष्णपक्षकी, द्वितीय भाद्रपद शुक्लपक्षकी और तृतीय आश्विन कृष्णपक्षकी। यदि पहली प्रतिपदा—भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तीसरी प्रतिपदा—आश्विन कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तक किसी तिथिकी हानि होनेसे दिन संख्या कम हो तो भी प्रतिपदासे आरम्भ कर तीसरी प्रतिपदा अर्थात् भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विन मासकी कृष्ण प्रतिपदातक व्रत करना चाहिए। यहाँ तीनों प्रतिपदाओंके ग्रहण करनेका विधान किया गया है। मासिक व्रतोंमें दूसरे महीनेके दिन ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। भाद्रपदसे आरम्भ होनेवाला व्रत

श्रावणसे आरम्भ नहीं किया जा सकता है। ऐसा करनेसे व्रत हानि है, और व्रत करनेवालेको फल नहीं मिलता।

विवेचन—पर्व व्रतोंके अतिरिक्त नियत अवधिवाले भी व्रत होते हैं। पर्व व्रतोंके लिए आचार्यने तिथिका प्रमाण छः घटी निर्धारित किया है, जिस दिन छः घटी प्रमाण व्रत तिथि होगी, उसी दिन व्रत किया जायगा। नियत अवधिवाले व्रतोंके लिए यह निश्चय करना है कि व्रतकी निश्चित अवधिके भीतर यदि कोई तिथि नष्ट—क्षय हो जाय तो कब व्रत करना चाहिए। क्योंकि तिथि क्षय हो जानेसे नियत अवधिमें एक दिन घट जायगा, पूरे दिन व्रत नहीं किया जा सकेगा। ऐसी अवस्थामें व्रत करनेके लिए क्या व्यवस्था करनी होगी? आचार्यने इसके लिए नियम बताया है कि नियत अवधिवाले दशलाक्षणिक व्रत और अष्टाह्निक व्रतोंके लिए बीचमें किसी तिथिका क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए, जिससे व्रत-दिनोंकी संख्या कम न हो सके।

ज्योतिषशास्त्रमें व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रमाण निश्चित किया गया है। यद्यपि व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रतिपादन करना आचारशास्त्रका विषय है, परन्तु उन तिथियोंका समय निर्धारित करना ज्योतिषशास्त्रका विषय है। प्राचीनकालमें प्रधान रूपसे ज्योतिषशास्त्रका उपयोग तिथि और समय निर्णयके लिए ही किया जाता था। इस शास्त्रका उत्तरोत्तर विकास भी कर्त्तव्य कर्मोंके समय निर्धारणके लिए ही हुआ है। उदयप्रभसूरि, वसुनन्दि आचार्य और रत्नशेखरसूरिने शुभाशुभ समयका निर्धारण करते हुए बताया है कि व्रतोंके लिए प्रतिपादित तिथियोंको यथार्थरूपसे व्रतके समयोंमें ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा असमयमें किये गये व्रतोंका फल विपरीत होता है। जो श्रावक नैमित्तिक व्रतोंका पालन करता है, वह अपने कर्मोंकी निर्जरा असमयमें ही कर लेता है। समस्त आरम्भ और परिग्रह छोड़नेमें असमर्थ गृहस्थको अपनी समाधि सिद्ध करनेके लिए नित्य नैमित्तिक व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिए।

अष्टाह्निका और दशलक्षणी व्रतके लिए जो नियम बताया गया है

कि एक तिथि घट जानेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए, यह नियम षोडशकारण व्रतमें लागू नहीं होता है। यह व्रत बीचमें तिथिके घट जानेपर भी प्रतिपदासे ही प्रारम्भ किया जायगा। मासिक व्रत होनेके कारण भाद्रपद मासकी कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनमास-के कृष्णपक्षकी प्रतिपदातक यह किया जाता है। बीचमें एक तिथिका अभाव होनेपर यह श्रावण मासकी पूर्णिमासे आरम्भ करना होगा, जिससे तीन महीनोंमें यह व्रत सम्पन्न हुआ माना जायगा। आगममें दो ही मास—भाद्रपद और आश्विनका विधान है, अतः एक दिन पहले षोडशकारण व्रत करनेसे मासच्युति नामका दोष आवेगा, जिससे पुण्यके स्थानमें व्रत करनेवालेको पापका फल भोगना पड़ेगा। प्रचलित व्रतोंमें लगातार कई दिनोंतक चलनेवाले प्रधान तीन ही व्रत हैं—दशलक्षण, अष्टाह्निका और सोलहकारण। इनमें पहलेके दो व्रतोंके लिए एक तिथि घटनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान है, पर अन्तिम तीसरे व्रतके लिए यह विधान नहीं है। इस व्रतमें तीन प्रतिपदाओंका पड़ना आवश्यक है। तीनों पक्षकी तीन प्रतिपदाओंके आ जानेपर ही व्रत पूर्ण माना जाता है। जैनेतर ज्योतिषके आचार्योंने भी नियत अवधि-वाले व्रतोंकी तिथियोंका निर्णय करते हुए बताया है कि एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहले और एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन बादतक व्रत करने चाहिए। तिथिकी हानि होनेपर सूर्योदयकालमें थोड़ी भी तिथि हो तो नियत अवधिके भीतर ही व्रतकी समाप्ति हो जाती है।

जैन एवं जैनेतर तिथि-निर्णयमें इतना अन्तर है कि जैन सिद्धान्त सूर्योदयकालमें तिथिका प्रमाण छः घटी मानता है, अतः सूर्योदय समयमें इससे अल्पप्रमाण तिथिके होनेपर तिथिक्षय या तिथि-ह्रासवाली बात आ जाती है। जैनेतर सिद्धान्तमें उदयकालमें अल्पप्रमाण भी तिथि होनेपर उस दिन वह तिथि व्रतोपवासके लिए ग्राह्य मान ली गयी है; जिससे नियत अवधिवाले व्रतोंको एक दिन पहले करनेकी नौबत नहीं

आती है। हाँ, कभी-कभी समग्र तिथिका अभाव होने पर एक दिन पहले व्रत करनेवाली स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

प्रोषधोपवास करनेके लिए तो आचार्यने छः घटी प्रमाण तिथि बतलायी है तथा दैवसिक एवं नैशिक व्रतोंके लिए भी छः घटी प्रमाण उदय और अस्तकालीन तिथियाँ ग्रहण की गयी हैं, परन्तु एकाशनके लिए तिथि कैसे ग्रहण करनी चाहिए और एकाशन करनेवाले श्रावकको कब एकाशन करना चाहिए, इसके लिए क्या नियम बताया है?

एकाशनके लिए तिथिविचार

ज्योतिषशास्त्रमें एकाशनके लिए बताया गया है कि '**मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः**' अर्थात् दोपहरमें रहनेवाली तिथि एकाशनके लिए ग्रहण करनी चाहिए। एकाशन दोपहरमें किया जाता है, जो एकभुक्तिका—एकबार भोजन करनेका नियम लेते हैं, उन्हें दोपहरमें रहनेवाली तिथिमें करना चाहिए। एकाशन करनेके सम्बन्धमें कुछ विवाद है। कुछ आचार्य एकाशन दिनमें कभी भी कर लेनेपर ज़ोर देते हैं और कुछ दोपहरके उपरान्त एकाशन करनेका आदेश देते हैं। ज्योतिषशास्त्रमें एकाशनका समय निश्चित करते हुए बताया गया है कि '**दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्**' अर्थात् दोपहरके उपरान्त ही भोजन करना चाहिए। यहाँ दोपहरके उपरान्तका अर्थ अपराह्णकालका पूर्व-उत्तर भाग नहीं है, किन्तु अपराह्णकालका पूर्व भाग लिया गया है। जो लोग एकाशन दस बजे करनेकी सम्मति देते है, वे भी ज्योतिषशास्त्रकी अनभिज्ञताके कारण ही ऐसा कहते हैं। आजकलके समयके अनुसार एकाशन एक बजे और दो बजेके बीचमें कर लेना चाहिए। दो बजेके उपरान्त एकाशन करना शास्त्र-विरुद्ध है।

एकाशनके लिए तिथिका निर्णय इस प्रकार करना चाहिए कि दिनमानमें पाँचका भाग देकर तीनसे गुणा करने पर जो गुणनफल आवे, उतने घट्यादि मानके तुल्य एकाशनकी तिथिका प्रमाण होने पर एकाशन

करना चाहिए। उदाहरण–किसीको चतुर्दशीका एकाशन करना है, इस दिन रविवारको चतुर्दशी २३ घटी ४० पल है और दिनमान ३२ घटी ३० पल है। क्या रविवारको चतुर्दशीका एकाशन किया जा सकता है? दिनमान ३२।३० में पाँचका भाग दिया—३२।३० ÷ ५=६।३० इसको तीनसे गुणा किया—६।३०×३०=१९।३० गुणनफल हुआ। मध्याह्नकाल-का प्रमाण गणितकी दृष्टिसे १९।३० घट्यादि हुआ। तिथिका प्रमाण २३।४० घट्यादि हैं। यहाँ मध्याह्न कालके प्रमाणसे तिथिका प्रमाण अधिक है अर्थात् तिथि मध्याह्न कालके पश्चात् भी रहती है, अतः एकाशनके लिए इसे ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् चतुर्दशीका एकाशन रविवारको किया जा सकता है। क्योंकि रविवारको मध्याह्नमें चतुर्दशी तिथि रहती है।

दूसरा उदाहरण—मंगलवारको अष्टमी ७ घटी १० पल है, दिन-मान ३२।३० पल है। एकाशन करनेवालेको क्या इस अष्टमीको एकाशन करना चाहिए? पूर्वोक्त गणितके नियमानुसार ३२।३० ÷ ५ = ६।३० इसको तीनसे गुणा किया तो—६।३० × ३ = १९।३० घट्यादि गुणन-फल आया, यही गणितागत मध्याह्नकालका प्रमाण हुआ। तिथिका प्रमाण ७ घटी १० पल है, यह मध्याह्नकालके प्रमाणसे अल्प है, अतः मध्याह्नकालमें मंगलवारको अष्टमी तिथि एकाशनके लिए ग्रहण नहीं की जायगी, क्योंकि मध्याह्नकालमें इसका अभाव है। अतः अष्टमीका एका-शन सोमवारको करना होगा।

एकाशन करनेके तिथि-प्रमाणमें और प्रोषधोपवासक तिथि-प्रमाणमें बड़ा भारी अन्तर आता है। प्रोषधोपवासके लिए मंगलवारको अष्टमी तिथि ७।३० होनेके कारण ग्राह्य है। क्योंकि छः घटीसे अधिक प्रमाण है, अतः उपवास करनेवाला मंगलको व्रत करे और एकाशन करनेवाला सोमवारको व्रत करे; यह आगमकी दृष्टिसे अनुचित-सा प्रतीत होता है। जैनाचार्योंने इस विवादको बड़े सुन्दर ढंगसे सुलझाया है। मूलसंघके आचार्योंने एकाशन और उपवास दोनोंके लिए ही कुलाद्रि—छः घटी

प्रमाण तिथि ही ग्राह्य बतायी है। आचार्य सिंहनन्दिका मत है कि एकाशनके लिए विवादस्थ तिथिका विचार न कर छः घटी प्रमाण तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए। सिंहनन्दिने एकाशनकी तिथिका विस्तार रूपसे विचार किया है, उन्होंने अनेक उदाहरण और प्रति उदाहरणोंके द्वारा मध्याह्नव्यापिनी तिथिका खण्डन करते हुए छः घटी प्रमाणको ही सिद्ध किया है। अतएव एकाशनके लिए पर्वतिथियोंमें छः घटी प्रमाण तिथियोंको ही ग्रहण करना चाहिए।

'तिथिर्यथोपवासे स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा' इस प्रकारका आदेश रत्नशेखर सूरिने भी दिया है। जैनाचार्योंने एकाशनकी तिथिके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऊहापोह किया है। गणितसे भी कई प्रकारसे आनयन किया है। प्राकृत ज्योतिषके तिथि-विचार प्रकरणमें विचार-विनिमय करते हुए बताया है कि सूर्योदयकालमें तिथिके अल्प होने पर मध्याह्नमें उत्तर-तिथि रहेगी। परन्तु एकाशनके लिए रसघटी प्रमाण होनेपर पूर्व तिथि ग्रहण की जा सकती है। यदि पूर्व तिथि रसघटी[1] प्रमाणसे अल्प है तो उत्तर-तिथि लेनी चाहिए। यद्यपि उत्तर-तिथि मध्याह्नमें व्याप्त है, पर कुलाद्रि[2] घटिका प्रमाणसे अल्प होनेके कारण उत्तरतिथि ही व्रत-तिथि है। अतएव संक्षेपमें उपवास तिथि और एकाशन-तिथि दोनों एक ही प्रमाण ग्रहण की गयी हैं। यद्यपि जैनेतर ज्योतिषमें एकाशन-तिथिको व्रत-तिथिसे भिन्न माना है, तथा गणित द्वारा अनेक प्रकारसे उसका मान निकाला गया है, परन्तु जैनाचार्योंने इस विवादको यहीं समाप्त कर दिया है। इन्होंने उपवास-तिथिको ही व्रततिथि बतलाया है। एकाशनकी पारणा मध्याह्नमें एक बजेके उपरान्त करनेका विधान किया गया है। यद्यपि काष्ठासंघ और मूलसंघमें पारणाके सम्बन्धमें थोड़ा-सा मतभेद है, फिर भी दोपहरके बाद पारणा करनेका उदयतः विधान है।

१. छः घटी प्रमाण।

२. छः घटी प्रमाण—षट् कुलाचल होनेसे।

षोडशकारण और मेघमाला व्रतका विशेष विचार

नहि व्रतहानिः, कथं पूर्वं प्रति षष्ठोपवासकार्यो भवति एका पारणा भवति न तु भावनोपवासहानिर्भवति प्रतिपद्दिनमारभ्य तदन्तं क्रियते व्रतं एतद्व्रतं त्रिप्रतिपत्कथितम्, मासिकेषु च वचनात्। तथा श्रुतसागरसकलकीर्तिकृतिदामोदराभ्रदेवादिकथावचनाच्चेति। ननु पूर्णिमा ग्राह्या भवति। अत्र केषाञ्चिद् बलात्कारिणां मतं षोडशकारणनियमे तिथिहानौ वापि अधिके च मूल आदिदिनं न ग्राह्यं षोडशदिवसाधिकत्वाच्चेति विशेषः। एतावानपि विशेषश्च प्रतिपदमाद्यारभ्य आश्विनप्रतिपत्पर्यन्तं तिथिक्षयाभावेन कृते षष्ठद्वयेन चैकत्रिंशद्दिनैः पाक्षिकेऽप्यैष समाप्तिः। सप्तदशोपवासेन पूर्णाभिषेकेन स्यादेव सोपवासो महाभिषेकं कुर्यात्। यदा तु तिथिहानिस्तदा षष्ठकारणमारभ्य प्रतिपद्येव पूर्णाभिषेकः, नापरदिने तथोक्तं षोडशकारणवारिदमालारत्नत्रयादीनां पूर्णाभिषवे प्रतिपत्तिथिरपि नापरा ग्राह्येति वचनात् अपरा द्वितीया न ग्राह्येति।

अर्थ—षोडशकारण व्रतके दिनोंमें एक तिथिकी हानि होने पर भी एक दिन पहलेसे व्रत नहीं किया जाता है। इससे व्रतहानिकी आशंका भी उत्पन्न नहीं होती है। तिथिकी हानि होनेपर दो उपवास लगातार पड़ जाते हैं, बीचवाली पारणा नहीं होती है। एक दिन पहले व्रत न करनेसे भावना—षोडशकारण भावनाओंमेंसे किसी एक भावनाकी तथा उपवासकी हानि नहीं होती है; क्योंकि प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा पर्यन्त ही व्रत करनेका विधान है, इसमें तीन प्रतिपदाओंका होना आवश्यक है; क्योंकि इस व्रतको मासिक व्रत कहा गया है। अतः इसमे तिथिकी अपेक्षा मासकी अवधिका विचार करना अधिक आवश्यक है। श्रुतसागर, सकलकीर्त्ति, कृतिदामोदर और उग्रदेव आदि आचार्योंके वचनोंके अनुसार तिथि हानि होनेपर भी पूर्णमासी व्रतके लिए कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

यहाँपर कोई बलात्कारगणके आचार्य कहते हैं कि सोलहकारण व्रतके दिनोंमें तिथि हानि होनेपर अथवा तिथि वृद्धि होनेपर आदि दिवस-भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको व्रतके लिए नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सोलह दिनसे अधिक या कम उपवासके दिन हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बलात्कारगणके कुछ आचार्य सोलह कारण व्रतके दिनोंमें तिथि-क्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्णिमा या द्वितीयासे व्रतारम्भ करनेकी सलाह देते हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि तिथि हानि या तिथि-वृद्धि न होनेपर प्रतिपदासे व्रत आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदातक इकतीस दिन पर्यन्त यह व्रत किया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति तीन पक्षमें ही करनी चाहिए। जब तिथिकी हानि नहीं हो तो सोलह उपवास और अभिषेक पूर्ण करनेके पश्चात् सत्रहवें उपवास अर्थात् तृतीयाके दिन महाभिषेक करे। परन्तु जब तिथि-हानि हो तो प्रतिपदाके दिन ही पूर्ण अभिषेक करना चाहिए, अन्य दिन नहीं। कुछ आचार्योंका मत है कि षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके लिए प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। इन व्रतोंका पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही होना चाहिए, द्वितीयाको नहीं। तात्पर्य यह है कि षोड़शकारण व्रतमें तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर प्रतिपदा तिथि ही महाभिषेकके लिए ग्राह्य है। इस व्रतका आरम्भ भी प्रतिपदासे करना चाहिए और समाप्ति भी प्रतिपदाको; उपवास करनेके पश्चात् द्वितीयाको पारणा करनेपर।

विवेचन—सोलहकारण व्रतके दिनोंके निर्णयके लिए दो मत हैं—श्रुतसागर, सकलकीर्त्ति आदि आचार्योंका प्रथम मत तथा बलात्कारगणके आचार्योंका दूसरा मत। प्रथम मतके प्रतिपादक आचार्योंने तिथि-हानि या तिथि-वृद्धि होनेपर प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा तक ही व्रत करनेका विधान किया है। दिन संख्या प्रतिपदासे आरम्भ की गयी है, यदि आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक कोई तिथि बढ़ जाय तो एक दिन या दो दिन अधिक व्रत किया जा सकेगा; तिथियोंके घट जानेपर एक या

दो दिन कम भी व्रत किया जाता है। यह बात नहीं है कि एक तिथिके घट जाने पर प्रतिपदाके स्थानमें पूर्णिमासे ही व्रत कर लिया जाय। व्रतारम्भके लिए नियम बतलाया है कि प्रथम उपवासके दिन प्रतिपदा तिथिका होना आवश्यक है, तथा व्रतकी समाप्ति भी प्रतिपदाके दिन ही होती है।

पोडशकारण व्रतकी मासिक व्रतोंमें गणना की गयी है, अतः इसमें एक या दो दिन पहले आरम्भ करनेकी बात नहीं उठती है। जो लोग यह आशंका करते हैं कि तिथिके घट जाने पर उपवास और भावनामें हानि आयेगी, उनकी यह शंका निर्मूल है। क्योंकि यह व्रत मासिक बताया गया है, अतः प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रतिपदामें ही इसकी समाप्ति हो जाती है। तिथिके क्षय होनेपर दो दिनतक लगातार उपवास पड सकता है तथा दो दिनके स्थानमें एक ही दिन भावना की जायगी।

बलात्कारगणके आचार्य तिथिवृद्धि और तिथिहानि दोनोंको महत्त्व देते हैं, उनका कहना है कि नियत अवधिसंज्ञक सोलहकारण व्रत होनेके कारण इसकी दिन-संख्या इकतीस ही होनी चाहिए। यदि कभी तिथि-हानि हो तो एक दिन पहले और तिथिवृद्धि हो तो एक दिन पश्चात् अर्थात् पूर्णमासी और द्वितीयासे व्रतारम्भ करना चाहिए। इन आचार्यों की दृष्टिमें प्रतिपदाका महत्त्व नहीं है। इनका कथन है कि यदि प्रति-पदाको महत्त्व देते हैं तो उपवास-संख्या हीनाधिक हो जाती है। तिथि-हानि होनेपर सोलह उपवासके स्थानमें पन्द्रह उपवास करने पड़ेंगे तथा तिथिवृद्धि होनेपर सोलहके बदले सत्रह उपवास करने पड़ेंगे। अतः उप-वास संख्याको स्थिर रखनेके लिए एक दिन आगे या पीछे व्रत करना आवश्यक है। इन आचार्योंने व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको ही मानी है तथा इसी दिन सोलहवाँ अभिषेक पूर्ण करने पर ज़ोर दिया है। कुछ आचार्य प्रतिपदाके उपवासके अनन्तर द्वितीयाको पारणा तथा तृतीयाको पुनः उपवास कर महाभिषेक करनेका विधान बताते हैं। बलात्कारगणके आचार्य इस विषय पर सभी एक मत हैं कि व्रतकी समाप्ति प्रतिपदा

को होनी चाहिए। व्रतारम्भ करनेके दिनके सम्बन्धमें विवाद है, कुछ पूर्णिमासे व्रतारम्भ करनेको कहते हैं, कुछ प्रतिपदामें और कुछ द्वितीयासे।

उपर्युक्त दोनों ही मतोंका समीकरण एवं समन्वय करनेपर प्रतीत होता है कि बलात्कारगण, सेनगण, पुन्नाटगण और काणूरगणके आचार्योंने प्रधान रूपसे सोलहकारण व्रतमें तिथिह्रास और तिथिवृद्धिको महत्त्व नहीं दिया है। अतएव इस व्रतको सर्वदा भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको समाप्त करना चाहिए। इसके प्रारम्भ और समाप्ति दोनोंमें ही प्रतिपदाका रहना आवश्यक माना है। प्रथम अभिषेक भी प्रतिपदाको प्रथम उपवासपूर्वक किया जाता है, पारणाके दिन अभिषेक नहीं किया जाता। अन्तिम सोलहवें उपवासके दिन सोलहवाँ अभिषेक किया जाता है। सत्रहवाँ अभिषेक कर द्वितीयाको पारणा करनेका विधान है।

मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ और विधि

मेघमाला व्रतके पूर्व अभिषेकके लिए भी प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी। यह व्रत भी ३१ दिनतक किया जाता है। इसका प्रारम्भ भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है और व्रतकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको बतायी गयी है। मेघमाला व्रतमें सात उपवास और चौबीस एकाशन किये जाते हैं। प्रथम उपवास भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको, द्वितीय भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको, तृतीय भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशीको, चतुर्थ भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाको, पञ्चम भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको, षष्ठ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको और सप्तम आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको करनेका विधान है। शेष दिनोंमें चौबीस एकाशन करने चाहिए। पाँच वर्षतक पालन करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। जितने उपवास बताये गये हैं उतने ही अभिषेक किये जाते हैं तथा उपवासके दिन रात जागरण पूर्वक बितायी जाती है और अभिषेक भी उपवासकी तिथिको ही किया जाता है। इस व्रतमें ३४ दिनतक ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन तथा संयम धारण किया जाता है। संयम और ब्रह्मचर्य धारण श्रावण शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ होता है तथा आश्विन कृष्णा द्वितीयातक पालन किया जाता है। इस व्रतकी सफलताके लिए संयमको आवश्यक माना गया है।

मेघपंक्ति आकाशमें आच्छन्न हो तो पञ्चस्तोत्र पाठ करना चाहिए। इस व्रतका नाम मेघमाला इसीलिए पड़ा है कि इसमें सात उपवास उन्हीं दिनोंमें करनेका विधान है, जिन दिनोंमें ज्योतिषकी दृष्टिसे वर्षा योग आरम्भ होता है अर्थात् वृष्टि होने या मेघोंके आच्छादित होनेसे उक्त व्रतके सातों ही दिन मेघमाला या वर्षायोग संज्ञक हैं। आचार्योंने इस मेघमाला व्रतका विशेष फल बताया है।

जैनाचार्योंने मेघमाला व्रतका आरम्भ भी तिथिक्षय या तिथि-वृद्धिके होनेपर भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदामें माना है तथा इसकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। इसमें तीन प्रतिपदाओंका विशेष महत्त्व है, तथा इन तीनोंका प्रमाण भी सोदय दिवस—सूर्योदय कालमें छः घटी प्रमाण तिथिका होना; को ही बताया है। सोलहकारण व्रतके समान तिथिक्षय या तिथिवृद्धिका प्रभाव इसपर नहीं पड़ता है। तिथि-वृद्धिके होनेपर एक उपवास कभी-कभी अधिक करना पड़ता है, क्योंकि तीनों प्रतिपदाओंका रहना व्रतमें आवश्यक बतलाया गया है। मेघमाला व्रतके उपवासके दिन मध्याह्नमें पूजापाठ करनेके उपरान्त दो घटी पर्यन्त कायोत्सर्ग करना तथा पञ्चपरमेष्ठीके गुणोंका चिन्तन करना अनिवार्य है। मध्याह्नकालका प्रमाण गणित विधिसे निकालना चाहिए।

दिनमानमें पाँचका भाग देकर तीनसे गुणा कर देनेपर मध्याह्नका प्रमाण आता है। जैसे भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाके दिन दिनमानका प्रमाण ३१ घटी १५ पल है, इस दिन मध्याह्नका प्रमाण निकालना है अतः गणित क्रिया की—३१।१५ ÷ ५=६।७ इसको तीनसे गुणा किया तो—६।७ × ३=१८।२१ गुणनफल अर्थात् १८ घटी २१ पल मध्याह्नका प्रमाण है। घण्टा-मिनटमें यही प्रमाण ७ घंटा २० मिनट २४ सैकिण्ड हुआ

अर्थात् सूर्योदयसे ७ घंटा २० मिनट २४ सै० के पश्चात् मध्याह्न है। यदि इस दिन सूर्य ५।३० बजे उदित होता है तो १२ बजकर ५० मिनट २४ सै० से मध्याह्नका आरम्भ माना जायगा। मेघमाला व्रतमें उपवासके दिन ठीक मध्याह्नकालमें सामायिक और कायोत्सर्ग करने चाहिए। मेघमाला व्रतके समान रत्नत्रय व्रतमें भी अभिषेक प्रतिपदाको ही किया जाता है अर्थात् इन दोनों व्रतोंकी समाप्ति प्रतिपदाको होती है।

रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय

रत्नत्रयेऽप्येवमवधारणं कार्यं, यतः तस्य तिथिव्रातत्वान्नाधिका, अतः यथा व्रतं कार्यं तथा नान्यथा भवति।

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको सम्पन्न करनेके लिए यह अवधारण करना चाहिए कि इस व्रतकी तिथि संख्या अधिक नहीं है। अतः इस प्रकार व्रत करना चाहिए, जिससे व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे।

विवेचन—रत्नत्रय व्रत एक वर्षमें तीन बार किया जाता है—भाद्रपद, माघ और चैत्र। यह व्रत उक्त महीनोंके शुक्लपक्षमें ही सम्पन्न होता है। प्रथम शुक्लपक्षकी द्वादशीको एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका तेला करना चाहिए। पश्चात् प्रतिपदाको एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार पाँच दिन तक संयम धारण कर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिए। तीन वर्षके उपरान्त इसका उद्यापन करते हैं। यह व्रत करनेकी उत्कृष्ट विधि है। यदि शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको भी एकाशन किया जा सकता है, परन्तु चतुर्दशीका उपवास करना आवश्यक है। प्रधान रूपसे इस व्रतमें तीन उपवास लगातार करनेका नियम है। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों तिथियोंमें व्रत, पूजन और स्वाध्याय करते हुए उपवास करना चाहिए। अतः इस व्रतके तीन ही दिन बताये गये हैं। एकाशन और संयमके दिन मिलानेसे वह पाँच दिनका हो जाता है।

यदि रत्नत्रय व्रतकी प्रधान तीन तिथियों—त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमामेंसे किसी एक तिथिकी हानि हो तो क्या करना चाहिए। क्या

तीन दिनके बदलेमें दो ही दिन उपवास करना चाहिए या एक दिन पहले से उपवासकर व्रतको नियत दिनोंमें पूर्ण करना चाहिए। सेनगण और बलात्कारगणके आचार्योंने एकमत होकर रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निश्चय करते हुए कहा है कि तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। किन्तु इस व्रतके सम्बन्धमें इतना विशेष है कि चतुर्दशीका उपवास रसघटिका प्रमाण चतुर्दशीके होनेपर ही किया जाता है। यदि ऐसा भी अवसर आवे जब उदयकालमें चतुर्दशी तिथि न मिले तो जिस दिन घट्यात्मक मानके हिसाबसे अधिक पड़ती हो, उसी दिन चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी समाप्तिके लिए प्रतिपदाका रहना भी आवश्यक माना गया है। जिसदिन प्रतिपदा उदयकाल में छः घटी प्रमाण हो अथवा उदयकालमें छःघटी प्रमाण प्रतिपदाके न मिलनेपर घट्यात्मक रूपसे ज्यादा हो उसी दिन महाभिषेकपूर्वक व्रतकी समाप्ति की जाती है।

आचार्य सिंहनन्दिने रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय करते समय स्पष्ट कहा है कि व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे, इस प्रकारसे व्रत करना चाहिए। तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन अधिक व्रत करना ही पड़ता है, परन्तु चतुर्दशीके दिन प्रोषधोपवास और प्रतिपदाके दिन अभिषेक करना परमावश्यक बताया गया है। इन दोनों तिथियोंको टलने नहीं देना चाहिए। चतुर्दशीको मध्याह्नमें विशेषरूपसे 'ॐ ह्रीं **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः**' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। मध्याह्नकालका प्रमाण गणितसे लाना चाहिए। यथा चतुर्दशीके दिन दिनमानका प्रमाण २८।२० है, इस दिन सूर्योदय ६।५० मिनट पर होता है। मध्याह्नकाल जाननेके लिए—२८।२० ÷ ५ = ५।१९ इसको तीनसे गुणा किया तो—५।१९ × ३ = १५।५७ इसका घण्टात्मक मान ६।२२। ४८ हुआ, सूर्योदय कालमें जोड़ा तो १ बजकर १२ मिनट ४८ सै० पर मध्याह्नकाल आया।

१. २½ घटीका एक घण्टा, २½ पलका एक मिनट तथा २½ विपल का एक सैकिण्ट होता है।

मुनिसुव्रत पुराणके आधारपर व्रततिथिका प्रमाण

तदुक्तं मुनिसुव्रतपुराणे—

षष्ठांशोऽप्युदये ग्राह्यः तिथिव्रतपरिग्रहैः।
पूर्वमन्यतिथेर्योगो व्रतहानिः करोति च ॥ १ ॥

अस्यार्थः—व्रतपरिग्रहैः सूर्योदये तिथेः षष्ठांशमपि ग्राह्यं, अत्रापिशब्देन षष्ठांशादधिको ग्राह्य इति निर्विवादः, न न्यूनांश इति द्योत्यते कुतः यस्मात् व्रतपरिग्रहाणां षष्ठांशात् पूर्वमन्यतिथिसंयोगव्रतहानिकरः व्रतनाशकरो भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—व्रत करनेवालोको सूर्योदयकालमें षष्ठांश तिथिके रहनेपर व्रत करना चाहिए। षष्ठांशसे अधिक तिथि होनेपर तो व्रत किया जा सकता है, पर न्यूनांश होनेपर व्रत नहीं किया जा सकेगा. क्योंकि अन्य तिथिका संयोग होनेसे व्रत-हानि होती है, व्रतका फल नहीं मिलता है।

इस श्लोकमे अपि शब्द आया है, जिसका अर्थ षष्ठांशसे अधिक तिथि ग्रहण करनेका है अर्थात् षष्ठांशसे अधिक या षष्ठांश तुल्य तिथि उदयकालमें हो तभी व्रत किया जा सकता है। षष्ठांशसे अल्प तिथिके होनेपर व्रत नहीं किया जाता।

विवेचन—आचार्य ग्रन्थान्तरोंके प्रमाण देकर व्रततिथिका निर्णय करते हैं। मुनिसुव्रतपुराणमें बताया गया है कि उदयकालमे षष्ठांश तिथि या षष्ठांशसे अधिक तिथिके होनेपर ही व्रत करना चाहिए। तिथिका मध्यम मान ६० घटी प्रमाण माना जाता है, स्पष्ट मान प्रतिदिन भिन्न-भिन्न होता है। स्पष्टमानका पता लगाना ज्योतिषीका ही काम है, साधारण व्यक्तिका नहीं। किन्तु मध्यममान ६० घटी प्रमाण निश्चित है, इसका षष्ठांश दस घटी हुआ, अतः यह अर्थ लेना अधिक संगत होगा कि जो तिथि उदयकालमें दस घटी कमसे कम अवश्य हो वही व्रतके लिए उपयुक्त मानी गयी है। दस घटीसे कम प्रमाण तिथिके रहनेपर, उससे पहले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। मुनिसुव्रत पुराणकारका

यह मत निर्णयसिन्धुमें प्रतिपादित दीपिकाकारके मतसे मिलता-जुलता है। दीपिकाकार भी तिथिका प्रमाण षष्ठांश ही मानते हैं। परन्तु उन्होंने स्पष्ट तिथिका प्रमाण न ग्रहण कर मध्यम ही लिया है। आचार्यने स्पष्ट माना है—उदाहरण—बुधवारको पंचमी तिथि ८ घटी १२ पल है तथा इसके पहले मंगलवारको चतुर्थी तिथि १० घटी १५ पल है, अब गणितसे निकालना यह है कि पंचमी तिथिका स्पष्ट मान क्या है ? मंगलवारको चतुर्थी १० घटी १५ पल है; उपरान्त पंचमी मंगलवारको आरम्भ हो जाती है। अतः ६० घटी अहोरात्र प्रमाणमेंसे चतुर्थी तिथिके घट्यादि घटाया—(६०।०)—(१०।१५) = ४९।४५ मंगलवारको पंचमी तिथिका प्रमाण आया। बुधवारको पंचमी तिथि ८ घटी १२ पल है, दोनों दिनकी पंचमी तिथिके प्रमाणको जोड़ दिया तो कुल पंचमी तिथि = (४९।४५) + (८।१२) = ५७।५७ पञ्चमी तिथि हुई, इसका षष्ठांश लिया तो ५७।५७ ÷ ६ = ९।३९।३० हुआ। बुधवारको पञ्चमीतिथि ८ घटी १२ पल है, जो पञ्चमीतिथिके षष्ठांश ९ घटी ३९ पल और ३० विपलसे कम है, अतः मुनिसुव्रतपुराणकारके मतसे पञ्चमीका व्रत बुधवारको नहीं किया जा सकता, यह व्रत मंगलको ही कर लिया जायगा। दीपिकाकारने गणित क्रियासे बचनेके लिए मध्यम तिथिका मान स्वीकार कर उसका षष्ठांश दस घटी स्वीकार कर लिया है अर्थात् सूर्योदयकालमें दस घटीसे कम तिथि होनेपर अग्राह्य मानी जायगी। मुनिसुव्रतपुराणकारके मतसे भी तिथिका प्रमाण उदयकालमें दस घटी ही लेना चाहिए।

व्रततिथि निर्णयके लिए निर्णयसिन्धुके मतका निरूपण तथा खण्डन

पुनः प्रश्नं करोति यस्यां तिथौ सूर्योदयो भवति सा तिथिः सम्पूर्णा ज्ञातव्या ? तदुक्तम्—

यां[1] तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥१॥

१. निर्णयसिन्धु पृ० १४ तथा ज्योतिश्चन्द्रार्क पृ० ५३ श्लो० ६६

इति तस्योत्तरमेतद्वचनं निर्णयसिन्धौ वैष्णवे ज्ञातव्यं न तु जिनमते पञ्चसारग्रन्थे[1] ॥

अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वही तिथि सम्पूर्ण दिनके लिए मानी जाती है, अतः उसीका नाम सकला है। कहा भी है कि जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वह तिथि दान, अध्ययन, षोडश संस्कार आदिके लिए पूर्ण मानी गयी है। आप व्रतके लिए छः घटी प्रमाण या समस्त तिथिका षष्ठांश प्रमाण उदयकालमें होनेपर तिथिको ग्राह्य मानते हैं; ऐसा क्यों ? इसका उत्तर निर्णयसिन्धु नामक ग्रन्थमें दिया गया है। क्योंकि वैष्णव व्रतमें दान, अध्ययन, पूजा, अनुष्ठान, व्रत आदिके लिए उदया तिथिको ही प्रमाण माना गया है, जैनमतमें नहीं। जैनाचार्योंने पञ्चसार नामक ग्रन्थकी चतुर्थसन्धि और १२२ वें श्लोकमें इस मतका खण्डन किया है। तात्पर्य यह है कि वैष्णव मतमें व्रत और अनुष्ठानके लिए उदयकालमें रहनेवाली तिथिको ही ग्राह्य माना है, जैनमतमें नहीं।

विवेचन—ज्योतिश्चन्द्रार्कमें बताया है कि **"यां तिथिं समनुप्राप्य आसाद्य उदयं भास्करः याति स्वक्षितिजेऽर्द्धोदितो भवति सा तिथिः सम्पूर्णदिनेऽपि बोध्या। कुत्र, दानाध्ययनकर्मसु दानादि-पुण्यकर्मसु अध्ययनकर्मसु च। यथा पूर्णिमा प्रातर्मुहूर्तार्द्धमात्र-स्थापि स्नानदानादौ समस्तदिनेऽपि मन्तव्या। तथैव प्रतिपदा अध्ययनकर्मसु मन्तव्या"**। अर्थात् जिस समय सूर्य आकाशमें आधा उदित हो रहा हो, उस समय जो तिथि रहती है, सम्पूर्ण दिनके लिए वही तिथि मान ली जाती है। दान, अध्ययन, व्रत आदि पुण्यकार्य उसी तिथिमें किये जाते हैं। जैसे पूर्णिमा प्रातःकालमें एक घटी रहनेपर भी स्नान, दान, व्रत आदि कार्योंके लिए प्रशस्त मानी जाती है, उसी प्रकार प्रतिपदा अध्ययन कार्यके लिए सूर्योदय समयमें एक घटी या

---

१. सन्धिः ४ श्लो० १२२।

इससे भी अल्प-प्रमाण रहनेपर प्रशस्त मान ली गयी है। अतएव व्रतके लिए उदयप्रमाण ही तिथि लेनी चाहिये[1]। जैनाचार्योंने इस उदय-कालीन तिथिकी मान्यताका ज़ोरदार खण्डन किया है। उन्होंने अपने मतके प्रतिपादनमें अनेक युक्तियाँ दी हैं।

उदयकालीन तिथिको व्रतके लिए सम्पूर्ण माननेमें तीन दोष आते हैं—विद्धा तिथि होनेके कारण दोष, उदयके अनन्तर अल्पकालमें ही तिथिके क्षय हो जानेसे व्रततिथिके प्रमाणका अभाव और निषिद्ध तिथिमें व्रत करनेका दोष। यदि उदयकालमें एक घटी प्रमाण व्रततिथि मान ली जाय तो उदया तिथि होनेके कारण वैष्णवोंमें ग्राह्य मानी जायगी, परन्तु जैनमतके अनुसार इसमें पूर्वोक्त तीनों दोष वर्तमान हैं। यह तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद ही नष्ट हो जायगी, तथा आगेवाली तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद आरम्भ हो जायगी। अतः व्रत सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठान व्रतवाली तिथिमें नहीं होंगे, बल्कि वे अव्रतिक तिथिमें सम्पन्न किये जायँगे; जिससे असमयमें करनेके कारण उन धार्मिक अनुष्ठानोंका यथोचित फल नहीं मिलेगा। उदाहरणके लिए यों मान लिया जाय कि किसीको अष्टमीका व्रत करना है। मंगलवारको अष्टमी एक घटी पन्द्रह पल है अर्थात् सूर्योदयकालमें आधा घण्टा प्रमाण है। यदि सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनट पर होता है तो ५ बजकर ४५ मिनट से नवमी तिथि आरम्भ हो जाती है। व्रती सूर्योदय कालमें सामायिक, स्तोत्रपाठ करता है, इन क्रियाओंको उसे कमसे कम ४५ मिनट तक करना चाहिए। सूर्योदय काल मे ३० मिनट अष्टमी है, पश्चात् नवमी तिथि है, क्रियाएँ ४५ मिनट तक करनी हैं, अतः इनमें पहला दोष विद्ध तिथिमें प्रातः-कालीन क्रियाओंको करनेका आता है। विद्ध तिथिमें की गयी क्रियाएँ, जो कि व्रतविधिके भीतर परिगणित हैं, व्यर्थ होती है। पुण्यके स्थानमें

---

१. व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकादि या भवेत्।
उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥
—निर्णयसिन्धु पृ० १३

अज्ञानताके कारण पाप बन्धकारक हो जाती हैं। अतः प्रथम दोष विद्ध तिथिमें प्रारम्भिक व्रत सम्बन्धी अनुष्ठानके करनेका है।

दूसरा दोष यह है कि व्रतारम्भ करनेके समय व्रत-तिथिका प्रभाव क्षीण रहता है, जिससे उपर्युक्त उदाहरणमें कल्पित अष्टमी व्रतकी क्रियाओं-में आती ही नहीं। आचार्योंका कथन है कि उदयकालमें कमसे कम दशमांश तिथिके होनेपर ही तिथिका प्रभाव माना जा सकता है। छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका मान इसीलिए प्रामाणिक माना गया है कि मध्यम मान तिथिका ६० घटी होता है, इसका दशमांश छः घटी है, अतः तिथिका प्रभाव छः घटी है, अतः तिथिका प्रमाण छः घटी होने-पर पूर्ण माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि सूर्योदयके पश्चात् रस घटी प्रमाणवाली तिथि कम-से-कम २$\frac{1}{2}$ घंटे तक रहती है, जिससे प्रारम्भिक धार्मिक कृत्य करनेमें विद्ध तिथि या अव्रतिक तिथिका दोष नहीं आता है। मात्र उदयकालीन तिथि स्वीकार कर लेनेसे व्रतके समस्त कार्य पूजा-पाठ, स्वाध्याय आदि अव्रतकी तिथिमें सम्पन्न किये जायँगे, जिससे व्रत करनेका फल नहीं मिलेगा।

ज्योतिषशास्त्रमें गणित द्वारा तिथिके प्रमाणका साधन किया जाता है। बताया गया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतने प्रमाणके पश्चात् तिथिमें अपना प्रभाव या बल आता है। दिनमान के पञ्चमांशसे अल्पतिथि बिल्कुल निर्बल होती है, यह उस बच्चेके समान है, जिसके हाथ-पैरमें शक्ति नहीं, जो गिरता-पड़ता कार्य करता है। जिसकी वाणी भी अपना व्यवहार सिद्ध करनेमें असमर्थ है और जो सब प्रकारसे अशक्त है, अतः निर्बल तिथिमें व्रतादि कार्य सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। जो व्यक्ति उदयकालमें रहनेवाली तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करनेका विधान बतलाते हैं, उनके यहाँ प्रभावशाली या बलवान् तिथि व्रतके लिए हो ही नहीं सकती है। अधिकसे अधिक दिनमान ३३ घटीका हो सकता है और कमसे कम २७ घटीका। ३३ घटीका पंचमांश ६ घटी ३६ पल हुआ और २७ घटीका पंचमांश ५ घटी २४ पल हुआ।

अतएव बड़े दिनोंमें जब कि दिनमान अधिक होता है ६ घटी ३६ पलके होनेपर तिथिमें अपना बल आता है, पंचमांशसे अल्प होनेपर तिथि अबोध शिशु मानी जाती है। अतएव उदयकालीन तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं है। सर्वदा व्रत सबल तिथिमें किया जाता है, निर्बल में नहीं। अतः जैनाचार्योंने व्रत-तिथिका प्रमाण छः घटी माना है, वह ज्योतिष-शास्त्रसे सम्मत है। गणितके द्वारा भी इसकी सिद्धि होती है।

तीसरा दोष जो उदयकालीन तिथि माननेमें आता है, वह व्रतके लिए निश्चित तिथियोंमें बाधा उत्पन्न करता है। जब व्रत समयमें गणितागत सबल तिथि ही नहीं रही तो फिर व्रतोंके लिए तिथियोंका निश्चय क्या रहेगा तथा क्रमका भंग हो जानेपर अक्रमिक दोष भी आवेगा। अतएव व्रतके लिए उदयकालीन तिथि ग्रहण नहीं करनी चाहिए, किन्तु छः घटी प्रमाण तिथिको स्वीकार करना चाहिये।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रतोंको तिथिका विचार

काऽधिका तिथिमध्ये च क्षपणो नैव कारयेत्।
गणितोद्दिष्टमार्याणां संयमादिप्रसाधनम् ॥१३॥

अर्थ—आचार्योंने व्रतके दिनोंमें तिथिवृद्धि हो जानेपर किस तिथिको व्रत करनेका व्रतीके लिए निषेध किया है। तात्पर्य यह है कि शिष्य गुरुसे प्रश्न करता है कि हे प्रभो! आपने तिथिक्षय होनेपर व्रत करनेका विधान बतला दिया, अब कृपाकर यह बतलाइये कि संयमादिका साधन व्रत तिथि-वृद्धि होनेपर किस दिन नहीं करना चाहिए?

विवेचन—ज्योतिष शास्त्रमें तिथिक्षय होनेपर तथा तिथिवृद्धि होनेपर व्रतकी तिथियोंका निर्णय बतलाया गया है। सिंहनन्दि आचार्यने पूर्वमें तिथिक्षय होनेपर व्रत कब करना चाहिए, तथा नियत अवधिवाले व्रतोंको मध्यमें तिथिक्षय होनेपर कब करना चाहिए, इसका विस्तार सहित निरूपण किया है। यहाँ से आचार्य तिथिवृद्धिके प्रकरणका वर्णन

करते हैं कि तिथिके बढ़ जानेपर क्या व्रत एक दिन अधिक किया जायगा या मध्यकी कोई तिथि छोड़ दी जायगी, उस दिन व्रत ही नहीं किया जायगा। आचार्य स्वयं इस प्रश्नका उत्तर आगेवाले श्लोकमें देंगे। यहाँ यह विचार करना है कि तिथि बढ़ती क्यों है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तिथिका मध्यममान ६० घटी बताया गया है, किन्तु स्पष्टमान सदा घटता-बढ़ता है। इस वृद्धि और ह्रासके कारण ही कभी एक तिथिकी हानि और कभी एक तिथिकी वृद्धि हो जाती है। गणित-द्वारा तिथिका साधन निम्न प्रकार किया गया है—

स्पष्ट चन्द्रमामेंसे स्पष्ट सूर्यको घटाकर जो शेष आवे उसके अंशादि बना लेना चाहिए। इस अंशादिमें १२ का भाग देनेपर लब्ध तुल्य गत तिथि होती है और जो शेष बचे वह वर्तमान तिथिका भुक्त भाग होता है। इस भुक्त भागको १२ अंशोंमेंसे घटानेपर वर्तमान तिथिका भोग्य भाग आता है। इस भोग्य-भागको ६० से गुणाकर गुणनफलमें चन्द्र-सूर्यके गत्यन्तरका भाग देनेसे वर्तमान तिथिके भोग्य-घटी पल निकलते हैं। उदाहरण—स्पष्ट चन्द्रमा राश्यादि २।१४।४३।३४ मेंसे स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ८।२३।३०।४ घटाया तो शेष राश्यादि ५।२१।१३।३०; इसके अंशादि बनाये तो १७१।१३।३० हुए। इनमे १२ का भाग दिया तो लब्धि-तुल्य १४ चतुर्दशी गत तिथि हुई। शेष अंशादि ३।१३।३० वर्तमान तिथि पूर्णिमाका भुक्तभाग हुआ। इसे १२ अंशोंमेंसे घटाया तो पूर्णिमाका भोग्यभाग अंशादि ८।४६।३० हुआ। इसकी विकलाएँ बनायीं तो ३१५९० हुईं। चन्द्र गतिकलादि ७८७।५ मेंसे सूर्य गतिकलादि ६१।२३ को घटाया तो गत्यन्तर कलादि ७२५।४२ हुआ। इसकी विकलाएँ बनाईं तो ४३५४२ हुईं। अब त्रैराशिक की कि ६० घटीमें चन्द्रमाकी आपेक्षिक गति ४३५४२ विकला है तो कितनी घटीमें उसकी आपेक्षिक गति ३१५९० विकला होगी? अतः $\frac{३१५९० \times ६०}{४३५४२} =$ घट्यादि-

मान ४३।३२ हुआ।[1] अर्थात् पूर्णिमाका प्रमाण ४३ घटी ३२ पल आया। इस प्रकार प्रतिदिनका स्पष्ट तिथिमान कभी ६० घटीसे अधिक हो जाता है, जिससे एक तिथिकी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि अहोरात्र-मान ६० घटी ही माना गया है। अतः एक ही तिथि दो दिन भी रह जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि रविवारको प्रतिपदा-का स्पष्टमान ६७।१० आया। रविवारका मान सूर्योदयसे लेकर अगले सूर्योदयके पहले तक अर्थात् ६० होता है, अतः प्रथम दिन ६० घटी तिथि चौबीस घण्टेतक रही, शेष ७ घटी और १० पल प्रमाण प्रति-पदा तिथि अगले दिन अर्थात् सोमवारको रहेगी। शिष्यका प्रश्न तिथि-वृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंकी तिथि संख्या निश्चित करनेके लिए है।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रत-तिथिकी व्यवस्था

पुनरष्टाह्निकामध्ये तिथिवृद्धिर्यदा भवेत्।
तदा नवदिनानि स्युर्व्रते चाष्टाह्निकार्यके ॥१४॥
सिद्धचक्रस्य मध्ये तु या तिथिर्वृद्धिमाप्नुयात्।
तद्विधिस्साधिका कुर्यादधिकस्याधिकं फलम् ॥१५॥

अर्थ—यदि अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचमें कोई तिथि बढ जाय तो व्रतीको नौ दिन तक अष्टाह्निका व्रत करना चाहिए। सिद्धचक्र—अष्टाह्निका तिथियोंके मध्यमें तिथि बढ जाने पर सिद्धचक्र विधान करने-वालेको नौ दिन तक विधान करना चाहिए। क्योंकि अधिक दिन तक करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। अतः तिथिवृद्धि होने पर व्रत एक दिन कम करनेकी आपत्ति नहीं आती है।

विवेचन—नियत अवधिवाले दैवसिक और नैशिक व्रतोंके मध्यमें तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होने पर उन व्रतोंके दिनोंकी संख्याको निर्धा-रित किया है। तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए,

---

१. ज्योतिर्गणित कौमुदी पृ० ३२, ग्रहलाघव, सूर्यसिद्धान्तका तिथि प्रकरण।

किन्तु तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन बादको नहीं किया जाता है। तिथि-क्षयमें नियत अवधिमेंसे एक दिन घट जाता है, जिससे दिनसंख्या नियत अवधिमेंसे कम हो जानेके कारण अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे व्रतोंमें एक दिन कम हो जानेका दोष आयगा। अष्टाह्निका व्रतके लिए आठ दिन निश्चित हैं तथा यह व्रत शुक्लपक्षमें किया जाता है। तिथि-क्षय होनेपर शुक्लपक्षमें ही एक दिन पहलेसे व्रत करनेकी गुंजाइश है; क्योंकि अष्टमीके स्थानमें सप्तमीसे भी व्रत करनेपर शुक्लपक्ष ही रहता है। इसी प्रकार दशलक्षण व्रतमें भी चतुर्थीसे व्रत करने पर शुक्लपक्ष ही माना जायगा। यहाँ एक-दो दिन पहले भी व्रत कर लेनेपर पक्ष या मास बदलनेकी सम्भावना नहीं है। जिस नियत अवधिवाले व्रतमें पक्ष या मासके बदलनेकी सम्भावना प्रकट की गयी है, उसमें व्रत निश्चित तिथिमें ही आरम्भ किया जाता है। जैसे षोड़शकारण व्रतके सम्बन्धमें पहले कहा गया है कि तिथिके घट जानेपर भी यह व्रत प्रतिपदासे ही आरम्भ किया जायगा। तिथिक्षयका प्रभाव इस व्रत पर नहीं पड़ता है और न तिथि-वृद्धिका प्रभाव ही कुछ होता है।

तिथि-वृद्धि हो जानेपर व्रत एक दिन और अधिक किया जाता है, इसकी दिन संख्या तिथि-वृद्धिके कारण घटती नहीं; बल्कि बढ़ी हुई तिथि में भी व्रत किया जाता है। अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचमें यदि एक तिथि बढ़ जाय तो उस बढ़ी हुई तिथिको भी व्रत करना होगा। तिथि-वृद्धिके समय व्रत-तिथिका निर्णय यही है कि जिस दिन व्रतारम्भ करनेकी तिथि है, उसी दिन व्रतारम्भ करना चाहिए। बीचमें जो तिथि बढ़ती हो, उसका भी व्रत करना पड़ेगा। तिथि-वृद्धिका परिणाम यह होगा कि कभी-कभी बेला उपवास कर जाना पड़ेगा। तथा कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब दो दिन लगातार पारणा ही की जाय। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि मंगलवारको अष्टमी दिन भर है, बुधवारको भी प्रातःकाल अष्टमी तिथिका प्रमाण ७ घटी १३ पल है। यहाँ दो अष्टमियाँ हुई हैं, प्रथम अष्टमी भी पूर्ण है और द्वितीय अष्टमीको भी

सूर्योदयकालमें छः घटी प्रमाण होनेसे व्रतके लिए ग्राह्य माना है, अतः यहाँ व्रत करनेवालेको दोनों अष्टमियोंके उपवास करने पड़ेंगे। नवमीका दिन अष्टाह्निका व्रतमें पारणाका है, यदि दो नवमी पड़ जायँ तो दो दिन लगातार पारणा करनी होगी। कुछ लोग बढ़ी हुई तिथिको उपवास ही करनेका विधान बतलाते हैं। सिद्धचक्र विधानके करनेमें भी वृद्धि-गत तिथिको ग्रहण किया गया है अर्थात् आठ दिनोंके स्थानमें नौ दिन तक विधान करना चाहिए। अधिक दिनतक विधान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होगी। जो लोग यह आशंका करते हैं कि नियत अवधिके अनुष्ठान और व्रतोंमें अवधिका उल्लंघन क्यों किया जाता है? यदि अवधिका उल्लंघन ही अभीष्ट था तो फिर तिथि-क्षयके समय अवधि स्थिर रखनेके लिए क्यों एक दिन पहलेसे व्रत करनेको कहा?

इस प्रश्नका उत्तर आचार्योंने बहुत विचार-विनिमय करनेके उपरान्त दिया है। आचार्य सिंहनन्दिने बताया है कि यों तो समस्त व्रतोंका विधान तिथिके अनुसार ही किया गया है। जिस व्रतके लिए जो विधेय तिथि है, वह व्रत उसी तिथिमें सम्पन्न किया जाता है। परन्तु विशेष परिस्थितिके आ जानेपर मध्यमें तिथिक्षयकी अवस्थामें नियत अवधिवाले व्रतोंकी अवधिको ज्योंकी त्यों स्थिर रखनेके लिए एक दिन पहले करनेका नियम है। तिथिवृद्धिमें विधेय तिथिकी ही प्रधानता रहती है, अतः एक दिनके बढ़ जानेपर भी नियत अवधि ज्योंकी त्यों स्थिर रहती है। नियत अवधिके व्रतोंमें अवधिका तात्पर्य वस्तुतः व्रत समाप्तिके दिनसे है। व्रत-समाप्ति निश्चित तिथिको ही होगी। उदाहरण—अष्टाह्निका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होनी चाहिए। यदि पूर्णिमाका कदाचित् क्षय हो और आगेवाली प्रतिपदा हो तो प्रतिपदाको इस व्रतकी समाप्ति न होकर पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशीको ही इस व्रतकी समाप्ति की जायगी। क्योंकि चतुर्दशीकी छायामें पूर्णिमा अवश्य आ जायगी। सर्वथा तिथिका अभाव कभी नहीं होता है, केवल उदयकालमें तिथिका क्षय दिखलाया

जाता है। जिस तिथिका पंचांगमें क्षय लिखा रहता है, वह तिथि भी पहलेवाली तिथिकी छायामें कुछ घटी प्रमाण रहती है। अतएव अष्टाह्निका व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको कभी नहीं की जायगी। पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशी ही ग्राह्य बतायी गयी है, क्योंकि चतुर्दशी आगे आनेवाली पूर्णिमामें विद्ध है।

इसी प्रकार एक तिथि बढ जानेपर भी अष्टाह्नका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको ही होगी। यदि कदाचित् दो पूर्णिमाएँ हो जायँ और दोनों ही पूर्णिमा उदयकालमें छः घटीसे अधिक हो तो किस पूर्णिमाको व्रतकी समाप्ति की जायगी ? प्रथम पूर्णिमाको यदि व्रतकी समाप्ति की जाती है तो आगेवाली पूर्णिमा भी सोदयतिथि होनेके कारण समाप्तिके लिए क्यों नहीं ग्रहण की जाती है ? आचार्य सिंहनन्दिने इसीका समाधान 'अधिकस्याधिकं फलम्' कहकर किया है। अर्थात् दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए; क्योंकि दूसरी पूर्णिमा भी रस घटी प्रमाण उदयकालमें होनेसे ग्राह्य है। एक दिन अधिक व्रत कर लेनेसे अधिक ही फल मिलेगा। अतएव दो पूर्णिमाओंके होने पर आगेवाली—दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए।

जब दो पूर्णिमाओंके होनेपर पहली पूर्णिमा ६० घटी प्रमाण है और दूसरी पूर्णिमा तीन घटी प्रमाण है, तब क्या दूसरी ही पूर्णिमाको व्रत समाप्त किया जायगा। आचार्यने इस आशंकाका निर्मूलन करते हुए बताया है कि दूसरी पूर्णिमा छः घटीसे कम होनेके कारण व्रतको पूर्णिमा ही नहीं है, अतः उसे तो पारणाके लिए प्रतिपदा तिथिमें परिगणित किया गया है। व्रतकी समाप्ति ऐसी अवस्थामें प्रथम पूर्णिमाको ही कर ली जायगी तथा आगेवाली पूर्णिमा जो कि प्रतिपदासे संयुक्त है, पारणा तिथि मानी जायगी।

जब कभी दो चतुर्दशियाँ अष्टाह्निका व्रतमें पड़ती हैं तो तीन उपवासके पश्चात् प्रतिपदाको पारणा करनेका नियम है। साधारणतया चतुर्दशी और पूर्णिमा इन दोनों तिथियोंका एक उपवास करनेके उपरान्त

प्रतिपदाको पारणा की जाती है। अष्टाह्निका व्रतका महाभिषेक पूर्णिमाको ही हो जाता है।

या तिथिर्व्रतपूर्णे तु वृद्धिर्भवति सा यदा।
तस्यां नाडीप्रमाणायां पारणा क्रियते व्रती ॥१८॥

अर्थ—व्रतकी समाप्ति होनेपर जो तिथि वृद्धिको प्राप्त होती है, यदि वह एक नाड़ी—घटी प्रमाण हो तो उसीमें पारणा की जाती है। अभिप्राय यह है कि जब व्रतकी समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम तिथिमें व्रतको समाप्तकर द्वितीय तिथि छः घटी प्रमाणसे अल्प हो तो उसीमें पारणा करनी चाहिए। यदि छः घटी प्रमाणसे द्वितीय तिथि अधिक हो या छः घटी प्रमाण हो तो उसीमें ही व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

विवेचन—जब व्रत समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम या द्वितीय तिथिको व्रतको पूर्ण करना चाहिए? इसपर आचार्योंके दो मत हैं—प्रथम मत प्रथम तिथिको व्रतकी समाप्तिकर अगली तिथिके एक घटी प्रमाण रहनेपर पारणा करनेका विधान करता है। दूसरा मत अगली तिथिके छः घटी या इससे अधिक होनेपर उसीदिन व्रत समाप्ति पर ज़ोर देता है तथा अगले दिन पारणा करनेका विधान करता है। जैनाचार्योंने तिथिवृद्धि होने पर व्रत करनेकी अवधिका बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है।

गणितज्योतिष व्रतके लिए दो तिथियोंको ग्राह्य नहीं मानता। इसकी दृष्टिमें तिथि बढ़ती ही नहीं है और न कभी तिथिका अभाव होता है। तिथिवृद्धि और तिथिक्षय साधारण व्यक्तियोंको मालूम होते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि दो तिथियाँ परस्परमें विद्ध प्रायः रहती हैं। पर तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त तथा उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त होती है। व्रतमें पूर्व तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त ग्राह्य की गयी है; उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त ग्रहण नहीं की जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि सोमवारको अष्टमी ७ घटी ३०

पल है, पश्चात् नवमी प्रारम्भ हो जाती है। वहाँ अष्टमी पर या पूर्व तिथि है जो नवमीमे संयुक्त है; क्योंकि ७ घटी ३० पलके उपरान्त नवमी तिथिका प्रारम्भ होनेवाला है। यद्यपि पञ्चांगमें नवमी तिथि मंगलवारको ही लिखी मिलेगी; अतः उदयकालमें ही तिथिका प्रमाण लिखा जाता है। अथवा यों कहना चाहिए कि पर या पूर्व तिथिका ही तिथ्यादि मान पञ्चांगमें अंकित रहता है, उत्तर तिथिका नहीं। जो तिथि पञ्चांगमें अंकित है वह पर या पूर्व और जो अंकित नहीं है, वह उत्तर कहलाती है। पुनरागत पूर्व तिथि वह है, जो उत्तर तिथिके समाप्त होनेपर अगले दिन आनेवाली हो। जैसे पूर्व उदाहरणमें अष्टमीके उपरान्त नवमी तिथि बतायी गयी है, यदि इसी दिन नवमी भी समाप्त हो जाय और पुनरागत दशमीसे संयुक्त हो तो यह उत्तर तिथि पुनरागत पूर्वतिथिसे संयुक्त कही जाती है। व्रतके लिए यह तिथि त्याज्य है।

तिथितत्त्व नामक ग्रन्थमें बताया गया है कि दो प्रकारकी तिथियाँ होती हैं—परयुक्त और पूर्वयुक्त। व्रत विधिके लिए द्वितीया, एकादशी, अष्टमी, त्रयोदशी और अमावास्या परयुक्त होनेपर ग्राह्य नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि इन तिथियोंको व्रतके लिए पूर्ण होना चाहिए। जब तक ये तिथियाँ दिनभर नहीं रहेंगी, इनमें प्रतिपादित व्रत नहीं किये जा सकते है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि अष्टमी तिथि यदि उदयकालमें ७ घटी ३० पल है तो परयुक्त होनेके कारण इस दिन व्रत नहीं करना चाहिए। परन्तु जैनाचार्य तिथितत्त्वके इस मतको अप्रामाणिक ठहराते हैं। उनका कथन है कि छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिके होनेपर, वह विधेय तिथि व्रत के लिए स्वीकार की गयी है।

पुनरप्यन्येषां सेनगणस्य सूरीणां वचनमाह—
मेरुव्रतं विना शेषव्रते येनाधिका तिथिः।
घट्येकरसपद्धीना त्रिविधा तिथिसंस्थितिः ॥१७॥

अर्थ—व्रत-समाप्ति-तिथिकी वृद्धि होनेपर व्रतके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए, इसके लिए सेनगणके अन्य आचार्योंके मतको कहते हैं—

मेरुव्रतके बिना समस्त व्रतोंमें वृद्धिंगत तिथि जितनी अधिक होती है, उसमेंसे एक घटी, छः घटी और चार घटी प्रमाण घटानेपर तीन प्रकारसे व्रत-तिथिकी स्थिति आ जाती है।

विवेचन—पाँच मेरु सम्बन्धी ८० चैत्यालयोंके व्रत मेरुव्रतमें किये जाते हैं। पहले चार उपवास भद्रशाल वनके चारों मन्दिर सम्बन्धी करने चाहिए। पश्चात् एक वेला करनेके उपरान्त नन्दनवनके चार उपवास करने चाहिए। पुनः एक वेला करनेके उपरान्त सौमनस वनके चार उपवास किये जाते हैं, पश्चात् एक वेलाके उपरान्त पाण्डुक वनके चार उपवास किये जाते है, उपरान्त एक वेला करनो चाहिए। इस प्रकार एक मेरुके सोलह प्रोषधोपवास, चार वेला तथा बीस एकाशन होते हैं। तात्पर्य यह है कि मेरुव्रतके उपवासोंमें प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी सोलह चैत्यालयोंके सोलह प्रोषधोपवास करने पडते हैं। प्रथम सुदर्शन मेरुके चार वन है—भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वन। प्रत्येक वनमे चार जिनालय है। व्रत करनेवाला प्रथम भद्रशाल वनके चारो चैत्यालयोंके प्रतीक चार प्रोषधोपवास करता है। प्रथम वनके प्रोषधोपवासोंमे आठ दिन लगते है अर्थात् चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ इस प्रकार आठ दिन लग जाते है। द्वितीय वनके प्रोषधोपवासोंमे भी आठ ही दिन लग जाते हैं अर्थात् चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ करनी पडती हैं।

सौमनस वनके प्रतीक भी चारों चैत्यालयोंके चार उपवास और चार पारणाएँ करनी पडती है। इसी प्रकार पाण्डुक वनके उपवासोंमें भी चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ की जाती है। इस प्रकार प्रथम सुदर्शन मेरुके सोलह चैत्यालयोंके प्रतीक सोलह उपवास, सोलह पारणाएँ और प्रत्येक वनके उपवासोंके अन्तमे एक—वेला दो दिनका उपवास; इस तरह कुल चार वेलाएँ करनी पडती हैं। प्रथम मेरुके व्रतोंमें कुल ४४ दिन लगते है। १६ प्रोषधोपवासके १६ दिन, १६ पारणाओंके १६ दिन और ४ वेलाओंके ८ दिन तथा प्रत्येक वेलाके उपरान्त एक

पारणा की जाती है अतः ४ वेलाओं सम्बन्धी ४ दिन; इस प्रकार कुल १६ + १६ + ८ + ४ = ४४ दिन प्रथम मेरुके व्रतोंमें लगते हैं। ४४ दिन पर्यन्त शील व्रतका पालन किया जाता है तथा धर्मध्यानपूर्वक अपने समयको व्यतीत किया जाता है। प्रथम मेरुके व्रतोंके पश्चात् लगातार ही द्वितीय मेरुविजयके भी उपवास करने चाहिए।

विजयमेरुके सोलह चैत्यालय सम्बन्धी सोलह उपवास तथा प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। प्रत्येक मेरुपर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक ये चारों वन रहते हैं तथा प्रत्येक वनमें प्रधान चार चैत्यालय हैं। प्रत्येक वनमें चैत्यालयोंके उपवासोंके अनन्तर वेला की जाती है तथा प्रत्येक वेलाके उपरान्त एक पारणा भी। इस प्रकार द्वितीय मेरु सम्बन्धी सोलह उपवास, चार वेलाएँ तथा बीस पारणाएँ की जाती हैं। इनकी दिन संख्या भी १६+८+४+१६=४४ ही होती है।

तृतीय अचल मेरु सम्बन्धी उपवास भी १६, वेलाएँ ४ तथा पारणाएँ २०, अतः इसकी दिन संख्या भी ४४ ही होती है। इसी प्रकार पुष्करार्द्धके दोनों मेरु मन्दर और विद्युन्माली सम्बन्धी उपवासोंकी संख्या तथा दिन संख्या पूर्ववत् ही है। पंच मेरु सम्बन्धी व्रत करनेकी दिनसंख्या ४४ × ५ = २२० होती है। इस व्रतमें ८० प्रोषधोपवास, २० वेलाएँ और १०० पारणाएँ की जाती हैं। इन उपवास, वेला और पारणाओंकी दिनसंख्या जोड़नेपर भी पूर्ववत् ही आती है। क्योंकि २० वेलाओंके ४० दिन होते हैं अतः ८०+४०+१०० = २२० दिन तक व्रत करना पड़ता है। व्रतके दिनोंमें पूजन, सामायिक तथा भावनाओंका चिन्तन विशेष रूपसे किया जाता है।

मेरु व्रतका प्रारम्भ श्रावण माससे माना जाता है। युग या वर्षका प्रारम्भ प्राचीन भारतमें इसी दिनसे होता था। श्रावण कृष्णा प्रतिपदासे प्रारम्भकर लगातार २२० दिन तक यह व्रत किया जाता है। एक बार व्रत करनेके उपरान्त उसका उद्यापन कर दिया जाता है।

आचार्यने बताया है कि तिथि-वृद्धिका प्रभाव मेरुव्रत पर कुछ भी

नहीं पड़ता है; क्योंकि यह व्रत लगातार वर्षमें ७ महीने १० दिन तक करना होता है। इसमें तिथिवृद्धि और तिथिक्षय बराबर होते रहनेके कारण दिन-संख्यामें बाधा नहीं आती है।

एक अन्य हेतु यह भी है कि मेरुव्रतके करनेमें किसी तिथिका ग्रहण नहीं किया गया है। इस व्रतका तिथिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो एक दिन उपवास, दूसरे दिन पारणा, फिर उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार चार उपवास और चार पारणाओंके अनन्तर एक वेला—दो दिन तक लगातार उपवास करना पड़ता है। पश्चात् पारणा की जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त विधिके अनुसार उपवास और पारणाओंका सम्बन्ध किसी तिथिसे नहीं है। बल्कि यह सावन दिनसे सम्बन्ध रखता है; इसलिए इस व्रतपर तिथिवृद्धि और तिथिक्षयका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। आचार्यने इसी कारण मेरुव्रतको छोड़ शेष समस्त व्रतोंके सम्बन्धमें विधान बतलाया है कि नियत अवधिवाले व्रतोंकी अन्तिम तिथिके बढ़ने पर पारणाकी तिथि इस प्रकार निकाली जाती है कि वृद्ध-तिथि प्रमाणमेंसे एक घटी, छः घटी और चार घटी प्रमाण घटा देने पर जो शेष आवे वहीं पारणाका समय आता है अर्थात् पारणाके लिए तीन प्रकारकी स्थिति बतलायी है।

तात्पर्य यह है कि यदि वृद्धितिथि अगले दिन छः घटी प्रमाण हो, चार घटी प्रमाण हो अथवा एक घटी प्रमाण हो तो उस दिन व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु पारणा की जायगी। यदि वृद्धि तिथि अगले दिन छः घटी प्रमाणसे अधिक है तो उस दिन भी व्रत ही करना पड़ेगा। सेनगणके आचार्योंने एकमतसे स्वीकार किया है कि अगले दिन वृद्धि तिथिका प्रमाण छः घटीसे ऊपर अर्थात् सात घटी होना चाहिए। बीचमें तिथिवृद्धि होनेपर उपवास या एकाशन करना चाहिए। व्रत-समाप्ति वाली तिथिके लिए ही यह नियम स्थिर किया गया है।

मेरु व्रतका सम्बन्ध सावन दिनसे है, अतः इसकी समाप्ति या मध्यमें तिथियोंकी उदयास्त संज्ञाएँ या तिथियोंकी घटिकाएँ गृहीत नहीं

की गयी हैं। जिन व्रतोंका सम्बन्ध चान्द्र तिथियोंसे है, उनके लिए तिथि-वृद्धि और तिथिक्षय ग्रहण किये जाते हैं। आचार्यने यहाँ पर अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर उसकी व्यवस्था बतलायी है।

मेरु व्रतकी विधि—प्रथम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें '**ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः**' इस मन्त्रका जाप त्रिकाल करना चाहिए। द्वितीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनों में '**ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः**', तृतीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें '**ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः**' चतुर्थ मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें '**ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिषोडश-जिनालयेभ्यो नमः**' और पंचम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें '**ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः**' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

पारणाके दिनोंमें एक अनाजका ही प्रयोग करना चाहिए। फलोंमे सेव, नारियल, आम, नारंगी, मौसम्मीका उपयोग कर सकते हैं। रात्रि जागरण करना भी आवश्यक है। व्रतके दिनोंमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। पंचमेरुकी पूजाके साथ त्रिकाल-चौबीसी, विद्यमान विंशति तीर्थंकर और पंचपरमेष्ठी पूजा करनी चाहिए। शीलव्रतका पालन भी आवश्यक है।

इस व्रतका फल—लौकिक और पारलौकिक अभ्युदयको प्राप्तिके साथ स्वर्गसुख और विदेहमें जन्म होता है। तीन-चार भवमें जीव निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

व्रत तिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत

कर्णाटकप्रान्ते रविमितघटी तिथिः ग्राह्या। मूलसंघे रस-घटी तिथिर्ग्राह्या। जिनसेनवाक्यतः काष्ठासंघे त्रिमुहूर्त्तात्मिका तिथिर्ग्राह्या तिथिर्गृहीता वसुपलहीनं द्विघटीमितं मुहूर्त्तमित्यु-च्यते॥

अर्थ—कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी प्रमाण व्रतके लिए तिथि ग्रहण की गयी है। मूल संघके आचार्योंने छः घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। जिनसेनाचार्यके वचनोंसे काष्ठासंघमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिका मान ग्रहण किया गया है। आठ पल हीन दो घटी अर्थात् एक घटी बावन पलका एक मुहूर्त्त होता है।

विवेचन—व्रत तिथिका प्रमाण निश्चित करनेके सम्बन्धमें जैनाचार्योंमें भी मतभेद है। भिन्न-भिन्न देशोंके अनुसार व्रतके लिए तिथिका प्रमाण भिन्न-भिन्न माना गया है। कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी व्रत तिथिके होनेपर ही व्रतके लिए तिथि ग्राह्य बतायी गयी है। श्रीधराचार्यने अपनी ज्योतिर्ज्ञान विधिमें व्रत तिथिका विचार करते हुए कहा है कि जो तिथि अपने सम्पूर्ण प्रमाणके पञ्चमांश हो वही व्रतके लिए ग्राह्य होती है। श्रीधराचार्यके उक्त मतपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि बारह घटी प्रमाण तिथिका मान मध्यम तिथिके हिसाबसे लिया गया है। दक्षिण भारतमें जैनेतर विद्वानोंमें भी श्रीधराचार्यके मतका आदर है।

जब मध्यम तिथिका मान साठ घटी मान लिया जाता है, उस समय पञ्चमांश बारह घटी ही आता है; किन्तु स्पष्ट मान बारह घटी शायद ही कभी आवेगा। गणितकी दृष्टिसे स्पष्ट मान निम्न प्रकार लाना चाहिए। उदाहरण—गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है तथा बुधवारको चतुर्थी १८ घटी ३० पल है। यहाँ पञ्चमीका कुल मान निकालकर यह निश्चय करना है कि गुरुवारको पञ्चमी श्रीधराचार्यके मतमें ग्राह्य हो सकती है या नहीं? तिथिका कुल मान तभी मालूम हो सकता है जब एक तिथिके अन्तसे लेकर अहोरात्र पर्यन्त जितना मान हो उसे पञ्चांग अंकित तिथि मानमें जोड दिया जाय। यहाँ पर पञ्चमीका मान निकालना है; बुधवारको चतुर्थीकी समाप्ति १८।३० के उपरान्त हो जाती है, अर्थात् पञ्चमी तिथि बुधवारको सूर्योदयके १८।३० घट्यात्मक मानके उपरान्त आरम्भ हो गयी है। अतः बुधवारको पञ्चमीका प्रमाण =

(६०।०) – (१८।३०) = (अहोरात्र—वर्तमान तिथि) = ४१।३० घट्यादि मान बुधवारको पञ्चमीका हुआ। गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है, अतः दोनों मानोंको जोड देने पर पञ्चमी तिथिका कुल प्रमाण निकल आयगा। (४१।३०)+(१५।२०) = ५६।५० । इसका पञ्चमांश निकाला तो ५६।५० ÷ ५ = ११।२२ अर्थात् ११ घटी २२ पल प्रमाण यदि सूर्योदय कालमें पञ्चमी होगी, तभी व्रतके लिए ग्राह्य मानी जा सकेगी। परन्तु हमारे उदाहरणमें १५ घटी २० पल प्रमाण गुरुवारको पञ्चमी उदयकालमें बतायी गयी है, जो कि गणितसे आये हुए पञ्चमांश से ज़्यादा है। अतः गुरुवारको पञ्चमीका व्रत किया जायगा। मुनिसुव्रत पुराणकारने व्रतकी तिथिका मान कुल तिथिका षष्ठांश स्वीकार किया है। दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रान्तमें पञ्चमांश प्रमाण तिथि, तमिल प्रान्तमें षष्ठांश प्रमाण तिथि एवं तैलगु प्रान्तमें त्रिमुहूर्त्तात्मिका तिथि व्रतके लिए ग्रहण की गयी है। उत्तर भारतमें प्रायः सर्वत्र रस घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

मूलसंघ और सेनगणके आचार्य तिथि-प्रभाव और तिथि शक्तिकी अपेक्षा छः घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्रहण करते हैं। काशी, कोशल, मगध एवं अवन्ति आदि समस्त उत्तर भारतके प्रदेशोंमें मूल संघका ही मत तिथिके लिए ग्राह्य माना जाता था। काष्ठा संघके प्रधान आचार्य जिनसेन हैं, इन्होंने व्रतकी तिथिका प्रमाण तीन मुहूर्त्त अर्थात् ५ घटी ३६ पल बताया है। हस्तिनापुर, मथुरा और कोशल देशमें प्राचीनकालमें इस मतका प्रचार था। मूलसंघ और काष्ठासंघके व्रततिथि प्रमाणमें कोई विशेष अन्तर नहीं। मात्र चौबीस पलका अन्तर है, जो कि मध्यम और स्पष्ट मानके अन्तरसे हो सकता है। यहाँ सभी मतोंका समन्वय करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्रत करनेके लिए तिथिका प्रमाण छः घटीसे ज़्यादा होना चाहिए। सेनगणके कतिपय आचार्योंने इसी कारण व्रत तिथिका मान तीन मुहूर्त्तसे लेकर छः मुहूर्त्त तक बताया है।

तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथि लेकर व्रत करनेसे जघन्य फल, चार मुहूर्त्त

प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे मध्यम फल एवं छः मुहूर्त्त प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे उत्तम फल मिलता है। तीन मुहूर्त्तसे अल्पप्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। निर्णयसिन्धुमें हेमाद्रि मतका निरूपण करते हुए बताया गया है कि विवाद उपस्थित होनेपर व्रतके लिए तिथिका प्रमाण समस्त पूर्वाह्णव्यापी लेना चाहिए। पूर्वाह्णका प्रमाण गणितसे निकालते हुए बताया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देकर जो लब्ध आवे, उसे दोसे गुणा करनेपर पूर्वाह्णकालका मान आता है। उदाहरण दिनमान बुधवारको २८ घटी ४० पल है तथा चतुर्दशी तिथि इस दिन ६ घटी ७ पल है, क्या यह तिथि पूर्वाह्णव्यापी है ? इसे व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए ?

दिनमान २८।४० में पाँचका भाग दिया तो—२८।४० ÷ ५ = ५।४४। इसको दोमें गुणा किया तो—५।४४ × २ = ११।२८ घटी तक पूर्वाह्ण माना जायगा। जो तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी नहीं होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। अतः बुधवारको चतुर्दशी व्रतकी तिथि नहीं मानी जा सकती है; क्योंकि इसका प्रमाण पूर्वाह्णके प्रमाणसे अलग है।

यह हिमाद्रि मत कर्णाटकप्रान्तीय श्रीधराचार्यके मतसे मिलता-जुलता है। केवल गणित प्रक्रियामें थोड़ा-सा अन्तर है। गणितसे निष्पन्न फल दोनोंका प्रायः एक ही है। दीपिकाकार एवं मदनरत्नकार सत्यव्रतने उदय तिथिका खण्डन करते हुए बताया है कि जब तक पूर्वाह्णकालमें तिथि न हो तब तक व्रतारम्भ और व्रत समाप्ति नहीं करनी चाहिए। देवलने भी उक्त मतका समर्थन किया है तथा जो केवल उदय तिथिको ही प्रमाण मानते हैं, उनका खण्डन किया है। देवल और सत्यव्रतका मत बहुत कुछ मूल संघके आचार्योंके मतके साथ समानता रखता है। तिथि-शक्ति और तिथिके बलाबलको प्रधान हेतु मानकर पूर्वाह्णकाल व्यापी तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है[1]। गणितसे पूर्वाह्णका प्रमाण

१. उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक्।
सा खण्डा न व्रताना स्यादारम्भश्च समापनम्॥—निर्णय० पृ० १७।

भी एक विलक्षण ढंगसे निकाला है, इन्होंने दिनमानका मान्य पञ्चमांश ही पूर्वाह्न माना है। यद्यपि अन्य गणितके आचार्योंने पञ्चमांशपर पूर्वाह्नका प्रारम्भ और दो पञ्चमांशपर पूर्वाह्नकी समाप्ति मानी है। दिनमानका मान्य पञ्चमांश कह देनेसे ही पूर्वाह्नका ग्रहण हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अनेक मतमतान्तरोंके रहनेपर भी जैनाचार्योंने व्रतके लिए छः घटीसे लेकर बारह घटी तक तिथिका प्रमाण बताया है।

दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी अवधिका निर्धारण

कारणे लक्षणे धर्मे दिनानि दशषोडशात्।
न्यूनाधिकदिनानि स्युराद्यन्तविधिसंयुते ॥१८॥
अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसत्तमैः ॥
आदिमध्यान्तभेदेषु यथाशक्तिर्विधीयते ॥१९॥

अर्थ—दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी संख्या क्रमसे दश और सोलह है। तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें व्रत प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर व्रत समाप्त करनेकी तिथि तक न्यूनाधिक दिन संख्या भी हो जाती है। मध्यमें जब तिथिक्षय हो जाता है तो दिन संख्या कम और जब तिथि-वृद्धि हो जाती है तो दिन संख्या बढ़ जाती है।

व्रतके जानकार विद्वान् लोगोंने तिथिवृद्धि होनेपर एकदिन अधिकव्रत करनेका आदेश दिया है; अतः आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें शक्तिके अनुसार व्रत करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक तिथिके बढ़ जानेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। व्रतके आदि, मध्य अथवा अन्तमें तिथिके क्षय होनेपर शक्तिके अनुसार व्रत करना।

विवेचन—यद्यपि सोलहकारणव्रतके दिनोंकी संख्या तथा उसकी अवधिके सम्बन्धमें पहले ही विस्तारसे कहा जा चुका है। सोलहकारण व्रतमें एक तिथिके बढ जानेपर दिनसंख्या बढ़ जाती है किन्तु व्रतके दिनोंके मध्यमें एक तिथिके घट जानेपर दिन-संख्यामें एक दिन कम

किया जाता है। यह व्रत भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, अतः बीचकी तिथिके नष्ट हो जानेपर भी तिथि-अवधि ज्यों-की-त्यो रहती है। व्रत आरम्भ और व्रत समाप्त करनेकी तिथियाँ इसमें निश्चित रहती हैं, अतः तिथिक्षयमें एक दिन आगेसे व्रत नहीं किया जाता है, जिससे ३१ दिन की जगह ३० दिन ही किया जाता है।

दशलक्षण व्रतमे एक दिनके घट जानेपर एक दिन आगेसे व्रत करने-को परिपाटी भी है तथा यह शास्त्रसम्मत भी है। दशलाक्षणी व्रतके बीचमें जब किसी तिथिका क्षय रहता है, तो उसे पूरा करनेके लिए एक दिन आगे व्रत किया जाता है। दस दिनोंके स्थानमे यह व्रत कभी भी नौ दिनोंमें नही किया जाता है। जब तिथि बढ जाती है तो इस व्रतकी अवधि ग्यारह दिनकी हो जाती है, तिथि बढ जानेपर एक दिन घटता नहीं है। व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। तिथि घट जानेपर भी व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। हाँ, पञ्चमीको व्रत आरम्भ न कर तिथि-क्षयकी स्थितिमे चतुर्थीको व्रतारम्भ किया जाता है। संनगणके आचार्योंने व्रत समाप्तिकी तिथि निश्चित कर दी है। व्रतारम्भके सम्बन्ध-में काष्ठासंघ और मूल संघमे थोड़ा-सा मतभेद है। मूल संघके आचार्य मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको ही व्रतारम्भ मान लेते हैं, उन्होंने बतलाया है कि मध्यमे तिथि-क्षयकी अवस्थामें पञ्चमी विद्ध चतुर्थी ग्रहण की गई है। सूर्यास्त समयमें पञ्चमी तिथि आ ही जाती है। ऐसा नियम भी है कि जब दशलक्षण व्रतके मध्यमें किसी तिथिका क्षय होता है तो चतुर्थी तिथि मध्याह्नके पश्चात् पञ्चमीसे विद्ध हो ही जाती है। अतएव मूलसंघके आचार्योंने एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान किया है। यद्यपि उदयकालमे रसघटी प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य बताया है, परन्तु **'त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च'** श्लोकमें च-शब्दका पाठ रखा है, जिससे स्पष्ट है कि सूर्यास्तकालमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिके होनेपर भी तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है।

यद्यपि आचार्यने स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान नैशिक व्रतोंके लिए ही है।

'त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्कः' श्लोककी संस्कृत व्याख्यामें बताया है **"या तिथिरुदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः"** आचार्य-के इस कथनसे स्पष्ट है कि अस्तकालमें तीन घटी रहनेवाली तिथि भी व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है। यद्यपि आगे चलकर अपने व्याख्यानमें नैशिक व्रतोंके लिए अस्तकालीन तिथिका उपयोग करनेके लिए कहा गया है। फिर भी व्याख्यामें दो बार **"त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना"** पाठ आजानेसे यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि दशलक्षण और अष्टाह्निका व्रतके मध्यमें तिथिका अभाव होनेपर पञ्चमी विद्ध चतुर्थी तथा अष्टमी विद्ध सप्तमी व्रत करनेके लिए ग्रहण कर ली जाती है, जिसमें नियत अवधिमें भी बाधा नहीं पडती है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर उपर्युक्त व्यवस्था मान ली जायगी, किन्तु आदि और अन्तमें तिथिक्षय होनेपर उक्त दोनों व्रतोंके लिए क्या व्यवस्था रहेगी ? आचार्य सिंहनन्दीने इस प्रश्नका उत्तर भी उपर्युक्त पद्योंमें दिया है। आपने बतलाया है कि आदि तिथिका क्षय होनेका अर्थ है—दश-लक्षणके लिए पञ्चमीका ही अभाव होना। जब सूर्योदयकालमें पञ्चमी नहीं रहेगी तो चतुर्थी विद्ध पञ्चमी ही व्रतके लिए पञ्चमी मान ली जायगी। गणित प्रक्रियाके अनुसार यही सिद्ध होता है कि जब उत्तर तिथिका अभाव होता है तो पूर्व तिथि भी पिछले दिन अल्प प्रमाण ही रहती है, जिससे क्षय होनेवाली तिथि उस दिन भुक्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जिस पञ्चमीका अभाव हुआ है, वस्तुतः वह उसके पहले दिन उदयकालमें चतुर्थीके रहनेपर भुक्त हो चुकी है, जिससे अगले दिन उदय कालमें उसका अभाव हो गया है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि बुधवारको चतुर्थी ६ घटी २० पल है, गुरुवारको पञ्चमीका अभाव है और षष्ठी ५० घटी १९ पल है। ऐसी अवस्थामें व्रतके लिए पञ्चमी कौन सी मानी जायगी ?

बुधवारको ६ घटी २० पलके उपरान्त पञ्चमी आ जायगी; और उसी दिन ५९ घटी २५ पल पर समाप्त हो जाती है। गुरुवारको पञ्चमीका सर्वथा अभाव है। अतः व्रतारम्भ बुधवारसे किया जायगा। यह नियम है कि जब उदयकालमें तिथि नहीं मिलती है, तो अपराह्णकालीन तिथिको ग्रहण कर लिया जाता है। अतएव आदि तिथिके क्षय होनेपर दशलक्षण व्रत चतुर्थी से और अष्टाह्निका व्रत सप्तमीसे किया जाता है। यदि अन्तिम तिथि क्षय हो तो यह व्यवस्था है कि जिस दिन गणितके हिसाबसे अन्तिम तिथि पड़ती हो, उसी दिन व्रत समाप्त करने चाहिए। अर्थात् तिथिक्षय-के पहलेवाले दिनको व्रत समाप्त हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्रत समाप्तिके दिन तिथि एक या दो घटी ही नाममात्रको होती है, ऐसी अवस्थामें छः घटी प्रमाणसे कम होनेके कारण अग्राह्य है; परन्तु क्षय सदृश होनेपर भी एक दिन व्रत अवधिमेंसे न्यून रहनेके कारण व्रत समाप्तिके लिए छः घटीसे कम प्रमाण तिथि भी ग्रहण कर ली जाती है। निष्कर्ष यह है कि अन्तिम तिथिके क्षय होनेपर दशलक्षण व्रत नौ दिन तथा अष्टाह्निका व्रत सात दिन तक ही करने चाहिए। एक दिन पहलेसे व्रत करने लगना ठीक नहीं है।

व्रततिथि निर्णयके लिए अन्य मतमतान्तर

इति दामोदरकथितं रसघट्यां व्रतं नीतं देशसौराष्ट्र-शान्तिकृतमध्यदेशेषु विख्यातं कर्णाटके, द्राविडे देशे च प्रसिद्धम् ॥

अर्थ—इस प्रकार दामोदरके द्वारा कथित रस घटी प्रमाण तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यह मत सौराष्ट्र—गुजरात, शान्तिकृत—उत्तर प्रदेश और विहार प्रान्तका उत्तर पूर्वीय भाग, मध्य प्रदेशमें प्रसिद्ध तथा कर्णाटक और द्राविड देशमें मान्य है।

विवेचन—दामोदर नामके एक आचार्य हुए है, जिन्होंने व्रततिथि-का प्रमाण छः घटी माना है। इन्होंने तिथिनिर्णय नामका एक प्रसिद्ध

ग्रन्थ लिखा है। इनके रसघटी प्रमाण मतका उद्धरण इन्द्रनन्दि संहिता-में भी पाया जाता है तथा इन्द्रनन्दि आचार्यने स्वयं इनका उल्लेख किया है। तिथि प्रमाणके लिए अनेक मतभेदोंके होनेपर भी बहुमतसे छः घटी मान ही ग्राह्य माना गया है। यह मत गुजरात, मध्यदेश, उत्तर प्रदेश, कर्णाटक और द्राविड देशमें मान्य है। यद्यपि कर्णाटक देशमें सामान्यतः तिथिमान बारह घटी माननेका उल्लेख किया गया है, परन्तु विशेषरूपसे जैनाचार्योंने छः घटी प्रमाणको ही ग्राह्य बताया है। तथा तिथिका तत्त्वभाग पन्द्रह घटी प्रमाण तक माना है।

कर्णाटक देशके जैनेतर आचार्योंने व्रत तिथिका मान समस्त तिथिका दशमांश अथवा दिनमानका षष्ठांश माना है। इसका समर्थन दामोदर आचार्यके वचनोंसे भी होता है। यह मत जैनोंमें तामिल प्रदेशमें आदर-णीय समझा जाता था। इन्द्रनन्दि और माघनन्दि आचार्योंके वचनोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। अभ्रदेवके वचनोंसे भी प्रतीत होता है कि सूक्ष्म विचारके लिए व्रततिथिका मान समस्त तिथिका दशमांश या दिन-मानका षष्ठांश मानना चाहिए। जैसे अर्जित सम्पत्तिका षष्ठांश दानमें दिया जाता है, उसी प्रकार दिनमानका षष्ठांश व्रतके लिए ग्राह्य होता है। उदाहरण—बुधवारको सप्तमी १५ घटी १० पल है, गुरुवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है। यहाँ यह देखना है कि माघनन्दि और इन्द्र-नन्दिके सिद्धान्तानुसार गुरुवारकी अष्टमी व्रतके लिए ग्राह्य है या नहीं ? अहोरात्र मानमेंसे सप्तमी तिथिके प्रमाणको घटाया तो अष्टमीका प्रमाण आया—(६०।०) – (१५।१०) = (अहोरात्र—व्रत तिथिके पहले-की तिथि) = ४४।५० = अनंकित व्रततिथि; जो कि पञ्चांगमें अंकित नहीं की गयी है। इसमें पञ्चांग अंकित तिथि जोड़नेपर समस्त तिथिका प्रमाण होगा—

(अनंकित व्रततिथि+पञ्चांग अंकित व्रत तिथि) = (४४।५०)+(७।५४) = ५२।४४ समस्त तिथिका मान। इसका दशमांश = ५२। ४४ ÷ १० = ५।१६।२४ अर्थात् चार घटी, अट्ठावन पल और चौबीस

विपल प्रमाण या इससे अधिक होनेपर तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यहाँ पर अष्टमी ७ घटी ५४ है, यह मान गणितागत मानसे अधिक होनेके कारण व्रत तिथिके लिए ग्राह्य है। दिनमान २९ घटी ४० पल है, इसका षष्ठांश लिया तो—(२९।४०) ÷ ६ = ४।५६।४० अर्थात् ४ घटी ५६ पल ४० विपल हुआ। गुरुवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है जो कि गणित द्वारा आगत मानसे ज्यादा है, अतः यह तिथि भी व्रतके लिए सर्व प्रकारसे ग्राह्य है। माघनन्दि आचार्यने तिथिके लिए और भी अनेक मतोंकी समीक्षा की है, परन्तु सूक्ष्म विचारसे उन्होंने दिनमानके षष्ठांश-को ही दान, अध्ययन, व्रत और अनुष्ठानके लिए ग्राह्य बताया है।

इतीन्द्रनन्दिवचनम्; अधिकायामुक्तं नियमसारे समयभूषणे च–

अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसत्तमैः।
आदिमध्यान्तभेदेषु शक्तितश्च विधीयते ॥१॥

अर्थ—यह इन्द्रनन्दि आचार्यके वचन हैं। अधिक तिथि—तिथि-के बढ़ जानेपर नियमसार और समयभूषणमें व्यवस्था बतायी गयी है कि अधिक तिथिके होनेपर विवेकी श्रावकोंको आदि, मध्य और अन्त भेदों में—दिनोंमें शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए। यह श्लोक पहले भी आया है। सिंहनन्दि आचार्यका ही यह श्लोक है, यद्यपि इसी श्लोकके भावका श्लोक इन्द्रनन्दीका भी है। पर तिथि-व्यवस्था सिंह-नन्दीकी ही है।

तथा चोक्तं सिंहनन्दिविरचितपञ्चनमस्कारदीपिकायाम्—

शक्तिहीनं करोतु वाप्यधिकस्याधिकं फलम्।
सशक्तिके च निःशक्तिके ज्ञेयं नेदमुत्तरम् ॥१॥

अर्थ—सिंहनन्दी विरचित पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थमें भी कहा है—तिथिवृद्धि होनेपर जिसमें शक्ति नहीं है, उसको भी एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए, क्योंकि एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। जो यह प्रश्न करते हैं कि जिसमें शक्ति नहीं है, वह किस प्रकार अधिक दिन व्रत करेगा। शक्तिशालीको ही

एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। शक्तिके अभावमें एक दिन अधिक व्रत करनेका प्रश्न उठना नहीं है। आचार्य इस थोथी दलीलका खण्डन करते हैं तथा कहते हैं कि व्रत करनेवाला शक्तिशाली या शक्ति-रहित है, यह कोई उत्तर नहीं है। व्रत सभीको तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन अधिक करना चाहिए। व्रत ग्रहण करनेवाला अपनी शक्तिको देखकर ही व्रत ग्रहण करता है।

विवेचन—आचार्य सिंहनन्दीने पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रंथ लिखा है। आपने इस ग्रन्थमें तिथिवृद्धि होने पर व्रत कितने दिन करना चाहिए, इसकी व्यवस्था बतलायी है। कुछ लोग यह आशंका करते हैं कि जिसमें शक्ति है, वह तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करेगा और जिसमें शक्ति नहीं है, वह नियत अवधि पर्यन्त ही व्रत करेगा। आचार्यने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि व्रत करनेमें शक्ति, अशक्तिका प्रश्न नहीं है। अधिक दिन व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। जो शक्तिहीन हैं, उनको तो व्रत ग्रहण नहीं करना चाहिए। अपनेको शक्तिहीन समझना बहिरात्मा बनना है। आत्मामें अनन्त शक्ति है, कर्म-बन्धनके कारण आत्माकी शक्ति आच्छादित है; कर्मबन्धनके टूटते ही या शिथिल होते ही पूर्ण या अपूर्ण रूपमें शक्ति उद्‌भूत होती है।

व्रत करनेका मुख्य ध्येय यही है कि कर्मबन्धन शिथिल हो जायँ और ऐसा अवसर मिले जिससे इस कर्मबन्धनको तोड़नेमें समर्थ हो सके। व्रत करके भी अपनेको निःशक्ति समझना बहिरात्माका लक्षण है। यद्यपि जैनागम शक्तिप्रमाण व्रत करनेका आदेश देता है। यदि उपवास करनेकी शक्ति नहीं है तो एकाशन करना चाहिए। परन्तु शक्ति-प्रमाण व्रत करनेका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अपनी शक्तिको छिपाया जाय। व्रत करनेसे शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो अपनेको निःशक्ति समझते हैं, उन्हें आत्माका पक्का श्रद्धान नहीं हुआ है—भेदविज्ञानकी जागृति नहीं हुई है। भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही इस जीवको अपनी वास्तविक शक्तिका अनुभव हो जाता है।

शरीरसे मोह करनेके कारण ही यह जीव अपनेको शक्तिहीन समझता है। परन्तु जैनदर्शनमें शारीरिक शक्ति आत्माकी शक्तिसे ही अनुप्राणित बतलायी है। अतः अनन्त बलशाली आत्माको कभी भी शक्तिहीन नहीं समझना चाहिए। मैं चतुर हूँ, पण्डित हूँ, ज्ञानी हूँ आदि मानना बहिरात्मापना है। रागी, द्वेषी, लोभी, मोही, अज्ञानी, दीन, धनी, दरिद्री, सुरूप, कुरूप, बालक, कुमार, तरुण, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, काला, गोरा, मोटा, पतला, निर्बल, सबल आदि अपनेको एकान्तरूपसे समझना मिथ्यात्वका द्योतक है। जिसको शरीरमें आत्माकी भ्रान्ति हो जाती है, जो शरीरके धर्मको ही आत्माका धर्म मानता है, वह मिथ्या दृष्टि बहिरात्मा है। अतः व्रत करनेमें सर्वदा अपनेको शक्तिशाली ही समझना चाहिए।

जो लोग अपनेको शक्तिहीन कहकर व्रत करनेसे भागते हैं, वे वस्तुतः आत्मानुभूतिसे हीन हैं। रत्नत्रय आत्माका स्वरूप है, इसकी प्राप्ति व्रताचरणसे ही हो सकती है। व्रताचरण संसार और शरीरसे विरक्ति उत्पन्न करता है। मोहके कारण यह आत्मा अपने स्वरूपको भूले है; मोहके दूर होते ही स्वरूपका भान होने लगता है। शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य। यह अनादि, स्वतःसिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष है। इस आत्माको तीक्ष्ण शस्त्र काट नहीं सकते है, जलप्लावन इसे भिगा नहीं सकता। पवनकी शोषक शक्ति इसे सुखा नहीं सकती। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, अगुरुलघुत्व आदि स्वाभाविक आठ गुण इसमें वर्तमान हैं। ये गुण इस आत्माके स्वभाव है, आत्मासे अलग नहीं हो सकते। जो व्यक्ति इस मानव शरीरको प्राप्तकर आत्माकी साधना करता है, व्रतोपवास द्वारा विषय-कषायजन्य प्रवृत्तियोंको दूर करता है, वह अपने मनुष्य जीवनको सफल कर लेता है।

शरीरके नाश होने पर भी यह आत्मा इस प्रकार नष्ट नहीं होती है जैसे मकानके भीतरका आकाश जो मकानके आकारका होता है, मकानके गिरा देने पर भी मूलस्वरूपमें ज्यों-का-त्यों अविकृत रहता है।

ठीक इसी प्रकार शरीरके नाश हो जानेपर भी आत्मा ज्योंकी त्यों मूलरूपमें रहती है। इसीलिए आचार्योंने इस ज्ञान, दर्शनमय आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका साधन व्रतोपवास आदिको माना है। उपवास करनेसे इन्द्रियों-की उद्दाम शक्ति क्षीण हो जाती है, विषयकी ओर उनकी दौड़ कम हो जाती है। उपवासको आचार्योंने शरीर और आत्मशुद्धिका प्रधान साधन कहा है। प्रमाद, जो कि आत्माकी उपलब्धिमें बाधक है, उपवाससे दूर किया जा सकता है। शरीरको संतुलित रखनेमें भी उपवास बड़ा भारी सहायक है। धर्म, ध्यान, पूजापाठ और स्वाध्यायपूर्वक उपवास करनेका फल तो अद्भुत होता है। आत्माकी वास्तविक शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन व्रतको विशुद्ध करनेके लिए नित्य, नैमित्तिक सभी प्रकारके व्रत करता है। पञ्चाणुव्रतोंके द्वारा अपने आचरणको सम्यक् करता हुआ मोक्षमार्गमें अग्रसर होता है। जैनागममें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि श्रावकको सर्वदा सावधान रहते हुए आत्मशोधनमें प्रवृत्त होना चाहिए। यह गृहस्थ धर्म भी इस आत्माको संसारके बन्धनसे छुडानेमें सहायक है। यद्यपि मुनिधर्म धारण किये बिना पूर्ण स्वतन्त्रता इस जीवको नहीं प्राप्त हो सकती है, क्योंकि गृहस्थ-धर्ममें परावलम्बन अधिक रहता है। अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावका-चारमें स्पष्ट लिखा है कि समाधिमरणमें सहायक दशलक्षण आदि व्रतों-को इस जीवको अवश्य धारण करना चाहिए। व्रतोंके प्रभावसे समाधि-मरण सिद्ध होता है।

व्रततिथिके निर्णयके लिए विभिन्न मत

तथा व्रतोद्योते—

रसघटीमतं वापि मतं दशघटीप्रमम्।
विंशनाडीमतं वापि मूले दारुमतद्वये ॥१॥
मूलसङ्घे घटीषट्कं व्रतं स्याच्छुद्धिकारणम्।
काष्ठासङ्घे च षष्ठांशं तिथेः स्याच्छुद्धिकारणम् ॥२॥

पूज्यपादस्य शिष्यैश्च कथितं पट्घटीमतम् ।
ग्राह्यं सकलसङ्घेषु पारम्पर्यसमागतम् ॥३॥

अर्थ—मूल संघके आचार्योंके मतानुसार छः घटी प्रमाण तिथिका मान है। काष्ठासंघके आचार्योंके दो मत हैं—एक सिद्धान्तके आचार्य दस घटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं तथा दूसरे सिद्धान्तके आचार्य बीसघटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं। मूलसंघमें व्रतकी शुद्धि छः घटी प्रमाण तिथि होनेपर मानी है, किन्तु काष्ठासंघमें षष्ठांश प्रमाण तिथि ही व्रतशुद्धिका कारण मानी गयी है। पूज्यपादके शिष्योंने भी छः घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। इस तिथि प्रमाणको ही परम्परागत आचार्योंके मतानुसार ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—व्रततिथिके निर्णयके सम्बन्धमें अनेक मतमतान्तर हैं। मूलसंघ, काष्ठासंघ, पूज्यपाद आदि आचार्योंकी परम्पराके अनुसार व्रततिथिका मान भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिया गया है। यद्यपि व्यवहारमें मूलसंघके आचार्योंका मत ही प्रमाण माना जाता है, फिर भी विचार करनेके लिए यहाँ सभी मतोंका प्रतिपादन किया जा रहा है।

काष्ठासंघके आचार्योंमें दो प्रकारके सिद्धान्त पाये जाते हैं। कुछ आचार्य तिथिका प्रमाण षष्ठांश मात्र और कुछ तृतीयांश मात्र मानते हैं। तृतीयांश मात्र प्रमाण माननेवालोंका कथन है कि जितनी अधिक तिथि व्रतके दिन सूर्योदयकालमें होगी, उतना ही अच्छा है। क्योंकि पूर्ण तिथिका फल भी पूरा ही मिलेगा। मध्य मान तिथिका ६० घटी होता है, अतः तृतीयांशका अर्थ २० घटी मात्र है। यदि स्पष्ट तिथिका मान निकालकर तृतीयांश लिया जाय तो अधिक प्रामाणिक न होगा। परन्तु स्पष्टतिथिके मानका गणित करना होगा तभी तृतीयांश ज्ञात हो सकेगा। उदाहरण—सोमवारको सप्तमी तिथिका मान पञ्चांगमें १५ घटी २५ पल अंकित है और मंगलवारको अष्टमी १० घटी ४० पल अंकित की गयी है। कुल अष्टमीका प्रमाण निम्न प्रकार हुआ—

(अहोरात्र प्रमाण—पञ्चांग अंकित पूर्वतिथि—सप्तमी)=अनंकित

व्रततिथि=अष्टमीका प्रमाण=(६०।०) – (१५।२५)=४४।३५ अनंकित व्रततिथि अष्टमी (अनंकित व्रततिथि + पञ्चांग अंकित व्रततिथि)= (४४।३५) + (१०।४०)=समस्त व्रततिथि=५५।१५ इसका तृतीयांश निकाला तो—५५।१५ ÷ ३=१८।२५ अर्थात् १८ घटी २५ पल तृतीयांश प्रमाण आया। यदि अष्टमी सूर्योदय कालमें १८ घटी २५ पलके तुल्य हो या इससे अधिक हो तभी काष्ठासंघके द्वितीय मतके अनुसार ग्राह्य हो सकती है। प्रस्तुत उदाहरण में १० घटी ४० पल ही है, अतः व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती है। व्रत करनेवालेको सोमवारके दिन ही इस सिद्धान्तके अनुसार व्रत करना पड़ेगा।

तृतीयांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी आलोचना

मध्यममान या स्पष्टमानसे समस्त तिथिका तृतीयांश व्रतके लिए प्रमाण मानना उचित नहीं जँचता है। क्योंकि उदयकालमें तृतीयांशमात्र शायद ही कभी तिथि मिलेगी, ऐसी अवस्थामें व्रत सदा अनंकित तिथिमें ही करना पड़ेगा। मध्यममानकी अपेक्षा २० घटी प्रमाण उदय तिथिका मान आवेगा और स्पष्टमानकी अपेक्षासे कभी २० घटीसे अधिक २२ घटीके लगभग हो सकता है और कभी २० घटीसे न्यून भी प्रमाण रहेगा। ऐसी अवस्थामें उदयकालमें उक्त प्रमाण तुल्य व्रतके लिए तिथि मिलना सम्भव नहीं होगा। वर्षमें दो-चार बार ही ऐसी स्थिति आवेगी, जब २० घटी प्रमाण या इसके लगभग तिथि मिल सकेगी, अतः अधिकांश व्रतोंमें उदयकालीन तिथिको छोड़ अस्तकालीन तिथि ही ग्रहण करनी पड़ेगी।

दूसरी आपत्ति तृतीयांश मात्र व्रततिथि माननेमें यह भी आती है कि प्रोषधोपवास करनेवालेका प्रत्येक पर्व सम्बन्धी प्रोषधोपवास कभी भी यथासमयपर नहीं होगा। क्योंकि प्रोषधोपवासके लिए एकाशनकी तिथिका विधान है, उपवासके लिए भी निश्चित तिथि होनी चाहिए तथा

पारणाके लिए भी विहित तिथिका होना आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। सोमवारको त्रयोदशी ८ घटी २० पल है, मंगलको चतुर्दशी ७ घटी ५० पल है और बुधवार को पूर्णिमा ६ घटी ३० पल है। इस प्रकारकी तिथि व्यवस्था होनेपर क्या चतुर्दशीका प्रोषधोपवास मंगलवारको किया जा सकेगा और पूर्णिमाको पारणा हो सकेगी ?

प्रत्येक तिथिका तृतीयांश प्रमाण निकालनेके लिए गणित क्रिया की। रविवारको द्वादशी १२ घटी ४० पल है। अतः (अहोरात्र—एकाशनके पूर्वकी तिथि) = (६०।०)—(१२।४०) = ४७।२० अनंकित त्रयोदशी तिथि, (अनंकित तिथि + अंकित तिथि) = (४७।२०) + (८।२०) = ५५।४० त्रयोदशी, इसका तृतीयांश = ५५।४० ÷ ३ = १८।३३।२० घट्यादि मान त्रयोदशीका।

(अहोरात्र—व्रतके पूर्वकी तिथि) = (६०।०) – (८।२०) = ५१।४० अनंकित चतुर्दशी (अनंकित+अंकित चतुर्दशी)=(५१।४०)+ (७।५०) = ५९।३० समस्त चतुर्दशी, इसका तृतीयांश ५९।३० – ३= १९।५० चतुर्दशीका तृतीयांश।

(अहोरात्र—व्रततिथि) = (६०।०) – (७।५०) = ५२।१० अनंकित व्रतके बादकी पारणा तिथि ; (अनंकित पारणा + अंकित पारणा) = (५२।१०) + (६।३०) = ५८।४०, इसका तृतीयांश ५८।४० ÷ ३ = १९।३३।२० घट्यादि पूर्णिमाका।

प्रस्तुत उदाहरणमें एकाशनकी त्रयोदशी तिथि सोमवार को ८ घटी २० पल है, स्पष्टमानपरसे तृतीयांशका प्रमाण १८।३३।२० घट्यादि आया है। एकाशनकी तिथिका प्रमाण तृतीयांशके प्रमाणसे अल्प है, अतः सोमवारको एकाशन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस दिन त्रयोदशी तिथि है ही नहीं। यदि रविवारको एकाशन किया जाता है, तो उदय कालमें १२ घटी ४० पल तक द्वादशी तिथि भी रहती है, अतः धर्मध्यान, सामायिक आदि क्रियाएँ, जिनका सम्बन्ध प्रोषधोपवाससे है, त्रयोदशीमें सम्पन्न नहीं हो सकेंगी।

चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना है, यह भी मंगलवारको ७ घटी ५० पल प्रमाण है। गणितसे चतुर्दशीका तृतीयांश १९।५० घट्यादि आया है, अतः मंगलको उपवास नहीं किया जा सकता, उपवास सोमवारको करना पड़ेगा। इसी प्रकार पारणा भी मंगलवारको करनी होगी। उपवास और पारणाकी क्रियाएँ सम्पन्न करनेकी तिथियोंमें व्यतिक्रम हो जाता है, जिससे नियमित समयपर धार्मिक क्रियाएँ नहीं हो सकेंगी।

तीसरा दोष तृतीयांश प्रमाण तिथि माननेसे यह आता है कि स्पष्टमानके अनुसार तिथिका तृतीयांश लेनेपर एकाशनकी तिथिके अनन्तर एक दिन बीचमें योंहीं खाली रह जायगा तथा उपवासकी तिथि एक दिन बाद ही पड़ेगी। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। त्रयोदशी बुधवारको १५।१२ है, गुरुवारको चतुर्दशी १६ घटी १० पल है। और शुक्रवारको पूर्णिमा १७ घटी १५ पल है। ऐसी अवस्थामें मंगलवारको त्रयोदशीका एकाशन करना पड़ेगा, बुधवारको यों ही रहना पड़ेगा, तथा गुरुवारको चतुर्दशीका उपवास करना पड़ेगा तथा शुक्रवारको पारणा। यह प्रोषधोपवास यथार्थ प्रोषधोपवास नहीं कहलाएगा। विधिमें भी व्यतिक्रम हो जायगा, अतः तृतीयांश प्रमाण तिथिको स्वीकार कर व्रत करना उचित नहीं है।

सामान्यतः तृतीयांश मान तिथिका ग्रहण किया जाय तो ठीक है, पर उदयकालमें तृतीयांश प्रमाण मानना उचित नहीं जँचता है। इस प्रमाणमें अनेक दोष आते हैं, तथा व्रत करनेमें व्यतिक्रम भी होता है।

दशघटी प्रमाण भी तिथिका मान काष्ठासंघके कुछ आचार्य मानते हैं। उनका कथन है कि समस्त तिथिका षष्ठांश व्रतके लिए ग्राह्य है। यदि उदयकालमें कोई भी तिथि अपने प्रमाणके षष्ठांश भी हो तो उसे व्रतके लिए विहित माना गया है। दान, अध्ययन, उपवास और अनुष्ठान इन चारों कार्योंके लिए षष्ठांश प्रमाण तिथिके अतिरिक्त विधेय वस्तुओंका मान भी षष्ठांश ही कहा है। अर्थात् दान उपार्जित सम्पत्तिका षष्ठांश

देना चाहिए। अध्ययन समस्त अहोरात्र प्रमाणका षष्ठांशमात्र समय अध्ययन–स्वाध्यायमें अवश्य लगाना चाहिए। उपवासके लिए भी विहित तिथिका समस्त तिथिके षष्ठांश प्रमाण होना आवश्यक है। अनुष्ठानमें— विधान, प्रतिष्ठा, मन्त्रसिद्धि आदिमें संचित सम्पत्तिका षष्ठांश खर्च करना चाहिए तथा अपने समयके छठवें भागको शुभोपयोगमें बिताना आवश्यक है। अतएव काष्ठासंघके आचार्योंने व्रतके लिए विहित तिथिका उदयकालमें दस घटी प्रमाण माननेके लिए ज़ोर दिया है। इससे कम प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत नहीं किये जा सकते हैं। यद्यपि स्पष्ट तिथिके प्रमाणानुसार दस घटीसे हीनाधिक भी प्रमाण व्रततिथिका हो सकता है, परन्तु ऐसी स्थिति बहुत ही कम स्थलोंमें आती है। उदाहरण— सोमवारको त्रयोदशी ४० घटी १५ पल है और मंगलवारको चतुर्दशी २४ घटी ३० पल है। अतः मंगलको चतुर्दशीका षष्ठांश कितना हुआ, इसके लिए गणित क्रिया की—(६०।०)—(४०।१५) = १९।४५। (१९।४५)+(२४।३०)=५४।१५ समस्त चतुर्दशी, इसका षष्ठांश ५४।१५ – ६=९।२।३० मंगलवारको चतुर्दशी यदि उदयकालमें ९ घटी २ पल ३० विपल हो तो यह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मानी जायगी।

षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमें तिथि माननेवाले मतकी समीक्षा

काष्ठासंघका षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि मानना तृतीयांश प्रमाण माने गये व्रतकी अपेक्षासे उत्तम है। यह व्यावहारिक दृष्टिसे भी ग्राह्य हो सकता है। इसमें व्रतविधिमें व्यतिक्रमकी गुंजाइश भी नहीं है। यद्यपि छः घटी प्रमाण व्रत तिथिको मान लेनेपर, सभी व्रत सम्बन्धी विधान निश्चित तिथिमें हो जाते हैं। किसी भी प्रकारकी बाधा षष्ठांश तिथिमानमें उपस्थित नहीं होती है। परन्तु सब प्रकारसे ठीक होनेपर भी एक बाधा इस तिथिको स्वीकार कर लेनेपर आ ही जाती है और वह है मानाधिक्य होनेसे सर्वदा अंकित तिथियोंमें व्रत नहीं किया

जा सकेगा। एकाधबार ऐसा भी समय आ सकेगा, जब उदयकालीन तिथियोंको छोड़कर अस्तकालीन तिथियोंको ग्रहण करना पड़ेगा।

वास्तवमें व्रतका फल तभी मिलता है, जब सूर्योदयकालमें विधेय तिथि कम-से-कम दो घटी सामायिक, प्रतिक्रमण और आलोचनाके लिए तथा तीन घटी प्रमाण पूजाके लिए और एक घटी प्रमाण आत्मचिन्तनके लिए और उपवास सम्बन्धी नियम ग्रहण करनेके लिए रहे। मूल संघके आचार्योंने इसी कारण छः घटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है। दसघटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माननेमें सिर्फ दो युक्तियाँ हैं—प्रथम "षष्ठांशमपि ग्राह्यं दानाध्ययनकर्मणि" यह आगम वाक्य है। इसके अनुसार दान-पूजा-पाठ आदिके लिए षष्ठांश तिथि ग्रहण करनी चाहिए। दूसरी युक्ति जो कि अधिक बुद्धिसंगत प्रतीत होती है, वह है सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ, स्वाध्याय और आत्म-चिन्तनके लिए दो-दो घटी समय निर्धारित करना। व्रत करनेवाले श्रावकको व्रतके दिन प्रातःकाल दो घटी सामायिक, दो घटी प्रतिक्रमण, दो घटी पूजापाठ, दो घटी स्वाध्याय और दो घटी आत्मचिन्तन करना चाहिए। अतः जो विधेय तिथि व्रतके दिन कम-से-कम दस घटी नहीं है, उनमें धार्मिक क्रियाएँ यथार्थ रूपसे सम्पन्न नहीं की जा सकती हैं। अतएव दस घटी या इससे अधिक प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य मानना चाहिए।

छः घटी प्रमाण मूलसंघ और पूज्यपादकी शिष्यपरम्परा व्रततिथि-का मान स्वीकार करती हैं। इसकी उपपत्ति दो प्रकारसे देखनेको मिलती है। कुछ लोग कहते हैं कि तिथिकी चार अवस्थाएँ होती हैं, बाल, किशोर, युवा और वृद्ध। उदयकालमें पाँच घटी प्रमाण तिथि बालसंज्ञक मानी जाती है, पाँच घटीके उपरान्त दस घटी तक किशोर संज्ञक और दस घटीसे लेकर बीस घटी तक युवा संज्ञक तथा अवशिष्ट तिथि वृद्ध संज्ञक कही गयी है। युवा संज्ञक तिथिके कुछ लोगोंने दो-भेद किये हैं—पूर्व युवा और उत्तर युवा। दिनमान पर्यन्त पूर्ण युवा

और दिनमानके पश्चात् उत्तर युवासंज्ञक तिथियाँ बतायी गयी हैं। इस परिभाषाके प्रकाशमें देखनेपर अवगत होता है कि सूर्योदय कालमें पाँच घटी तकका समय बालसंज्ञक है, इसके पश्चात् किशोरसंज्ञक काल आता हैं। बालसंज्ञक समयमें तिथि निर्बल मानी जाती है तथा किशोरसंज्ञामें तिथि बली समझी जाती है। इसी कारण तिथिका प्रमाण छः घटी माना गया है। व्रत समयमें तिथि बालसंज्ञाको छोड़ किशोर अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। तिथिका समस्त सार और शक्ति किशोर अवस्थामें प्रादुर्भूत होती है। रसघटी प्रमाणतिथिका मान मान लेनेमें दूसरी युक्ति यह है कि तिथिका शक्तिशाली काल धर्मध्यान और आत्मचिन्तनमें बितानेका विधान चार घटी सूर्योदयके उपरान्त किया गया है, जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि तिथि-तत्त्वको अवगत कर ही आचार्योंने, यह विधान किया है।

व्रतके आदि-मध्य-अन्तमें तिथिहानि होनेपर अभ्रदेवका मत

आदिमध्यावसानेषु हीयते तिथिसत्तमा।
आदौ व्रतविधिः कार्यः प्रोक्तं श्रीमुनिपुङ्गवैः॥१॥

अर्थ—अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें व्रतके प्रारम्भ, मध्य और अन्तमें तिथिके घट जानेपर व्यवस्था बतलायी है कि—यदि आदि, मध्य और अन्तमें नियत अवधिवाले व्रतोंकी तिथियोंमेंसे कोई तिथि घट जाय तो व्रत करनेवाले व्रती श्रावकोंको एक दिन पहलेसे व्रतको करना चाहिए। ऐसा श्रेष्ठ मुनियोंने कहा है।

विवेचन—यद्यपि तिथिह्रास और तिथि-वृद्धिके होनेपर किस व्रतको कबसे करना चाहिए तथा किस-किस व्रतको एक दिन अधिक करना चाहिए और किसको नहीं। तिथि-वृद्धि और तिथिह्रासका प्रभाव किन-किन व्रतोंपर नहीं पड़ता है, यह भी पहले विस्तारसे लिखा जा चुका है। यहाँपर आचार्यने अभ्रदेवका मत उद्धृत कर यह बतलानेका प्रयत्न

किया है कि जैनमान्यतामें नियत अवधिवाले कुछ व्रतोंके लिए चान्द्र तिथियाँ ग्रहण नहीं की गयी हैं, बल्कि सावन दिन मान कर ही व्रत किये जानेका विधान है। जो व्रत केवल एक दिनके लिए ही रखे जाते हैं, उनमें चान्द्रतिथिका ही विचार ग्रहण किया जाता है। षोडश कारण व्रतमें भी चान्द्रमास और चान्द्र तिथिका ही ग्रहण किया गया है, अतः यह तिथिह्रास होनेपर भी व्रत एक दिन पहलेसे नहीं किया जाता है। मेघमाला व्रतको सावन दिनोंके अनुसार किया ही जाता है, इस व्रतके लिए चान्द्र तिथियोंका विधान भी नहीं है, प्रत्युत सावन दिन ही ग्रहण किये गये हैं। इसी कारण यह किसी ख़ास निश्चित तिथिको नहीं किया जाता है। यद्यपि कुछ आचार्योंने श्रावणमासकी कृष्णा प्रतिपदासे इस व्रतके करनेका आदेश दिया है, परन्तु है यह सावन व्रत ही। इसी कारण इसमें सावन दिनोंका ग्रहण किया गया है। एकावली, द्विकावली व्रत भी सावन ही हैं, इनके करनेके लिए भी चान्द्र तिथियोंका कोई निश्चित विधान नहीं है। यद्यपि उक्त दोनों व्रतोंमें उपवास करनेकी तिथियाँ निश्चित हैं, फिर भी इन्हें चान्द्र दिन सम्बन्धी व्रत मानना उपयुक्त नहीं जँचता है। इन दोनों व्रतोंको सौर दिन सम्बन्धी व्रत माना जाय, तो अधिक उपयुक्त हो सकता है।

तिथि घटनेका प्रभाव सबसे अधिक दशलाक्षणी, रत्नत्रय और अष्टाह्निका इन तीनों व्रतोंपर पड़ता है। क्योंकि ये तीनों व्रत निश्चित अवधिवाले होते हुए भी सौर और चान्द्र दोनों ही प्रकारके दिनोंसे सम्बन्ध रखते हैं। व्रतारम्भके दिन तिथिसंख्या यथार्थ होनेपर चान्द्र तिथि ग्रहण की जाती है। तात्पर्य यह है कि उदयकालमें कमसे कम छः घटी प्रमाण पञ्चमी तिथिके होनेपर दशलक्षण व्रत आरम्भ किया जाता है, तथा समाप्ति चतुर्दशीको। यदि आदि, मध्य और अन्तमें तिथि-हानि हो तो एक दिन पहले अर्थात् चतुर्थीसे ही व्रत प्रारम्भ कर दिया जाता है। समाप्ति सर्वदा चतुर्दशीको ही की जाती है। अष्टाह्निका व्रतमें भी यही बात है, यह व्रत भी आदि, मध्य और अन्तमें तिथिकी हानि

होनेपर एक दिनप हलेसे प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस व्रतकी *समाप्ति पूर्णिमाको होती है। रत्नत्रय व्रतको भी तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे करना चाहिए। इन सब व्रतोंको तिथिक्षय होनेपर* एक दिन पहलेसे करते हैं, किन्तु तिथि-वृद्धि होनेपर एक दिन और अधिक करते हैं। व्रत तिथियोंके आदि, मध्य और अन्तमे तिथिकी वृद्धि हो जानेपर नियत अवधि तक ही व्रत नहीं किया जाता। बल्कि एक दिन अधिक व्रत किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वरोंका मत

आदिमध्यान्तभेदेषु विधिर्यदि विधीयते ।
तिथिह्रासे समुद्दिष्टं गौतमादिगणेश्वरैः ॥ २ ॥

अर्थ—आदि, मध्य और अन्तमें यदि तिथिक्षय हो तो गौतमादि मुनीश्वरोंका कथन है कि एक दिन पहलेसे व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए।

विवेचन—जैनाचार्योंने तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंको कितने दिनतक करना चाहिए, इसका विस्तार सहित विचार किया है। श्री गौतमगणधर तथा श्रुतज्ञानके पारगामी अन्य आचार्योंने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा है कि तिथिह्रास होनेपर भी व्रतको अपनी निश्चित दिनसंख्यातक करना चाहिए। मध्यमे अथवा आदि, अन्तमें तिथिक्षय हो तो एक दिन आगेसे व्रतका निश्चित दिनोंतक पालन करना चाहिए। दशलक्षण, रत्नत्रय और अष्टाह्निका ये तीनों व्रत अपनी निश्चित दिन संख्यातक किये जाते हैं। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमेंसे प्रत्येक दिन एक-एक धर्मके स्वरूपको मनन किया जाता है। तिथि-ह्रासके कारण यदि एक दिन कम व्रत किया जाय तो एक धर्मके स्वरूपके मननका अभाव हो जायगा, जिससे समग्रव्रतका फल नहीं मिल सकेगा। जैनाचार्योंने तिथिह्रास होनेपर विभिन्न व्रतोंके लिए विभिन्न व्यवस्था बतलायी है।

कुन्दकुन्द, पूज्यपाद, जिनसेन, अभ्रदेव, सिंहनन्दी, दामोदर आदि आचार्योंने दशलक्षण और अष्टाह्निका व्रतके लिए मध्य, अन्त या आदिमें तिथिक्षय होनेपर एक मतसे स्वीकार किया है कि एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। गौतमगणधर आदि प्राचीन आचार्योंसे भी उक्त मतही समर्थित है। सिंहनन्दि आचार्यने तिथिक्षयकी व्यवस्था करते हुए कहा है कि प्रत्येक तिथिमें पाँच मुहूर्त्त पाये जाते है—आनन्द, सिद्ध, काल, क्षय और अमृत। इन पाँच मुहूर्त्तोंमें तिथिक्षयकी अवस्थामें अर्थात् उदयकालमें तिथिके न मिलनेपर तिथिमें तीन मुहूर्त्त रहते हैं—काल, आनन्द और अमृत। तिथि-क्षयवाला दिन अशुभ इसीलिए माना गया है कि इसमें प्रातःकाल छः घटीतक काल मुहूर्त्त रहता है, जो समस्त कार्योंको बिगाड़नेवाला होता है। उदयकालमे छः घटी प्रमाण तिथिके होनेपर प्रथम आनन्द मुहूर्त्त आता है, तथा छः घटीके उपरान्त बारह घटीतक सिद्ध मुहूर्त्त रहता है जिससे इसमें किये गये सभी कार्य सफल होते है। व्रतोपवास और धर्मध्यानकी क्रियाएँ भी सफल होती हैं, क्योंकि आनन्द और सिद्धमुहूर्त्त अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं। मूलसंघके आचार्योंने इसी कारण व्रततिथिका प्रमाण छःघटी माना है। काष्ठासंघमें व्रततिथिका प्रमाण समस्त तिथिका षष्ठांश माना गया है, वह भी इसी कारण युक्तिसंगत है कि सिद्ध मुहूर्त्ततक काष्ठासंघके आचार्योंने तिथिको ग्रहण किया है। जो बीसघटी प्रमाण व्रततिथिका मान मानते हैं, उनका मत सदोष प्रतीत होता है, क्योंकि काल और क्षयमुहूर्त्त, जो कि अपने नामके समान ही फल देते है, उनके द्वारा मानी हुई तिथिके अन्तमें विद्यमान रहते हैं। तिथि-क्षयके दिन सबसे प्रथम काल मुहूर्त्त आता है, जो यथानाम तथा गुणवाला होता हुआ अमंगलकारक होता है। परन्तु तिथि-क्षयके दिन मध्याह्नके उपरान्त काल मुहूर्त्तका प्रभाव घट जाता है और आनन्द तथा अमृत मुहूर्त्त अपना फल देने लगते हैं। आचार्योंने एक दिन पहले जो व्रत करनेकी विधि बतलायी है, उसका अर्थ यह है कि पहले दिनवाली तिथिका

अन्तिम मुहूर्त, जो कि अमृत संज्ञक कहा गया है, व्रत तिथिके दिनके लिए फलदायक हो जाता है।

व्रततिथिकी व्यवस्था

अवाप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं मुहूर्त्तत्रयवाहिनी च।
धर्मेषु कार्येषु वदन्ति पूर्णां तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीशाः॥

व्याख्याः—यां तिथिम् अवाप्य प्राप्य सूर्योऽस्तं याति, अस्तमुपगच्छति। कथम्भूतां तिथिं प्रातर्मुहूर्त्तत्रयव्यापिनीम्; चकारात् मूलसंघरताः व्रतज्ञानधरा मुनीश्वराः, उदयव्यापिनीमपि तिथिं गृह्णन्ति। यथा पूर्वमुदयकालव्यापिनी तिथिर्ग्रहीता, चकारात् अस्तकालव्यापिन्याः तिथेरपि ग्रहणं भविष्यति तथैवात्रापि अवधेयम्। तां पूर्वोक्तां तिथिम् अखिलेषु धर्मेषु कार्येषु गौतमादिगणेश्वराः पूर्णां वदन्ति॥

अर्थ—प्रातःकालमें तीन मुहूर्त्त रहनेवाली जिस तिथिको प्राप्तकर सूर्य अस्त होता है, धर्मादि कार्योंमें वह तिथि पूर्ण मानी जाती है, इस प्रकारका कथन व्रत धारण करनेवाले मुनीश्वरोंका है। इस श्लोकमें 'च' शब्द आया है, जिसका अर्थ यह है कि सूर्योदयके पूर्व तीन मुहूर्त्त रहनेवाली तिथि भी नैमिक व्रतोंके लिए ग्राह्य है। तात्पर्य यह है कि इस श्लोकके अनुसार व्रत तिथिका ज्ञान दोनों प्रकारसे ग्रहण किया गया है—उदय और अस्तकालमें रहनेवाली तिथिके अनुसार। उदयकालके उपरान्त कम-से-कम तीन मुहूर्त्त—५ घटी ३६ पल प्रमाण विधेय तिथिके रहने पर ही व्रत ग्राह्य माना जाता है। इसी प्रकार व्रतवाली तिथिके सूर्योदयके पहले तक रहनेपर भी नैमिक व्रतोंके लिए तिथि ग्राह्य मान ली गयी है।

विवेचन—व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए इस श्लोकमें तिथिका विधान किया गया है। यद्यपि सामान्यतः व्रतके लिए कितनी तिथि ग्राह्य होती है, इसका विचार पहले खूब किया जा चुका है। इस समय व्रत ग्रहण और उद्यापनके लिए कितनी तिथि ग्रहण करनी चाहिए,

आचार्य विधान बतलाते हैं। व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए दैवसिक और नैशिक व्रतोंके निमित्त पृथक् पृथक् तिथिका विधान बतलाते हैं। प्रथम नियम तो यह है कि सूर्योदय कालके उपरान्त ढाई घण्टे तक व्रतकी विधेय तिथि हो तो व्रतका प्रारम्भ और उद्यापन करना चाहिए। किन्तु यह नियम दैवसिक व्रतोंके लिए ही है, नैशिक व्रतोंके लिए नहीं। नैशिक व्रतोंका यह है कि सूर्योदयके पूर्व जो तिथि ढाई घण्टे रही हो, वही ग्राह्य हो सकती है। उदाहरण—भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी बुधवारको प्रातःकाल १०।१५ घट्यादि है और भाद्रपद चतुर्थी मंगलवारको १८।१० घट्यादि है। अब विचारणीय यह है कि दैवसिक व्रतोंके लिए किस दिन पञ्चमी मानी जायगी और नैशिक व्रतोंके लिए किस दिन। बुधवारको १०।१५ घट्यादि मान पञ्चमीका है, इस दिन सूर्य पञ्चमीके इस मानके साथ अस्त होता है अतः दैवसिक व्रतोंके लिए बुधवारको ही पञ्चमी ग्राह्य होगी।

नैशिक व्रतोंके लिए मंगलवारकी पंचमी ग्राह्य नहीं हो सकती है। क्योंकि मंगलवारको उदयके पूर्व पञ्चमी नहीं रहती है; किन्तु सोमवारको उदयके पश्चात् और मंगलवारको उदयके पूर्व ही पञ्चमी रहती है। अतः नैशिक व्रतोंके लिए पञ्चमी सोमवारकी ग्रहण की जायगी। मूलसंघके आचार्योंने उदयमें रहनेवाली छःघटी प्रमाण या इससे अधिक तिथिको दैवसिक और नैशिक दोनों ही प्रकारके व्रतोंके लिए ग्राह्य मान लिया है। इस प्रकारसे एक ही प्रकारका तिथिमान स्वीकार कर लेनेसे पूर्वापर विरोध नहीं आता है तथा तिथि भी व्रतके लिए सब प्रकारसे ग्राह्य मान ली जाती है।

तथा चोक्तं षष्ठांशोपरि कर्णामृतपुराणे सप्तमस्कन्धे-
"यथोक्तविधिना तिथ्युदये व्रतविधिं चरेत्"।
अखण्डवर्त्तिमार्त्तण्डः यद्यखण्डा तिथिर्भवेत्।
व्रतप्रारम्भणं तस्यामनस्तगुरुशुक्रयुत्॥

अर्थ—कर्णामृतपुराणके सप्तम स्कन्धमें भी कहा गया है कि षष्ठांश

मात्र तिथिका प्रमाण व्रतके लिए मानना चाहिए। व्रतकी तिथिके दिन कही हुई व्रतविधिके अनुसार व्रतका आचरण करना चाहिए।

जिस दिन सूर्योदयकालमें तिथि षष्ठांशमात्र हो अथवा समस्त दिन तिथि रहे, उस दिन वह तिथि अखण्डा—सकला कहलाती है। इस सकला तिथिको गुरु और शुक्रके उदय रहते हुए व्रतको ग्रहण करनेकी क्रिया करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि व्रत ग्रहण करने और उद्यापन करनेके समय गुरु और शुक्रका अस्त रहना उचित नहीं है। इन दोनों ग्रहोंके उदित रहनेपर ही व्रतोंका ग्रहण और उद्यापन किया जाता है।

विवेचन—अपनी-अपनी गतिसे चलनेवाले ग्रह जब सूर्यके निकट पहुँचते हैं, तो *लोगोंकी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, इसीका नाम ग्रहोंका* अस्त होना कहलाता है। जब वे ही ग्रह अपनी-अपनी गतिसे चलते हुए सूर्यसे दूर निकल जाते हैं, तो लोगोंको दिखलायी पड़ने लगते हैं, यही ग्रहोंका उदय होना कहलाता है। वास्तवमें ग्रह न उदय होते हैं और न अस्त। केवल सूर्यके प्रकाशसे आच्छादित हो जाते हैं तथा सूर्यसे आगे-पीछे होनेपर दृश्य होते हैं।

मंगल, गुरु और शनि सूर्यसे अल्प गतिवाले हैं, अतः अस्त होनेपर सूर्य ही इनसे आगे निकल जाता है। बुध सूर्यसे तेज गतिवाला है, अतः यह अस्त होनेपर सूर्यसे आगे निकल जाता है। यद्यपि मध्यम रवि, शुक्र और बुध तुल्य ही होते हैं, फिर भी स्पष्ट रवि और स्पष्ट बुध शीघ्र फलान्तरके तुल्य आगे-पीछे रहते हैं। जब दोनों एकत्रित हो जाते हैं, तो बुध अस्त माना जाता है। बुधके पूर्व दिशामें अस्त होनेके बाद ३२ दिनमें पश्चिममें उदय, पश्चिमोदयसे ३२ दिनमें वक्री, वक्र होनेसे ३ दिनमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे १६ दिनमें पूर्व दिशामें उदय, उदयसे ३ दिनमें मार्ग, मार्गसे ३२ दिनमें पूर्वमें ही अस्त होता है। शुक्रका पूर्वास्तसे २ मासमें पश्चिमोदय, उसके बाद ८ मासमें वक्र, वक्रसे २२।३० दिनमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे साढ़े सात दिनमें पूर्वदिशामें उदय, उदयसे पौन-मासमें मार्ग, मार्गसे ८ महीनेमें फिर पूर्वमें अस्त होता है।

मंगलका अस्तके बाद ४ मासमें उदय, उदयसे १० मासमें वक्र, वक्रसे २ मासमें मार्ग, मार्गसे १० मासमें फिर अस्त होता है। बृहस्पतिका अस्तसे १ मासमें उदय, उदयसे सवाचार मासमें वक्र, वक्रसे ४ मासमें मार्ग, मार्गसे सवाचार मासमें अस्त होता है। शनिके अस्तसे सवामासमें उदय, उदयसे साढ़ेतीन मासमें वक्र, वक्रसे साढ़े चार मासमें मार्ग, मार्गसे साढ़े तीनमासमें फिर अस्त होता है। इस प्रकार उदय-अस्तकी परिपाटी चलती रहती है। आचार्यने बताया है कि शुक्र और गुरुके अस्त होनेपर उद्यापन और व्रत ग्रहण करना वर्ज्य है। दशलक्षण, षोडशकारण, रत्नत्रय, मेरुपंक्ति, एकावली, द्विकावली, मुक्तावली आदि व्रतोंके ग्रहण करनेके लिए यह आवश्यक है कि गुरु और शुक्र उदित अवस्थामें रहें। इनके अस्त रहनेपर शुभ-कृत्य करना वर्जित है।

गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर प्रतिष्ठा, मन्दिर-निर्माण, विधान, विवाह, यज्ञोपवीत आदि कार्य भी नहीं किये जाते हैं। गणितसे शुक्रास्त और गुरु अस्तका प्रमाण केन्द्रांश बनाकर निकाला जाता है। इन दोनों ग्रहोंके अस्त होनेपर शुभ कृत्य वर्ज्य माने गये हैं। शेष ग्रहोंके अस्तकालमें शुभ कृत्य सम्पन्न किये जाते हैं। आरम्भसिद्धि नामक ग्रन्थमें उदयप्रभसूरिने शुक्र और गुरुके उदय होनेपर भी उनका बाल्यकाल माना है। इस बाल्यकालमें भी शुभ कृत्योंके करनेका निषेध किया गया है। अस्त होनेके पूर्व इनकी वृद्धावस्थाका काल भी माना गया है, जिस कालमें सभी कृत्य करना वर्ज्य माना है। "**गुरुशुक्रयोरुभयोरपि दिशोरुदयेऽस्ते च बाल्यं वार्द्धक्यं च सप्ताहमेवाहुः। अनयोः बाल्ये वार्धक्ये च सति शुभकार्यं न करणीयम्**" अर्थात् उदय हो जानेपर भी गुरु और शुक्रका बाल्यकाल एक सप्ताह माना गया है। इस कालमें शुभ कृत्य करनेका निषेध किया गया है।

कुछ आचार्योंने शुक्रका पूर्व दिशामें पाँच दिन तक वार्धक्य काल[1]

---

१. जीर्णः शुक्रोऽहानि पञ्च प्रतीच्यां प्राच्यां बालस्त्रीण्यहानीह हेयः।
त्रिघ्नान्येव तानि दिग्वैपरीत्ये, पक्ष जीवोऽन्ये तु सप्ताहमाहुः॥
—आरम्भसि० पृ० २००

माना है तथा तीन दिन बाल्यकाल स्वीकार किया है। ये दोनों ही काल शुभ कार्योंके लिए त्याज्य हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पूर्वमें उदय होनेपर शुक्रका बाल्यकाल तीन दिन और पश्चिममें उदय होनेपर नौ दिन बाल्य-काल रहता है। पूर्वमें शुक्र अस्त होनेपर पन्द्रह दिन वार्धक्य काल और पश्चिममें अस्त होनेपर पाँच दिन वार्धक्यकाल होता है। गुरुका भी तीन दिन बाल्यकाल और पाँच दिन वार्धक्य काल होता है। बाल्य और वार्धक्य कालमें शुभ कृत्योंका करना त्याज्य माना है।

ज्योतिषमें प्रत्येक शुभ कार्यके लिए शुक्र और गुरुका बल, चन्द्रशुद्धि और सूर्य शुद्धि ग्रहण की जाती है। इन ग्रहोंके बलके बिना शुभ कार्यों-का करना त्याज्य माना है। चन्द्रशुद्धिसे तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारकी शुद्धि अभिप्रेत है तथा विशेष रूपसे चन्द्र राशिका विचार कर उसके शुभाशुभत्वके अनुसार फलको ग्रहण करना है। चन्द्र शुद्धि प्रत्येक कार्यमें ली जाती है। तिथ्यादिकी शुद्धि लेना तथा उसके बला-बलत्वका विचार करना एवं सूक्ष्म विचारके लिए मुहूर्त मानके आधार-पर शुभाशुभत्वका ग्रहण करना चन्द्र शुद्धिसे अभिप्रेत है। यात्रा, विवाह, उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि समस्त कार्योंके लिए चन्द्र-शुद्धिका विचार करना आवश्यक है।

सूर्य शुद्धि भी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण माङ्गलिक कार्योंमें ग्रहण की गयी है। यद्यपि चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है फिर भी छोटे-बड़े सभी कार्योंमें इसके अनुकूलत्व और प्रतिकूलत्वका विचार नहीं किया गया है। सूर्य-शुद्धिमें सूर्यकी राशिका शुभाशुभत्व तथा चान्द्र-मास और चान्द्रतिथिपर पड़नेवाले सूर्यके प्रभावका विचार किया जाता है।

गुरु और शुक्रकी शुद्धि तो देखी ही जाती है, पर विशेषतः इनके बलाबलत्वका विचार किया जाता है। शुक्रकी अपेक्षा गुरुकी शुद्धि अधिक माङ्गलिक कार्योंके लिए ग्रहण की गयी है। जब तक गुरु अनुकूल नहीं होता है तब तक विवाह, प्रतिष्ठा, उपनयन एवं व्रत ग्रहण आदि कार्य

सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, अतः व्रतके लिए गुरु और शुक्रके अस्तका विचार करना आवश्यक है।

प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके व्रतकी व्यवस्था

तिथेः षष्ठांशोऽपि व्रतकरनरैः सादरमतः,
व्रतश्शुद्धोद्दर्थे सततमुदये विद्यत यतः।
विहायेन्दुं पूर्णं करनिकरविध्वस्ततिमिरं,
द्वितीयेन्दुः सर्वैः कनकनिचयाभोऽपि नमितः॥

अर्थ—व्रत करनेवाले नम्रीभूत श्रावकको सर्वदा व्रतकी शुद्धिके लिए उदय कालमें रहनेवाली षष्ठांश प्रमाण तिथिको ग्रहण करना चाहिए। अपनी किरणोंके समुदायसे अन्धकारको दूर करनेवाले पूर्ण चन्द्रमाको छोड अर्थात् प्रतिपदा तिथिके दिन तथा द्वितीयाके दिन सूर्योदय कालमें रहनेवाली षष्ठांश प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—काष्ठासंघके आचार्योंने पूर्णिमा, प्रतिपदा एवं द्वितीया तिथिमें होनेवाले व्रतोंकी व्यवस्था करते हुए बताया है कि समस्त तिथिका षष्ठांशमात्र व्रतके लिए ग्राह्य है। इसकी उपपत्ति बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि तीस मुहूर्त्तोंका एक दिन—अहोरात्र होता है। इन तीस मुहूर्त्तोंमें ये पन्द्रह मुहूर्त्त दिनमें और पन्द्रह मुहूर्त्त रातमें होते हैं। रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, नैर्ऋत्य, वरुण, अर्यमन् और भाग्य ये मुहूर्त्त प्रत्येक तिथिमें दिनको रहते हैं।[1]

रात्रिमें[2] सावित्र, धुर्य, दात्रक, यम, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त,

---

१—रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा॥
रोहणो बलनामा च विजयो नैर्ऋतोऽपि च।
वरुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पञ्चदशो दिने॥

२—सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि।

सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विक्षोभ, योग्य, पुष्पदन्त, सुगन्धर्व और अरुण ये पन्द्रह मुहूर्त्त रहते हैं। प्रत्येक मुहूर्त्त दोघटी प्रमाण कालतक रहता है। कुछ आचार्य दिनमें पाँच मुहूर्त्त ही मानते हैं तथा कुछ छः मुहूर्त्त। दिनके पन्द्रह मुहूर्त्तोंमें रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट और दैत्य आदिका गुण और स्वभाव बतलाते हुए कहा गया है कि प्रथम रौद्र मुहूर्त्त, जो कि उदयकालमें दोघटीतक रहता है, खर और तीक्ष्ण कार्योंके लिए शुभ होता है। इस मुहूर्त्तमें किसी विलक्षण असाध्य और भयंकर कार्यको आरम्भ करना चाहिए। इस मुहूर्त्तका आदि भाग शुभ, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग निकृष्ट होता है। इस मुहूर्त्तका स्वभाव उग्र, कार्य करनेमें प्रवीण, साहसी और वंचक बताया गया है। दूसरे श्वेत मुहूर्त्तका आरम्भ सूर्योदयके दो घटी—४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह भी दो घटी तक अपना प्रभाव दिखलाता है। इसका आदि भाग साधारण, शक्तिहीन, पर मांगलिक कार्योंके लिए शुभ, नृत्य गायनमें प्रवीण, आमोद-प्रमोदको रुचिकर समझनेवाला एवं आह्लादकारी होता है। मध्यभाग इस मुहूर्त्तका शक्तिशाली, कठोर कार्य करनेमें समर्थ, दृढ़ स्वभाववाला, श्रमशील, दृढ़ अध्यवसायी एवं प्रेमिल स्वभावका होता है। इस भागमें किये गये सभी प्रकारके कार्य सफल होते हैं। अन्तभाग निकृष्ट है।

तीसरा मुहूर्त्त सूर्योदयके एक घंटा ३६ मिनट पश्चात् आरम्भ होता है। यह भी दो घटी तक रहता है। यह मुहूर्त्त विशेष रूपसे पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाता है। इसका स्वभाव मृदु, स्नेहशील, कर्त्तव्यपरायण और धर्मात्मा माना है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदि भाग शुभ, सिद्धि-दायक, मंगलकारक एवं कल्याणप्रद होता है। इसमें जिस कार्यका

सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च।
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्त्तोऽन्योऽरुणो मतः॥
—धवला टीका जि० ४ पृ० ३१८—१९

आरम्भ किया जाता है, वह कार्य अवश्य सफल होता है। तल्लीनता, और कार्य करनेमें रुचि विशेषतः जाग्रत होती है। विघ्न बाधाएँ उत्पन्न नहीं होती।

तीसरे मुहूर्त्तका मध्यभाग सबल, विचारक, अनुरागी और परिश्रमसे भागनेवाला होता है। इसका स्वभाव उदासीन माना है। यद्यपि इसमें आरम्भ किये जानेवाले कार्योंमें नाना प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कार्य अधूरा ही रह जायगा, फिर भी काम अन्ततोगत्वा पूरा हो ही जाता है। इस भागका महत्त्व अध्ययन, अध्यापन एवं आराधनके लिए अधिक है। स्वाध्याय आरम्भ करनेके लिए यह भाग श्रेष्ठ माना गया है। जो व्यक्ति गणितसे तीसरे मुहूर्त्तके मध्यभागको निकालकर उसी समयमें विद्यारम्भ या अक्षरारम्भ करते है, वे विद्वान् बन जाते हैं। यों तो इस समस्त मुहूर्त्तमें सरस्वतीका निवास रहता है, पर विशेष रूपसे इस भागमें सरस्वतीका निवास है। तीसरे मुहूर्त्तका अन्तिम भाग व्यापार, अध्यवसाय, शिल्प आदि कार्योंके लिए प्रशस्त माना है। इस भागमें किये जानेवाले कार्य कठोर श्रमसे पूरे होते हैं। इस भागका स्वभाव मिलनसार, लोकव्यवहारज्ञ और लोभी माना गया है। इसी कारण व्यापार और बड़े-बड़े व्यवसायोंके प्रारम्भ करनेके लिए इसे प्रशस्त बतलाया है। यह मुहूर्त स्थिरसंज्ञक भी है, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, कूपारम्भ, जिनालयारम्भ, व्रतोपनयन आदि कार्य इस मुहूर्त्तमें विधेय माने गये है।

चौथा सारभट नामका मुहूर्त्त सूर्योदयके दो घण्टा ३६ मिनटके पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका समय भी दो घटी अर्थात् ४८ मिनट है। इस मुहूर्त्तकी विशेषता यह है कि प्रारम्भमें यह प्रमादी, उत्तरकालमें श्रमशील, विचारक और स्नेही होता है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदिभाग शक्तिशाली, अध्यवसायी, कार्यकुशल और लोकप्रिय होता है। इस भागमें कार्य करनेपर कार्य सफल होता है, किन्तु अध्यवसाय और परिश्रमकी आवश्यकता पड़ती

है। पूजा-पाठ, धार्मिक अनुष्ठान एवं शान्ति-पौष्टिक कार्योंके लिए यह ग्राह्य माना गया है। इसमें किये जाने पर उक्त कार्य प्रायः सफल होते हैं। यद्यपि कार्यके अन्त होने पर विघ्न-बाधाएँ आती हुई दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु अध्यवसाय-द्वारा कार्य सिद्ध होनेमें विलम्ब नहीं लगता है।

चौथे मुहूर्तका द्वितीय भाग भी आनन्द संज्ञक है। इसके ५ पलोंमें अमृत रहता है। जो व्यक्ति इसके अमृत भागमें कार्य करता है या अपने आत्मिक उत्थानमें आगे बढ़ता है, वह निश्चय ही सफलता प्राप्त करता है। इसका तीसरा भाग, जिसे अन्त भाग कहा जाता है, साधारण है। इसमें कार्य करनेपर कार्यमें विशेष सफलता नहीं मिलती है। अधिक परिश्रम करनेपर भी फल अल्प मिलता है। जो व्यक्ति इस भागमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करते हैं, उनके वे कार्य प्रायः असफल ही रहते हैं।

पाँचवाँ दैत्य नामका मुहूर्त्त है जो कि सूर्योदयके तीन घण्टा १२ मिनट पश्चात् प्रारम्भ होता है। यह शक्तिशाली, प्रमादी, क्रूर स्वभाववाला और निद्रालु होता है। इसके आदि भागमें कार्य आरम्भ करनेपर विलम्बसे होता है, मध्य भागमें कार्यमें नाना प्रकारके विघ्न आते हैं। चंचलता आदि रहती है तथा उग्र प्रकृतिके कारण झगड़े-झंझट तथा अनेक प्रकारसे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अन्त भाग अशुभ होते हुए भी शुभ फलदायक है। इसमें श्रमसाध्य कार्योंको प्रारम्भ करना हितकारी माना गया है। जो व्यक्ति खर और तीक्ष्ण कार्योंको अथवा उपयोगी कलाओंके कार्योंको आरम्भ करता है, उसे इन कार्योंमें बहुत सफलता मिलती है।

छठवाँ वैरोचन मुहूर्त्त सूर्योदयके चार घण्टेके उपरान्त आरम्भ होता है। इस मुहूर्तका स्वभाव अभिमानी, महत्त्वाकांक्षी और प्रगतिशील माना गया है। इसका आदिभाग सिद्धिदायक, मध्यभाग हानिप्रद और अन्त भाग सफलतादायक होता है। इस मुहूर्तमें दान, अध्ययन, पूजा-

पाठके कार्य विशेष रूपसे सफल होते हैं। जो व्यक्ति एकाग्रचित्तसे इस मुहूर्तमें भगवान्‌का भजन, पूजन, स्मरण और गुणानुवाद करता है, वह अपने लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। इस मुहूर्तका उपयोग प्रधान रूपसे धार्मिक कृत्योंमें करना चाहिए।

सातवाँ मुहूर्त वैश्वदेव नामका है, इसका प्रारम्भ सूर्योदयके चार घंटा ४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह मुहूर्त विशेष शुभ माना जाता है, परन्तु कार्य करनेमे सफलता सूचक नहीं हैं। इस मुहूर्तका आदिभाग निकृष्ट, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग श्रेष्ठ होता है। आठवाँ अभिजित् नामका मुहूर्त है। यह सर्वसिद्धिदायक माना गया है। इसका प्रारम्भ सूर्योदयके ५ घंटा ३६ मिनटके उपरान्त माना जाता है। परन्तु गणितसे इसका साधन निम्न प्रकारसे किया जाता है—

रविवारको २० अंगुल लम्बी सीधी लकडी, सोमवारको १६ अंगुल लम्बी लकडी, मंगलको १५ अंगुल लम्बी, बुधवारको १४ अंगुल लम्बी, गुरुवारको १३ अंगुल लम्बी, शुक्र और शनिवारको १२ अंगुल लम्बी चिकनी तथा सीधी लकड़ीको पृथ्वीमें खडी करे, जिस समय उस लकड़ी-की छाया लकडीके मूलमें लगे उसी समय अभिजित् मुहूर्तका प्रारम्भ होता है। इसका आधा भाग अर्थात् एक घटी प्रमाण काल समस्त कार्योंमें अभूतपूर्व सफलता देनेवाला होता है। अभिजित् रविवार, सोम-वार आदिको भिन्न-भिन्न समयमें पड़ता है। इसका कार्य-साफल्यके लिए विशेष उपयोग है। प्रायः अभिजित् ठीक दोपहरको आता है, यही सामायिक करनेका समय है। आत्मचिन्तन करनेके लिए अभिजित् मुहूर्त का विधान ज्योतिष-ग्रन्थोंमें अधिक उपलब्ध होता है।

नौवाँ मुहूर्त रोहण नामका है, इसका स्वभाव गम्भीर, उदासीन और विचारक है। यह समस्त तिथिका शासक माना गया है। यद्यपि पाँचवाँ दैत्य मुहूर्त तिथिका अनुशासक होता है, परन्तु कुछ आचार्योंने इसी मुहूर्तको तिथिका प्रधान अंश माना है। इस मुहूर्तमें कार्य करने-

पर कार्य सफल होता है। विघ्न बाधाएँ भी नाना प्रकार की आती हैं, फिर भी किसी प्रकारसे यह सफलता दिलानेवाला होता है। इसका आदिभाग मध्यम, मध्य भाग श्रेष्ठ और अन्तिम भाग निकृष्ट होता है। दसवाँ बलनामक मुहूर्त है, यह प्रकृतिसे निर्बुद्धि तथा सहयोगसे बुद्धिमान् माना जाता है। इसका आदि भाग श्रेष्ठ, मध्यभाग साधारण और अन्त भाग उत्तम होता है। ग्यारहवाँ विजय नामक मुहूर्त है, यह समस्त कार्योंमें अपने नामके अनुसार विजय देता है। बारहवाँ नैर्ऋत् नामका मुहूर्त है, जो सभी कार्योंके लिए साधारण होता है। तेरहवाँ वरुण नामका मुहूर्त है, जिसमें कार्य करनेसे धन व्यय तथा मानसिक परेशानी होती है। चौदहवाँ अर्यमन् नामक मुहूर्त है, यह सिद्धिदायक होता है तथा पन्द्रहवाँ भाग्य नामक मुहूर्त है, जिसका अर्धभाग शुभ और अर्धभाग अशुभ माना गया है।

इस प्रकार दिनके पन्द्रह मुहूर्तोंमेंसे षष्ठांश प्रभाव तिथिमें पाँच मुहूर्त आते हैं। प्रातःकालमें रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट और दैत्य ये पाँच मुहूर्त मध्यम मानसे सूर्योदयसे दस घटी समय तक रहते हैं। दैत्य मुहूर्त तिथिका शासक होता है, तथा पाँचों मुहूर्त दिनके तृतीयांश भाग में भुक्त होते हैं, अतः कम-से-कम तिथिका मान दस घटी या षष्ठांशमात्र मानना आवश्यक है, क्योंकि शासक मुहूर्तके आये बिना तिथि अपना प्रभाव ही नहीं दिखला सकती है। शासक मुहूर्त षष्ठांश प्रमाण तिथिके मानने पर ही आता है, अतः दस घटीसे न्यून तिथिका प्रमाण व्रतके लिए ग्राह्य नहीं किया जा सकता। व्रतविधिमें जाप, सामायिक, पूजापाठ, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ व्रतकी तिथिमें दैत्यमुहूर्त्त तक होनी चाहिए। क्योंकि समस्त तिथि दैत्य मुहूर्त्तके अनुसार ही अपना कार्य करती हैं। जिस व्रत तिथिमें पाँचवाँ मुहूर्त्त नहीं पड़ता है, वह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती। आचार्य महाराजने इसी कारण तिथिके षष्ठांशके ग्रहण करनेपर ज़ोर दिया है।

तिथि-ह्रास होने पर तृतीया व्रतका विधान

तिथिर्नष्टकलातोऽथ तृतीया व्रतमुच्यते—
वर्णाश्रमेतराणां च युक्तं तृतीयाह्रासकम्।
इत्यनन्तव्रताख्येति कृष्णसेनेन चोदितम्॥

अर्थ—तिथि ह्रास होनेपर अथवा तिथिका घट्यात्मक मान कम होनेपर तृतीया व्रतका नियम कहते हैं—

वर्णाश्रमधर्मको न माननेवाले—श्रमण संस्कृतिके प्रतिष्ठापक तृतीया तिथिकी हानि होने पर द्वितीयाको व्रत करनेका विधान करते हैं। अनन्त व्रतका वर्णन करते हुए कृष्णसेनने इसका वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि मूलसंघके आचार्योंके मतमें तृतीया तिथिके ह्रास होनेपर अथवा तृतीयाका घट्यादि प्रमाण छः घटीसे अल्प होने पर द्वितीयाको ही व्रत कर लेना चाहिए।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रतिपदा तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी व्रतके लिए ग्रहण की जाती है। द्वितीया तिथि भी शुक्लपक्षमें पूर्वाह्ण-व्यापिनी और कृष्णपक्षमे सर्वदिन व्यापिनी ली गयी है। "**पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा**" अर्थात् जो द्वितीया पहले दिन न होकर अगले दिन वर्तमान हो तथा उदयकालमें कम-से-कम तीन मुहूर्त्त—६ घटी ३६ पल हो, वही व्रतके लिए ग्रहण करने योग्य है। द्वितीया तिथिको व्रतके लिए जैनाचार्योंने छः घटी प्रमाण माना है। जो तिथि इस प्रमाणसे न्यून होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती है। सर्वदिन व्यापिनी तिथिकी परिभाषा भी यही की गयी है कि समस्त तिथिका षष्ठांश प्रमाण जो तिथि उदयकालमें रहे, वह सर्वदिनव्यापिनी कहलाती है।

तृतीया तिथिको वैदिकधर्ममें व्रतके लिए परान्वित ग्रहण किया गया है[1]। इसका अभिप्राय यह है कि एक घटी प्रमाण या इससे अल्प

१—एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।
अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः॥
—नि० सि० पृ० २३

रहने पर भी तृतीया तिथि परान्वित हो ही जाती है, अतः प्रातःकाल एकाध घटी तिथिके रहने पर भी व्रतके लिए उसका ग्रहण किया गया है। इस प्रकार वैदिक धर्ममें प्रत्येक तिथिको व्रतके लिए हीनाधिक मानके रूपमें ग्रहण नहीं किया गया है। प्रत्येक तिथिका मान व्रत-कालके लिए अलग अलग बतलाया है। जैनाचार्योंने इसी सिद्धान्तका खण्डन किया है और सर्वसम्मतिसे व्रततिथिका मान छः घटी अथवा समस्त तिथिका षष्ठांश माना है। आचार्यने उपर्युक्त श्लोकोंमें प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया तिथिके नियम निर्धारित करते हुए यही बताया है कि जो तिथि छः घटी प्रमाण नहीं है, वह चाहे पूर्वविद्ध हो, चाहे पर-विद्ध; व्रतके लिए ग्रहण नहीं की जा सकती है। निर्णयसिन्धुमें प्रत्येक तिथिकी जो अलग-अलग व्यवस्था बतलायी है, वह युक्तिसंगत नहीं है। सामान्य रूपसे प्रत्येक व्रतके लिए छः घटी या समस्त तिथिका षष्ठांश ग्रहण करना चाहिए।

व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा कवलचान्द्रायणकी परिभाषा

व्रतानि कति भेदानि, इति चेदुच्यते—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवसिकानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति नवधा भवन्ति। निरवधिव्रतानि कवलचान्द्रायणतपोऽञ्जलिजिनमुखावलोकनमुक्तावलीद्विकावल्येककवलवृद्धयाहारव्रतानि । अमावास्यायाः प्रोषधं पुनः शुक्लपक्षे तु तन्न्यूनतप एककवलं यावत् एष निरवधिकवलचान्द्रायणाख्यं व्रतं भवति, न तिथ्यादिको विधिर्भवति।

अर्थ—व्रत कितने प्रकारके होते हैं? आचार्य इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। व्रतके नौ भेद हैं—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ। निरवधि व्रतोंमें

कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली, मेरुपंक्ति आदि। अमावस्याका प्रोषधोपवास कर शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियोंमें एक-एक कवलकी वृद्धि करते हुए पूर्णिमाको १५ ग्रास आहार ग्रहण करे। पश्चात् कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक कवल कम करते हुए चतुर्दशीको एक ग्रास आहार ग्रहण करे। अमावास्याको पारणा करे। इसमें तिथिकी विधि नहीं की जाती है। एकाध तिथिके घटने-बढनेपर दिनसंख्याकी अवधिका इसमें विचार नहीं किया जाता है।

विवेचन—जिन व्रतोंके आरम्भ और समाप्त करनेकी तिथि निश्चित रहती है तथा दिनसंख्या भी निर्धारित रहती है, वे व्रत सावधि व्रत कहलाते हैं। दशलक्षण, अष्टाह्निका, रत्नत्रय, षोडशकारण आदि व्रत सावधि व्रत माने जाते है। क्योंकि इन व्रतोंके आरम्भ और अन्तकी तिथियाँ निश्चित हैं तथा दिनसंख्या भी निर्धारित है। जिन व्रतोंकी दिनसंख्या निर्धारित रहती है किन्तु आरम्भ और समाप्तिकी तिथि निश्चित नही है, वे व्रत निरवधिव्रत कहलाते हैं। जिन व्रतोंके कृत्योंका महत्त्व दिनके लिए है, वे दैवसिक व्रत कहलाते हैं, जैसे पुष्पाञ्जलि, रत्नत्रय, अष्टाह्निका, अक्षयतृतीया, रोहिणी आदि।

जिन व्रतोका महत्त्व रात्रिकी क्रियाओं और विधानोंके सम्बन्धके साथ रहता है, वे व्रत नैशिक व्रत कहलाते हैं। चन्दनषष्ठी, आकाश-पञ्चमी आदि व्रत नैशिक माने गये हैं। महीनोंकी अवधि रखकर जो व्रत सम्पन्न किये जाते हैं, वे मासावधिक व्रत कहलाते हैं। संवत्सर पर्यन्त जो व्रत किये जाते है, वे सांवत्सरिक व्रत हैं। किसी फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे काम्य तथा बिना किसी फल-प्राप्तिके जो व्रत किये जाते हैं, वे अकाम्य कहलाते हैं। उत्तम फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे उत्तमार्थ व्रत हैं। इस प्रकार नौ तरहके व्रत बतलाये गये हैं। इन व्रतोंके करनेसे उत्तम भोगोपभोगकी प्राप्ति होती है तथा कर्मोंकी निर्जरा होनेसे कर्मभार भी हलका होता है।

निरवधि व्रतोंमें कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली बताये हैं। कवलचान्द्रायण व्रतका प्रारम्भ किसी भी मासमें किया जा सकता है, यह अमावस्यासे आरम्भ होकर अगले महीनेकी चतुर्दशीको समाप्त होता है तथा अमावस्याको पारणा की जाती है। प्रथम अमावस्याको प्रोषधोपवास कर प्रतिपदाको एक ग्रास आहार, द्वितीयाको दो ग्रास, तृतीयाको तीन ग्रास, चतुर्थीको चार ग्रास, पञ्चमीको पाँच ग्रास, षष्ठीको छः ग्रास, सप्तमीको सात ग्रास, अष्टमीको आठ ग्रास, नवमीको नौ ग्रास, दशमीको दस ग्रास, एकादशीको ग्यारह ग्रास, द्वादशीको बारह ग्रास, त्रयोदशीको तेरह ग्रास, चतुर्दशीको चौदह ग्रास और पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास, प्रतिपदाको पुनः चौदह ग्रास, द्वितीयाको तेरह ग्रास, तृतीयाको बारह ग्रास, चतुर्थीको ग्यारह ग्रास, पञ्चमीको दस ग्रास, षष्ठीको नौ ग्रास, सप्तमीको आठ ग्रास, अष्टमीको सात ग्रास, नवमीको छः ग्रास, दशमीको पाँच ग्रास, एकादशीको चार ग्रास, द्वादशीको तीन ग्रास, त्रयोदशीको दो ग्रास और चतुर्दशीको एक ग्रास आहार लेना चाहिए। अमावस्याके अनन्तर जिस प्रकार चन्द्रकलाओंकी वृद्धि होती है, आहारके ग्रासोंकी भी वृद्धि होती चली जाती है तथा चन्द्रकलाओंके घटनेपर ग्राससंख्या भी घटती जाती है। इस व्रतका नाम कवलचान्द्रायण इसीलिए पड़ा है कि चन्द्रमाकी कलाओंकी वृद्धि और हानिके साथ भोजनके कवलोंकी हानि और वृद्धि होती है।

जिनमुखावलोकन व्रत भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक किया जाता है। इस व्रतमें सबसे पहले श्रीजिनेन्द्रका दर्शन करना चाहिए, अन्य किसी व्यक्तिका मुँह नहीं देखना चाहिए। प्रतिपदाको प्रोषधोपवास कर, द्वितीयाको पारणा, तृतीयाको प्रोषधोपवास कर चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको प्रोषधोपवास कर षष्ठीको पारणा, सप्तमीको प्रोषधोपवास कर अष्टमीको पारणा, नवमीको प्रोषधोपवास कर दशमीको पारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार एक दिन उपवास,

अगले दिन पारणा करते हुए भाद्रपद मासको बिताना चाहिए। पारणाके दिन एकाशन करना चाहिए। भोजनमें माड़-भात, या दूध अथवा छाछ लेना चाहिए। वस्तुओंकी संख्या भी भोजनके लिए निर्धारित कर लेनी चाहिए। यह व्रत कवलचान्द्रायणके समान भी किया जा सकता है। इसमें केवल विशेषता इतनी ही है कि प्रातः जिनमुखका अवलोकन करना चाहिए। रातका अधिकांश भाग जागते हुए धर्मध्यानपूर्वक बिताना चाहिए।

मुक्तावली व्रत दो प्रकारका होता है—लघु और बृहत्। लघु व्रतमें नौ वर्ष तक प्रतिवर्ष नौ-नौ उपवास करने पड़ते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को, दूसरा आश्विन कृष्णा षष्ठी को, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ कार्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। मुक्तावली व्रतमें ब्रह्मचर्य सहित अणुव्रतोंका पालन करना चाहिए। रातमें उपवासके दिन जागरणकर धर्मार्जन करना चाहिए। "ॐ ह्रीं वृषभजिनाय नमः" इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

बृहत् मुक्तावली व्रत ३४ दिनोंका होता है। इस व्रतमें प्रथम एक उपवास कर पारणा, पुनः दो उपवासके पश्चात् पारणा, तीन उपवासके पश्चात् पारणा, चार उपवासके पश्चात् पारणा तथा पाँच उपवासके पश्चात् पारणा करनी चाहिए। अब चार उपवासके पश्चात् एक पारणा तीन उपवासके पश्चात् पारणा, दो उपवासके पश्चात् पारणा एवं एक उपवासके पश्चात् पारणा करनी होती है। इस प्रकार कुछ २५ दिन उपवास तथा ९ दिन पारणाएँ; इस प्रकार कुल ३४ दिनों तक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें लगातार दो, तीन, चार और पाँच उपवास करने पड़ते हैं; दिन धर्मध्यानपूर्वक बिताने पड़ते हैं तथा रातको जागकर आत्म-चिन्तन करते हुए व्रतकी क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इस व्रतका फल

विशेष बताया गया है। इस प्रकार निरवधि व्रतोंका अपने समयपर पालन करना चाहिए, तभी आत्मोत्थान हो सकता है। बृहद् मुक्तावली-मे "ॐ ह्रां णमो अरहंताणं ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ॐ ह्रः णमो लोए सव्व-साहूणं" इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

बृहद् मुक्तावली और लघुमुक्तावलि व्रतके मध्यमे एक मध्यम मुक्तावलि व्रत भी होता है। यह ६२ दिनोंमें पूर्ण होता है, इसमें ४९ उपवास और १३ पारणाएँ होती है। मध्यममुक्तावली व्रतमें भी बृहद्-मुक्तावली व्रतके मन्त्रका जाप करना चाहिए। पारणाके दिन तीनों ही प्रकारके मुक्तावली व्रतमें भात ही लेना चाहिए।

तपोञ्जलि व्रतका लक्षण

किंनाम तपोऽञ्जलिर्व्रतम्? द्वादशमासेषु निशिजलपानं न कर्त्तव्यमुपवासाश्चतुर्विंशतयः कार्याः, अष्टम्यां चतुर्दश्यां नैव नियमः अष्टम्यामेव चतुर्दश्यामेवेति ॥

अर्थ—तपोऽञ्जलि व्रतकी क्या विधि है? कैसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि बारह महीनों तक अर्थात् एक वर्ष पर्यन्त रातको पानी नहीं पीना और एक वर्षमें चौबीस उपवास करना तपोऽञ्जलि व्रत है। उपवास करनेका नियम अष्टमी और चतुर्दशीको ही नहीं है, प्रत्येक महीनेमें दो उपवास कभी भी किये जा सकते हैं।

विवेचन—आचार्यने तपोऽञ्जलि व्रतका अर्थ यह किया है कि रातको जल नहीं पीना, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, धर्मध्यान पूर्वक वर्षको बिताना। यह व्रत श्रावण मासकी कृष्णा प्रतिपदासे किया जाता है। इसका प्रमाण एक वर्ष है। व्रत करनेवाला दि० जैन मुनि या दि० जैन प्रतिमाके समक्ष बैठकर व्रतको विधिपूर्वक ग्रहण करता है। दो घटी सूर्य अस्त होनेके पूर्वसे लेकर दो घटी सूर्योदयके बाद तक जलपानका त्याग करता है। जलपानका अर्थ यहाँ हलका भोजन नहीं है बल्कि जल पीने

का त्याग करना अभिप्रेत है। इस व्रतका धारी श्रावक रातको जल तो पीता ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्यका भी पालन करता है। यद्यपि कहीं-कहीं स्वदारसन्तोष व्रत रखनेका विधान किया है, पर उचित तो यही प्रतीत होता है कि एक वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर आत्मिक शक्तिका विकास किया जाय। ब्रह्मचर्यमे रहनेपर शरीर और मन दोनों स्वस्थ होते है।

वर्षा ऋतुसे व्रतारम्भ करनेका अभिप्राय भी यही है कि इस ऋतुमें पेटकी अग्नि मन्द हो जाती है, अतः ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शक्तिका विकास होता है। ब्रह्मचर्यके अभावमें वर्षा ऋतुमें नानाप्रकारके रोग हो जाते हैं, जिससे मनुष्य आत्मकल्याणसे वंचित हो जाता है। इस ऋतुमें रातको जल न पीना भी बहुत लाभप्रद है। नानाप्रकारके सूक्ष्म और बादर जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति इस ऋतुमें होती है, जिससे रातमें पीनेवाले जलके साथ वे पेटमें चले जाते हैं। भयंकर व्याधियाँ भी वर्षा ऋतुकी रातमे जल पीनेसे हो जाती हैं। तपोऽञ्जलि व्रतमें प्रत्येक मासमें दो उपवास स्वेच्छासे किसी भी तिथिको करने चाहिए।

प्रत्येक महीनेकी शुक्लपक्षकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका नियम इस व्रतके लिए बताया गया है; परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यह व्रत इन दोनों दिनोंमें होना ही चाहिए। प्रत्येक पक्षमे एक उपवास करना आवश्यक है, एक ही पक्षमें दो उपवास नही करने चाहिए। जो लोग अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना चाहते हैं, उनको भी इस व्रतके लिए कृष्णपक्षमें अष्टमीका और शुक्लपक्षमें चतुर्दशीका अथवा शुक्लपक्षमें अष्टमीका और कृष्णपक्षमें चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। लगातार एक ही पक्षमे दो उपवास करनेका निषेध है। कोई भी व्यक्ति एक ही पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास नहीं कर सकता है। उपवासके लिए जिस प्रकार पक्षका पृथक् होना आवश्यक है, उसी प्रकार तिथिका भी। एक महीनेमें उपवासकी तिथियाँ एक नहीं हो सकती। जैसे कोई व्यक्ति कृष्णा पञ्चमीका उपवास करे, तो पुनः शुक्लपक्षमें वह

पञ्चमीका उपवास नहीं कर सकता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमीके उपवासके पश्चात् शुक्लपक्षमें उसे तिथि-परिवर्तन करना ही पड़ेगा। अतः शुक्ल-पक्षमें पञ्चमीको छोड़ किसी भी अन्य तिथिको उपवास कर सकता है। इस व्रतमें प्रतिदिन 'ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः' मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

जिनमुखावलोकन व्रतकी विधि

किं नाम जिनमुखावलोकनं व्रतम् ? को विधिः ? जिनमुख-दर्शनानन्तरमाहारो यस्मिन् तज्जिनमुखावलोकनं नामैतत् निर-वधि व्रतम्। इदं व्रतं भाद्रपदमासे करणीयम्, प्रोषधोपवासा-नन्तरं पारणा पुनः प्रोषधोपवासः, एवमेव प्रकारेण मासान्त-पर्यन्तमिति।

अर्थ—जिनमुखावलोकन व्रत किसे कहते हैं? उसकी विधि क्या है? आचार्य उत्तर देते हैं कि प्रातःकाल जिनेन्द्रमुख देखनेके अनन्तर आहार ग्रहण करना जिनमुखावलोकन व्रत है। यह निरवधि व्रत होता है। यह व्रत भाद्रपद मासमें किया जाता है। प्रथम प्रोषधोपवास, अनन्तर पारणा, पुनः प्रोषधोपवास पश्चात् पारणा, इसी प्रकार मासान्त तक उपवास और पारणा करते रहना चाहिए।

विवेचन—जिनमुखावलोकन व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रच-लित हैं। प्रथम मान्यता इसे एक वर्ष पर्यन्त करनेकी है और दूसरी मान्यता एक मासतक करनेकी। प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत भाद्रपद माससे आरम्भ होकर श्रावण मासमें पूरा होता है और द्वितीय मान्यताके अनुसार भाद्रपद मासकी कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होकर इस मासकी पूर्णिमाको समाप्त हो जाता है। एक वर्षतक करनेका विधान करनेवालोंके मतसे वर्षमें कुल ३६ उपवास और एक मासका विधान माननेवालोंके मतसे एक मासमें १५ उपवास करने चाहिए।

प्रथम मान्यता बतलाती है कि भाद्रपद मासकी प्रतिपदाको पहला

उपवास करना चाहिए पश्चात् इस मासमें किन्हीं भी दो तिथियोंको दो उपवास करने चाहिए। परन्तु इस बातका ध्यान सदा रखना होगा कि प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें दो उपवास और शुक्लपक्षमें एक उपवास करना पड़ता है। इस व्रतके लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं की गयी है। यह किसी भी तिथिको सम्पन्न किया जा सकता है। प्रथम मान्यताके अनुसार उपवासके दिन रातभर जागरण करते हुए प्रातःकाल श्री जिनेन्द्र प्रभुके मुखका अवलोकन करना चाहिए। रातको 'ॐ अर्हद्भ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। जिन दिनों उपवास नहीं करना है, उन दिनो भी उपर्युक्त मन्त्रका एक जाप अवश्य करना चाहिए। उपवासके दिन पञ्चाणु व्रतोंका पालन करना, विशेष रूपसे ब्रह्मचर्य धारण करना तथा पूजन-सामायिक करना आवश्यक है। जिस समय जिनमुखावलोकन किया जाता है, उस समय व्रत करनेवाला भगवान्के समक्ष दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर घुटनोंके बल बैठ जाता है अथवा सुखासन लगाकर बैठता है। व्रतीको भगवान्के समक्ष बैठते हुए निम्न मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिए।

'त्रैलोक्यवशंकराय केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअर्हत्परमेष्ठिने नमः'; 'संसारपरिभ्रमणविनाशनाय अभीष्टफलप्रदानाय धरणेन्द्रफणमण्डलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः'; 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।' इन तीनों मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अन्तिम मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए। प्रोषधोपवासके दिन भी अन्तिम मन्त्रका तीनों सन्ध्याओं में जाप करना आवश्यक है। उपवासके दूसरे दिन पारणा करते समय भोज्य वस्तुओंकी संख्या निर्धारित कर लेनी चाहिए।

दूसरी मान्यताके अनुसार भी उपवासके दिन 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें जाप करना चाहिए। अन्य दिनोमे दिनमें एकबार इस मन्त्रका जाप किया जाता है। जिनेन्द्रभगवान्के दर्शनके अनन्तर

अन्य कार्योंका प्रारम्भ करना चाहिए। जिन-मुखावलोकन व्रत निरवधि कहलाता है, क्योंकि दोनों ही मान्यताओंमें इस व्रतके लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की गयी है। आचार्यने यहाँपर दूसरी मान्यताको प्रधानता दी है।

मुक्तावली व्रतकी विधि

का नाम मुक्तावली? कथं चेयं क्रियते सज्जनोत्तमैः? मुक्तावल्यामेकः द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्चोपवासाः, पश्चात् चत्वारः त्रयो द्वावेकः उपवासाः भवन्ति। अस्य व्रतस्योपवासाः पञ्चविंशतिः पारणा नवदिनानि। इति चतुस्त्रिंशत् दिनानि। एतदपि निरवधिः।

अर्थ—मुक्तावली व्रत किसे कहते हैं? यह सज्जन पुरुषोंके द्वारा कैसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि मुक्तावली व्रतमें पहले एक उपवास, फिर दो उपवास, पश्चात् तीन उपवास, चार उपवास, अनन्तर पाँच उपवास किये जाते हैं। पाँच उपवासके पश्चात् चार उपवास, तीन उपवास, दो उपवास और एक उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार व्रतके मध्यमें नौ बार पारणा और २५ दिन व्रत किया जाता है। इस व्रतको गिनती भी निरवधि व्रतोंमें है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतका अर्थ है मोतियोंकी लड़ी, जो व्रत मोतियोंकी लड़ीके समान हो, वही मुक्तावली है। मुक्तावली व्रतमें एक उपवाससे प्रारम्भ कर पाँच उपवास तक किये जाते हैं, पश्चात् पाँचपरसे घटते-घटते एक उपवासपर आ जाते हैं। इस प्रकार यह व्रत गोल मालाके समान बन जाता है। २५ दिन उपवास करनेपर केवल नौ दिन पारणा करनी पड़ती है। इस व्रतके दिनोंमें णमोकार मंत्रका तीन बार जाप करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें कषाय और विकथाओंका त्याग करना चाहिए। इस व्रतके विधि-पूर्वक धारण करनेसे सांसारिक उत्तम भोगोंको भोगनेके उपरान्त मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

द्विकावली व्रत-विधि

द्विकावल्यां द्विकान्तरेणैकाशनोपवासाः, चतुःपञ्चाशत् कार्याः, न तिथ्यादिनियमः। मतान्तरेण द्विकावल्यां प्रत्येक-मासे कृष्णपक्षे चतुर्थी-पञ्चम्योः, अष्टमी-नवम्योः, चतुर्दश्यमा-वस्ययोः उपवासाः कार्याः। शुक्लपक्षे तु प्रतिपदा-द्वितीययोः, पञ्चमी-षष्ठ्योः, अष्टमी-नवम्योः, चतुर्दशी-पूर्णिमयोः उपवासाः कार्याः। एवं प्रकारेण चतुरशीतिः पारणादिवसानि भवन्ति[1]।

अर्थ—द्विकावली व्रतमें दो उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। इसमें कुल ५४ उपवास होते हैं और ५४ दिन ही पारणा करनी पड़ती है। इसमें तिथि आदिका कोई नियम नहीं है। मतान्तरसे द्विकावली व्रतके प्रत्येक महीनेके कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमी, अष्टमी-नवमी, चतुर्दशी-अमावास्या और शुक्लपक्षमें प्रतिपदा-द्वितीया, पञ्चमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें ७ उपवास तथा ७ एकाशन करने चाहिए। वर्षमें इस प्रकार ८४ उपवास और ८४ पारणाएँ होती हैं।

---

१. विधि दुकावली बरतकी श्री जिन भाषी ताम।
बेला सात जु मास मैं करिए सुणि तिय नाम॥
पखि श्वेत थकी व्रत लीजै, पडिवा दोयज वृद्धि कीजै।
फुनि पाँचै पष्ठी जाणो, आठै नवमी छट्ठि ठाणो॥
चौदसि पून्यु गिण लेह, बेला चहु परिवसि तइएह।
तिथि चौथी पाचमी कारी, आठै नोमी सुविचारी॥
चौदसि मावसि परवीन, पषि किस्न करै छठ तीन।
इम सात मास एक माहीं, बारामासहि इक ठाहीं॥
चौरासी बेला कीजै, उद्यापन करि छाँडीजे।
इस व्रत तै सुरसिव पावैं, सुख को तहाँ बार न आवै॥
—क्रियाकोश किसनसिंघ

विवेचन--द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दो मत प्रचलित हैं। पहला मत इस व्रतके लिए तिथिका कोई बन्धन नहीं मानता है। इसमें कभी भी दो दिन उपवास कर पारणा करनी चाहिए। इस प्रकार ५४ उपवास और ५४ पारणाएँ करके व्रतको समाप्त करना चाहिए। ५४ उपवास १६२ दिनमें सम्पन्न किये जाते हैं। उपवास करनेवाला प्रथम दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, पुनः दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, इसी प्रकार आगे भी करता जाता है। इस प्रकार एक उपवासके सम्पन्न करनेमें तीन दिन लगते हैं, अतः ५४ उपवासके ५४ × ३ = १६२ दिन हुए। उपवासके दिनोंमें शीलव्रतका पालन करते हुए तीनों समय प्रतिदिन—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय सर्वशान्तिकराय सर्वक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय श्रीं क्लीं नमः स्वाहा' मन्त्रका जाप करना चाहिए। यह मन्त्र तीनों सन्ध्याकालोंमें कमसे कम १०८ बार जपा जाता है।

उपवास और पारणाके लिए किसी तिथिका नियम नहीं है; फिर भी यह व्रत श्रावणमासमें आरम्भ किया जाता है। यह माघ मासकी द्वादशी तक किया जाता है। कुछ लोग इसे वर्ष भर करनेकी सम्मति देते हैं, उनका कहना है कि श्रावण माससे आरम्भ कर दो दिन उपवास, एक दिन पारणा इस क्रमसे वर्षान्त तक व्रत करते रहना चाहिए।

द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दूसरी मान्यता यह है कि इस व्रतमें प्रत्येक मासमें सात उपवास किये जाते हैं, ये सात उपवास २१ दिनमें सम्पन्न होते हैं। दो दिन व्रत रखनेके उपरान्त पारणा करनी पड़ती है, इस प्रकार २१ दिनमें सात उपवास करनेके पश्चात् महीनेके शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। प्रथम उपवास कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीका किया जायगा। षष्ठीको पारणा की जायगी, सप्तमीको एकाशन करनेके उपरान्त अष्टमी और नवमीको व्रत किया जायगा। इस व्रतकी दशमीको पारणा होगी, पुनः एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना होगा। चतुर्दशी और अमावस्याको उपवास, पुनः शुक्लपक्षमें

प्रतिपदा और द्वितीयाका उपवास करना होगा। इस प्रकार व्रतमें एक बार चार दिनका उपवास पड़ेगा। एक पारणा-बीचकी लुप्त हो जायगी। चार दिनोंके व्रतके उपरान्त तृतीया और चतुर्थीको एकाशन करना होगा। पंचमी और षष्ठीके उपवासके अनन्तर, सप्तमीको पारणा, पश्चात् अष्टमी और नवमीको उपवास करनेपर दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना चाहिए। प्रत्येक महीनेका अन्तिम उपवास शुक्लपक्षमें चतुर्दशी और पूर्णिमाका करना होगा।

कुछ लोग इस व्रतको शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेके पक्षमें हैं। शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेपर प्रथम बार चार दिन तक लगातार उपवास नहीं पड़ता है, क्योंकि चतुर्दशी और पूर्णिमाके उपवासके पश्चात् कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीको उपवास करनेका विधान है। परन्तु इस क्रममें भी दूसरी आवृत्तिमें चार उपवास करना पड़ेगा।

द्वितीय मान्यतामें द्विकावली व्रतके लिए तिथियाँ निर्धारित की गयी हैं। अतः इसमें भी छः घटी प्रमाण तिथिके होनेपर ही व्रत करना होगा। इस व्रतकी जाप-विधि सर्वत्र एक-सी ही है। कषाय और विकथाओंके त्यागपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। द्विकावली व्रतका फल स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होना है। जो श्रावक इस व्रतका अनुष्ठान ध्यानपूर्वक करता है तथा प्रमादका त्याग कर देता है, वह शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण कर लेता है।

यों तो सभी व्रतों-द्वारा आत्मकल्याण करनेमें व्यक्ति समर्थ है, पर इस व्रतके पालन करनेसे समस्त मनोवाञ्छाएँ पूरी हो जाती हैं। किसी संकट या विपत्तिको दूर करनेके लिए भी यह व्रत किया जाता है। कुछ लोग इसे संकटहरण व्रत भी कहते हैं।

लघुद्विकावली

यह व्रत १२० दिनमें समाप्त होता है, इसमें २४ वेला, ४८ एकाशन और २४ पारणा इस प्रकार १२० दिन लगते हैं। प्रथम वेला, पुनः

पारणा, तत्पश्चात् दो एकाशन करे इस प्रकार इस व्रतको पूर्ण करना चाहिए। इस व्रतमें णमोकार मन्त्रका जाप या पूर्वोक्त बृहद् द्विकावली मन्त्रका जाप करना चाहिए।

एकावली व्रतकी विधि और फल

किंनाम एकावलीव्रतम्? कथं च विधीयते व्रतिकैः? अस्य किं फलम्? उच्यते—एकावल्यामुपवासा एकान्तरेण चतुरशीतिः कार्याः, न तु तिथ्यादिनियमः। इदं स्वर्गापवर्गफलप्रदं भवति। इति निरवधिव्रतानि॥

अर्थ—एकावली व्रत क्या है? व्रती व्यक्तियोंके द्वारा यह कैसे किया जाता है? इसका फल क्या है? आचार्य कहते हैं कि एकावली व्रतमें एकान्तर रूपसे उपवास और पारणाएँ की जाती हैं, इसमें चौरासी उपवास तथा चौरासी पारणाएँ की जाती है। तिथिका नियम इसमें नहीं है। इस व्रतके पालनेसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार निरवधि व्रतोंका वर्णन समाप्त हुआ।

विवेचन—एकावली व्रतकी विधि दो प्रकार देखनेको मिलती है। प्रथम प्रकारकी विधि आचार्य-द्वारा प्रतिपादित है, जिसके अनुसार किसी तिथि आदिका नियम नहीं है। यह कभी भी एक दिन उपवास, अगले दिन पारणा, पुनः उपवास, पुनः पारणा, इस प्रकार चौरासी उपवास करने चाहिए। चौरासी उपवासोंमें चौरासी ही पारणाएँ होती हैं। इस व्रतको प्रायः श्रावण माससे आरम्भ करते हैं। व्रतके दिनोंमें शीलव्रत और पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना आवश्यक है।

दूसरी विधि यह है कि प्रत्येक महीनेमें सात उपवास करने चाहिए, शेष एकाशन; इस प्रकार एक वर्षमें कुल चौरासी उपवास करने चाहिए। प्रत्येक मासकी कृष्ण पक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी एवं शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी तिथियोंमें उपवास करना चाहिए। उपवासके अगले और पिछले दिन एकाशन करना आवश्यक

है। शेष दिनोंमें भोज्य वस्तुओंकी संख्या परिगणित कर दोनों समय भी आहार ग्रहण किया जा सकता है। इस व्रतमें णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए।

सावधि व्रतोंके भेद

सावधीन्युच्यन्ते, तानि द्विविधानि, तिथिसावधिकानि दिनसंख्यासावधिकानि च। तिथिसावधिकानि कानि? सुखचिन्तामणिभावना-पञ्चविंशतिभावना-द्वात्रिंशत्-सम्यक्त्वपञ्चविंशत्यादीनि णमोकारपञ्चत्रिंशत्कानि॥

अर्थ—सावधि व्रतोंको कहते हैं, ये दो प्रकारके होते है—तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले और दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले। तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले व्रत कौन-कौन हैं? आचार्य कहते हैं कि सुखचिन्तामणिभावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वात्रिंशत्भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशति-भावना और णमोकार पञ्चत्रिंशत्-भावना।

विवेचन—जो किसी भी प्रकारकी अवधिको लेकर किये जाते है, वे सावधिक व्रत कहलाते हैं। यों तो सभी व्रतोंमे किसी न किसी प्रकार की मर्यादा रहती ही है, परन्तु सावधिक व्रतोंमें उन्हींकी गणना की गयी है, जिनमें तिथि आदिका विधान बिल्कुल निश्चित है। ऐसे व्रत सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशति भावना, द्वात्रिंशत् भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशति भावना, णमोकारपञ्चत्रिंशत् भावना आदि हैं। इन व्रतोंमें तिथिकी अवधिके अनुसार उपवास किए जाते हैं। समय मर्यादाके अतिक्रमण करनेपर इन व्रतोंका फल भी कुछ नहीं होता है। इनका फल समय—मर्यादापर ही आश्रित है। अतः ये व्रत तिथिसावधिक कहलाते हैं। क्रियाकोश आदि आचारके ग्रन्थोंमें इन व्रतोंकी विशेष-विशेष विधियोंका निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थमें पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित १०८ व्रतोंकी विधियोंका संक्षेपमे निरूपण किया है। व्रत विधियोंके सम्बन्धमें प्रकरणवश आगे विचार किया जायगा।

सुखचिन्तामणि व्रतका स्वरूप

उच्यते, सुखचिन्तामणौ चतुर्दशी चतुर्दशकं, एकादश्येकादशकं, अष्टम्यष्टकं, पञ्चमी पञ्चकं तृतीया त्रिकमेवमुपवासाः एकचत्वारिंशत्। न कृष्णपक्षशुक्लपक्षगतो नियमः, केवलां तिथिं नियम्य भवन्तीति उपवासाः। अस्य व्रतस्य पञ्चभावनाः भवन्ति, प्रत्येकभावनायामभिषेको भवति।

अर्थ—सुखचिन्तामणि नामके व्रतको कहते हैं—सुखचिन्तामणि व्रतमें चतुर्दशियोंमें चौदह उपवास, एकादशियोंके ग्यारह उपवास, अष्टमियोंके आठ, पञ्चमियोंके पाँच उपवास, तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ४१ उपवास करने चाहिए। इस व्रतमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षका कुछ भी नियम नहीं है, केवल तिथिका नियम है। उपवासके दिन व्रतकी विधेय तिथिका होना आवश्यक है। इस व्रतकी पाँच भावना होती हैं, प्रत्येक भावनामें एक अभिषेक किया जाता है। अभिप्राय यह है कि चौदह चतुर्दशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, ग्यारह एकादशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, आठ अष्टमियोंके व्रतके बाद एक भावना, पाँच पञ्चमियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना एवं तीन तृतीयाओंके व्रतके पश्चात् एक भावना करनी पड़ती है। प्रत्येक भावनाके दिन भगवान्‌का अभिषेक करना पड़ता है।

विवेचन—सुखचिन्तामणि व्रतके लिए केवल तिथियोंका विधान है। यह व्रत तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीको किया जाता है। प्रथम इस व्रतका प्रारम्भ चतुर्दशीसे करते हैं, लगातार चौदह चतुर्दशी अर्थात् सात महीनेकी चतुर्दशियोंमें चतुर्दशीव्रत पूरा होता है। साथ ही चतुर्दशी व्रतके तीन उपवास हो जानेपर एकादशी व्रत प्रारम्भ होता है। जिस दिन एकादशी व्रत आरम्भ किया जाता है, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक करते हैं तथा व्रतकी भावना भाते हैं। तीन चतुर्दशियोंके व्रतके उपरान्त एकादशी और चतुर्दशी दोनों व्रत अपनी-अपनी तिथिमें साथ-साथ किये जाते हैं।

तीन एकादशी व्रत हो जानेके पश्चात् अष्टमी व्रत प्रारम्भ किया जाता है। जिस दिन अष्टमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, उस दिन भगवान्का अभिषेक समारोहपूर्वक करते हैं। यह सदा स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक व्रतके प्रारम्भमें अभिषेक १०८ कलशोंसे किया जाता है। तीन अष्टमी व्रत हो जानेके उपरान्त पञ्चमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, इसके प्रारम्भ करनेकी विधि पूर्ववत् ही है। चतुर्दशी, एकादशी, अष्टमी और पञ्चमी ये व्रत एक साथ चलते हैं। दो पञ्चमीव्रतोंके हो जानेपर तृतीया व्रत आरम्भ होता है, इस दिन भी बृहद् अभिषेक, पूजन-पाठ आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। ये सभी व्रत तीन पक्षतक अर्थात् तीन तृतीया व्रतोंके सम्पूर्ण होनेतक साथ-साथ चलते हैं। तृतीयाके दिन ही इन व्रतोंकी समाप्ति होती है। इस दिन बृहद् अभिषेक समारोहपूर्वक करना चाहिए। उपवासके दिनोंमें **'ॐ ह्रीं सर्वदुरितविनाशनाय चतुर्विंशतितीर्थंकराय नमः'** इस मन्त्रका जाप प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल करना चाहिए। सुखचिन्तामणि व्रत निश्चित तिथिमें ही सम्पन्न किया जाता है। यदि व्रतकी तिथि आगे-पीछेके दिनोंमें होती है तो व्रत आगे-पीछे किया जाता है। यह व्रत चिन्तामणि रत्नके समान सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। भावनाके दिन चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा विशेष रूपसे की जाती है तथा **'ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय पार्श्वनाथाय नमः'** इस मन्त्रका जाप किया जाता है।

तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर सुख-चिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था

अधिकगृहीतानुक्ततिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—तिथिह्रासे व्रतिकैः तदादिदिनमारभ्य उपवासः कार्यः। अधिकतिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—यथाशक्ति द्वितीयायां तिथौ पुनः पूर्वप्रोक्तो विधिः कार्यः, हीनत्वात्त्रिमुहूर्त्ततः व्रतविधिर्न भवति।

अर्थ—सुखचिन्तामणि व्रतमें तिथिह्रास और तिथि वृद्धि होनेपर व्रत

करनेकी क्या विधि है ? तिथिह्रास होनेपर व्रत करनेवालोंको एक दिन पहले व्रत करना चाहिए ।

तिथिवृद्धि होनेपर क्या व्यवस्था है—आचार्य कहते हैं कि तिथि वृद्धि होनेपर दूसरे दिन—बढ़े हुए दिन भी विधिपूर्वक व्रत करना चाहिए। यदि तिथि तीन मुहूर्त्त अर्थात् बढी हुई तिथि छः घटीसे अल्प हो तो उस दिन व्रत नहीं करना चाहिए ।

विवेचन—तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर सुखचिन्तामणि व्रतमें उपवास निश्चित तिथिको करना चाहिए । जब तिथिकी वृद्धि हो, उस समय एक दिन तक उपवास करना पड़ेगा। परन्तु तिथि-वृद्धिमें इस बातका सदा ख़याल रखना पडेगा कि बढी हुई तिथि छः घटीसे अधिक होनी चाहिए। छः घटीसे अल्प होनेपर उस दिन पारणा कर ली जायगी। तिथिह्रास अर्थात् जिस तिथिको व्रत करना है, उसीका ह्रास—क्षय हो तो उस तिथिके पहले वाली तिथिको व्रत करना होगा; क्योंकि व्रतकी तिथि उस दिन सूर्योदयमें न भी रहेगी तो भी अस्त-कालमें अवश्य आ जायगी। अतएव एक दिन पहले व्रतवाली तिथिके वर्तमान रहनेसे व्रत एक दिन पूर्व करना होगा। सूर्योदय कालमें यदि व्रतकी तिथि छः घटी प्रमाण न हो तो भी व्रत एक दिन पहले करना पड़ेगा।

तिथिह्रासमें व्रततिथिकी व्यवस्था पहले ही बतलायी गयी है। जैनागममें सोदया तिथि वही मानी गयी है, जो उदयकालमें कमसे कम छः घटी प्रमाण हो। उदया तिथिके न मिलनेपर अस्तकालीन तिथि ग्रहण की जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्तिको चतुर्दशीसे सुखचिन्तामणि व्रत प्रारम्भ करना है। व्रत प्रारम्भके दिन चतुर्दशी उदयकालमें ८ घटी १० पल प्रमाण थी, अतः व्रत कर लिया गया। अगली चतुर्दशी बुधवारको ३ घटी १० पल है और मंगलवारको त्रयोदशी ५ घटी १५ पल है। यहाँ यदि बुधवारको व्रत किया जाता है तो ३ घटी १० पल प्रमाण, जो कि उदयकालमें तिथिका

मान है; छः घटी प्रमाणसे अल्प है। अतः बुधवारको चतुर्दशी सोदया नहीं कहलायेगी। व्रतके लिए तिथिका सोदया होना आवश्यक है, सोदया न मिलनेपर अस्ता तिथि ग्राह्य की जाती है। इसलिए चतुर्दशी का व्रत मंगलवारको ही कर लिया जायगा।

तिथि-वृद्धि होनेपर दो दिन लगातार व्रत करनेकी बात आती है। मान लीजिए कि बुधवारको एकादशी ६० घटी ० पल है और गुरुवारको एकादशी ६।४० पल है। इस प्रकारकी स्थितिमें प्रथम तिथि एकादशी पूर्ण है, अतः बुधवारको व्रत करना होगा। गुरुवारके दिन भी एकादशीका प्रमाण सोदया—छः घटीसे अधिक है, अतः गुरुवारको भी उपवास करना पड़ेगा। इस प्रकार तिथिवृद्धिमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। यदि यहाँपर गुरुवारके दिन एकादशी ५ घटी ४० पल ही होती, तो सोदया—छः घटी प्रमाण न होनेसे उपवासके लिए ग्राह्य नहीं थी। अतएव गुरुवारको पारणा की जा सकती है। उपवासका दिन केवल बुधवार ही रहेगा। इस प्रकार तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें सुखचिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था समझनी चाहिए।

अष्टाह्निकादि व्रतोंमें तिथि-क्षय होनेपर पुनः व्यवस्था

व्रतान्तं व्रतं कथं क्रियतेऽस्योपर्यन्यदुक्तं च अपभ्रंशदूहा—
अट्ठिमजावय अट्ठणिय जाणियह मज्झे तिहि।
पडणहोइ तहवर आइह्य अंतलौ वय॥

व्याख्या—अष्टम्या यावत्पूर्णिमान्तं व्रतं चाष्टाह्निकं जानीहि। अस्य मध्ये तिथिपतनं भवति, तर्हि व्रतस्यादिदिनमारभ्य व्रतान्तमवलोकयेत्यर्थः॥

अर्थ—यदि व्रतके मध्यमें तिथि-ह्रास हो तो व्रतकी समाप्ति किस प्रकार करनी चाहिए, इसके ऊपर अन्य आचार्यों-द्वारा कही गयी गाथाको कहते हैं—

अष्टमीसे लेकर पूर्णिमातक जो व्रत किया जाता है, उसे अष्टाह्निक व्रत कहते हैं। यदि इस व्रतके दिनोंमें किसी तिथिका ह्रास हो तो व्रत आरम्भ करनेके एक दिन पहलेसे लेकर व्रतकी समाप्तितक व्रत करना चाहिए।

तथान्यैरप्युक्ता गाथा—

वयविहीणं च मज्झे तिहिए पडणं वजाई होइ जई।
मूलदिणं पारंभिय अंते दिवसम्मि होइ सम्मत्तं॥

व्याख्या—व्रतविधीनां च मध्ये तिथिपतनं यदि भवेत्, तदा मूलदिने प्रारम्भं अन्त्ये दिवसे च भवति समाप्तमिति केचित्।

अर्थ—व्रत विधिके मध्यमें यदि किसी तिथिका ह्रास हो तो एक दिन पहले व्रत आरम्भ किया जाता है और व्रतकी समाप्ति अन्तिम दिन होती है। यही सम्यक्त्व है, ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं।

मास अधिक होनेपर सांवत्सरिक क्रिया कैसे करनी चाहिए।

मासाधिक्ये किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—

संवत्सरे यदि भवेन्मासो वै चाधिकस्तदा।
पूर्वस्मिन्न व्रतं कार्यं त्वपरस्मिन् कृतं शुभम्॥

अर्थ—अधिमास होनेपर व्रत कब करना चाहिए? आचार्य कहते हैं कि यदि वर्षमें एक मास अधिक हो तो पहले वाले मासमें व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु आगे वाले मासमें व्रत करना चाहिए।

विवेचन—सौर और चान्द्रमासमें अन्तर रहनेके कारण दो वर्ष छोड़कर तीसरे वर्षमें एक मासकी वृद्धि हो जाती है, जो अधिमास कहलाता है। इसका नाम शास्त्रकारोंने मलमास भी रखा है। यह अधिमास चैत्रसे लेकर आश्विन तक पड़ता है अर्थात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन ये ही महीने वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूर्य मन्द गतिसे गमन करता है और चन्द्रमा तेज गतिसे। इसलिए प्रति महीनेमें अधिशेषकी वृद्धि होती जाती है। जब

दो महीनोंमें एक संक्रान्ति पड़ती है, तब अधिमास आता है। बात यह है कि व्यवहारमें चन्द्रमास लिये जाते हैं, प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमान्त चान्द्र-मास गणना होती है। सौरमास संक्रान्तिसे लेकर संक्रान्ति तक होता है, यह पूरे ३० दिनका होता है। चान्द्रमास २९ दिनके लगभगका होता है तथा जिस दिन चान्द्रमास आरम्भ होता है, उस दिन सौरमास नहीं। सौर मास सदा चान्द्रमाससे आगे-पीछे आरम्भ होता है, इसी कारण तीन वर्षोंमें एक महीनेकी वृद्धि हो जाती है।

अधिमासका आनयन गणितसे निम्न प्रकार किया जाता है। दिनादि और अवमका योग करके दसगुणित वर्षगणमें जोड़कर तीसका भाग देने पर फल *अधिमास संख्या* होती है।

सावन दिन और चान्द्र दिनका अन्तर अवम होता है। इसलिए सावन दिन और अवमके योगसे चान्द्रदिन सिद्ध होते हैं।

एक वर्षमे सावनदिन=३६५।१५।३०।२२।३०

अवमदिन= ५।४८।२२।७।३०

एक वर्षमे चान्द्रदिन=३७१।३।५२।३०

,, सौरदिन=३६०।०।०।०

११।३।५२।३० एक वर्षमें इतने दिनादि बढ़ जाते हैं। इसका नाम वार्षिक अधिमास या शुद्धि है। क्योंकि सौर और चान्द्र-दिनोंके अन्तरमे अधिमास होता है अथवा अनुपात करनेपर कि कल्पवर्षों में कल्पाधिमास तो एक वर्षमें क्या ? से भी उपर्युक्त वार्षिक अधिमास आ जाजाता है।

सावन दिन घटी आदि=०।१५।३०।२२।३०

अवम दिन घटी आदि=०।४८।२२।७।३०

अधिशेष=११।३।५२।२०=दिनादि+क्षयाहादि अथवा अनुपात किया—एक वर्ष में ११।३।५२।३० अधिमास आता है तो गत वर्षोंमें क्या ? यहाँ सुविधाके लिए गुणकके दो खण्ड कर दिये—एक १० का और

दूसरा पूर्वसाधित १।३।५२।३० का। इस प्रकार दिनादि और अवमादिके योगमें दसगुणित वर्षसंख्या जोड़नेपर अधिदिन आये, इनमें तीसका भाग देनेपर अधिमास होता है।

अतः $\frac{\text{दिनादि}+\text{क्षयादि}+१० \times \text{वर्षगण}}{३०}$ =अधिमास। यहाँ शकाब्द-के अनुसार गणितकर कुछ अधिमासोंकी सूची दी जाती है।

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	वि० सं०	अधिमास
१८७२	२००७	आषाढ	१९२३	२०५८	आश्विन
१८७५	२०१०	वैशाख	१९२६	२०६१	श्रावण
१८७७	२०१२	भाद्रपद	१९२९	२०६४	ज्येष्ठ
१८८०	२०१५	श्रावण	१९३२	२०६७	वैशाख
१८८३	२०१८	ज्येष्ठ	१९३४	२०६९	आश्विन
१८८५	२०२०	आश्विन	१९३७	२०७२	आषाढ़
१८८६	२०२१	चैत्र	१९४०	२०७५	ज्येष्ठ
१८८८	२०२३	श्रावण	१९४२	२०७७	आश्विन
१८९१	२०२६	आषाढ	१९४५	२०८०	श्रावण
१८९४	२०२९	वैशाख	१९४८	२०८३	ज्येष्ठ
१८९६	२०३१	आश्विन	१९५१	२०८६	चैत्र
१८९९	२०३४	श्रावण	१९५३	२०८८	आश्विन
१९०२	२०३७	ज्येष्ठ	१९५६	२०९१	आषाढ़
१९०४	२०३९	आश्विन	१९५९	२०९४	ज्येष्ठ
१९०७	२०४२	श्रावण	१९६१	२०९६	आश्विन
१९१०	२०४५	ज्येष्ठ	१९६४	२०९९	श्रावण
१९१३	२०४८	वैशाख	१९६७	२१०२	ज्येष्ठ
१९१५	२०५०	आश्विन	१९७०	२१०५	चैत्र
१९१८	२०५३	आषाढ	१९७२	२१०७	आश्विन
१९२१	२०५६	ज्येष्ठ	१९७५	२११०	आषाढ़

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास
१९७८	२११३	वैशाख	१९८६	२१२२	ज्येष्ठ
१९८१	२११६	आश्विन	१९८९	२१२५	चैत्र
१९८३	२११९	श्रावण	१९९१	२१२७	श्रावण

इस प्रकार अधिमासका परिज्ञान कर जिस मासकी वृद्धि हो उसके अगलेवाले मासमें व्रत करना चाहिए। जैसे श्रावण मास अधिमास है तो दो श्रावणोंमेंसे पहले श्रावण मासमें व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु दूसरे श्रावणमें व्रत करना पड़ेगा।

मास-क्षय होने पर व्रतके लिए व्यवस्था

मासहानौ किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—
संवत्सरे यदि भवेन्मासो वै हीयमानकः।
पूर्वस्मिंश्च व्रतं कार्यं परस्मिन्न तु योग्यता॥

अर्थ—मासहानिमें क्या करना चाहिए? उत्तर देते हैं कि संवत्सरमें यदि मासहानि हो तो पूर्वके महीनेमें व्रत करना चाहिए, आगेवाले महीनेमें नहीं। व्रतकी योग्यता पूर्वमासमें ही होती है, उत्तरमासमें नहीं।

विवेचन—जैसे अधिमास होता है, वैसे ही क्षयमास भी होता है। कभी-कभी वर्षमें एक मासकी हानि हो जाती है। स्पष्टमानसे जिस समय चान्द्रमासके प्रमाणसे सौरमासका मान कम होता है, तब एक चान्द्रमासमें दो संक्रान्तियोंके सम्भव होनेसे क्षयमास होता है। वह सौरमास अल्प, तभी संभव है जब स्पष्ट रविकी गति अधिक हो। क्योंकि अधिक गति होनेपर थोड़े समयमें राशिभोग होता है। क्षयमास प्रायः कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और पौषमें ही होता है। क्षयमास जिस वर्षमें होता है, उस वर्षमें अधिमास भी होता है। मान लिया कि भाद्रपद अधिमास है, उस समय अधिशेष बहुत कम रहता है और क्रमशः घटता भी है, क्योंकि सूर्य अपने नीचके आसन्न है। अधिशेष जब घटते-घटते

शून्य हो जाता है, तब क्षयमास होता है। कारण स्पष्ट है कि चान्द्र-मासले रविवास कम होता है। क्षयमासके अनन्तर अधिमास शेष एक चान्द्रमासके आसन्न पहुँच जाता है। इसके पश्चात् जब सूर्य पुनः अपने उच्चके आसन्न पहुँचता है, तब सौरमासके अल्प होनेके कारण पुनः अधिमास हो जाता है। इस प्रकार क्षयमास होनेपर दो अधिमास होते हैं। यदि पहला अधिमास भाद्रपदको मान लिया जाय तो दूसरा अधि-मास चैत्रमें पड़ेगा तथा अगहनमें क्षयमास होगा। क्षयमास १४१ वर्षके अनन्तर आता है। पिछला क्षयमास वि० सं० १९३६ में पड़ा था अब अगला वि० सं० २०२० में कार्त्तिकमें पड़ेगा। कभी-कभी क्षयमास १९ वर्षोंके बाद भी पड़ता है। यदि समय पर क्षयमास पडा तो ४३३ वर्षोंके पश्चात् भी आता है।

यह नियम है कि जिस वर्ष क्षय मास पड़ेगा, उस वर्ष दो अधि-मास अवश्य होंगे। क्षयमास पड़नेपर व्रत पिछले महीनेसे किया जाता है। मान लिया कि कार्त्तिक क्षयमास है। एकावली व्रत करनेवालेको कार्त्तिकके व्रत आश्विनमे ही कर लेने होंगे अथवा नक्षत्र आदि व्रत जो मासिक व्रत हैं, वे कार्त्तिकका अभाव होनेपर आश्विनमें किये जायँगे। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिस वर्ष क्षयमास होता है, उस वर्ष अधिमास पहले अवश्य पड़ता है और यह अधिमास भी नीचासन्न सूर्यके होनेपर अर्थात् भाद्रपद या आश्विनमे आयगा। इस प्रकार एक महीनेके बढ़ जानेसे तथा एक महीना घट जानेसे कोई विशेष गड़बड़ी नहीं होती है। व्रतके लिए बारह मास प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु विचारणीय बात यह है कि अधिमास पडनेपर भी व्रतके लिए तो एक ही मास ग्राह्य है, दूसरा मास तो मलमास होनेके कारण त्याज्य है। अत-एव क्षय मास होनेपर मासिक व्रत करनेवालोंको एक महीनेमें दुगुने व्रत करने पड़ेंगे।

दुगुने व्रत करनेके लिए क्षयमासके पहिलेका महीना ही लिया जायगा। क्षयमाससे आगेका महीना नहीं। जिन व्यक्तियोंको मासिक

व्रत प्रारम्भ करना है, उन्हें क्षयमासके पूर्ववर्त्ती महीनेसे व्रत प्रारम्भ करने चाहिए।

तिथिका प्रमाण

तिथिप्रमाणं कियदित्युक्ते चाह—चतुःपञ्चाशात्‌घटीभ्यो न्यूना तिथिर्न भवति, अधिका तु सप्तषष्ठिघटीप्रमाणं कथितम्। यतः जैनानां त्रिमुहूर्त्तोदयवर्त्तिनीतिथिः सम्मता, अधिकतिथेः प्रमाणं तु सप्तषष्ठिघटी, अहोरात्रप्रमाणं षष्ठिघटीमतमतः सप्तघटिकाभ्योऽधिका पारणादिने पारणा न कर्त्तव्या, यदा तु चतुः, पञ्च घटिकाप्रमाणं अपरदिने तिथिः तदा तस्मिन्नेव दिने पारणा कार्या, नान्यत्र।

अर्थ—तिथिका प्रमाण कितना होता है? इस प्रकारका प्रश्न करने पर आचार्य उत्तर देते हैं—प्रत्येक तिथि ५४ घटीसे कम और ६७से अधिक नहीं होती है। जैनाचार्योंने उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिका मान व्रतके लिए ग्राह्य बताया है। तिथिका अधिकतम मान ६७ घटी होता है। अहोरात्रका प्रमाण ६० घटी माना जाता है, अतः पहले दिन कोई भी तिथि ६० घटीसे अधिक नहीं हो सकती। अगले दिन वृद्धि होनेपर वह तिथि अधिक-से-अधिक ७ घटी प्रमाण रहेगी। ऐसी अवस्था में उस दिन व्रतकी पारणा नहीं की जायगी, किन्तु उस दिन भी व्रत रखना होगा। यदि वृद्धिगत तिथि छः घटीसे अल्प प्रमाण है तो उस दिन पारणा की जायगी, अन्य दिन नहीं।

विवेचन—गणितके अनुसार तिथिका प्रमाण अधिकसे अधिक ६७ घटी और कमसे कम ५४ घटी आता है। ५४ घटी प्रमाणसे अल्प घटी प्रमाण वाली तिथिका ह्रास या क्षय माना जाता है। यद्यपि सूर्योदयकाल में कम ही तिथियाँ ५४ घटी या इससे अधिक मिलेंगी; क्योंकि एक तिथिकी समाप्ति होनेपर दूसरी तिथिका आरम्भ हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक तिथिका मान गणितसे ६० घटी नहीं आता

है, जिससे सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयकाल तक एक ही तिथि रह सके। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मध्यम मानानुसार एक ही दिनमें तीन तिथियाँ भी रह जाती हैं तथा कभी दो दिन तक भी एक ही तिथि रह सकती है। आचार्यने ऊपर इसी तिथि-व्यवस्थाको बतलाया है।

व्रततिथि-निर्णयके सम्बन्धमें शंका-समाधान

अत्र संशयं करोति "पद्मदेवैः प्रायो धर्मेषु कर्मसु" इत्यत्र प्राय इत्यव्ययं कथितम्, तस्य कोऽर्थः, उच्यते देशकालादिभेदात् तिथिमानं ग्राह्यम्।

अर्थ—यहाँ कोई शंका करता है कि पद्मदेवने तिथिका मान छः घटी बतलाते हुए कहा है कि प्रायः धर्मकृत्योंमें इसी तिथिमानको ग्रहण करना चाहिए। यहाँ प्रायः शब्द अव्यय है, इसका क्या अर्थ है? क्या छः घटीसे हीनाधिक प्रमाण भी व्रतके लिए ग्रहण किया गया है? आचार्य उत्तर देते हैं—देश, काल आदिके भेदसे तिथिमान ग्रहण करना चाहिए, इस बातको दिखलानेके लिए यहाँ प्रायः शब्द ग्रहण किया है।

विवेचन—तिथिका मान प्रत्येक स्थानमें भिन्न होता है। अक्षांश और देशान्तरके भेदसे प्रत्येक स्थानमें तिथिका प्रमाण पृथक् होगा। पञ्चांगमें जो तिथिके घटी, पल, विपल आदि लिखे रहते हैं, वे जिस स्थानका पञ्चांग होता है, वहाँके होते हैं। अपने यहाँके घटी, पल निकालनेके लिए देशान्तर-संस्कार करना पड़ता है। इसका नियम यह है कि पञ्चांग जिस स्थानका हो उस स्थानके रेखांशके साथ अपने स्थानके रेखांशका अन्तर कर लेना चाहिए। अंशात्मक जो अन्तर हो उसे चारसे गुणा करनेपर मिनट, सेकण्ड रूप काल आता है। इसका घट्यात्मक काल निकालकर पञ्चांगके घटी, पलोंमें संस्कार कर देनेसे स्थानीय तिथि के घटी, पल निकल आते हैं। संस्कार करनेका नियम यह है कि पञ्चांग-स्थानका रेखांश अधिक हो और अपने स्थानका रेखांश कम हो तो ऋण-संस्कार, और अपने स्थानका रेखांश अधिक तथा पञ्चांग स्थानका रेखांश

कम हो तो धन संस्कार करना चाहिए। उदाहरण—विश्वपञ्चांगमें बुध वारको अष्टमीका प्रमाण १० घटी १५ पल दिया है। हमें देखना यह है कि आरामें बुधवारको अष्टमी तिथि कितनी है—

बनारस—पञ्चांग निर्माणका स्थान, का रेखांश ८३।० है और अपने स्थान आराका रेखांश ८४।४० है। इन दोनोंका अन्तर किया—(८४।४०)—(८३।०)=१।४०। इसको ४ से गुणा किया—१।४० × ४= ६।४० मिनट, सैकण्ड आदि। ६ मिनट और ४० सैकण्डके १६ पल ४० विपल हुए। आराके रेखांशसे पञ्चांगस्थान बनारसका रेखांश कम है, अतः वहाँके तिथ्यादि मानमें धन-संस्कार करना चाहिए। अतः (१०। १५) + (०।१६।४०)=१०।३१।४० अर्थात् आरामें बुधवारको अष्टमी १० घटी ३१ पल ४० विपल हुई। यदि यही तिथि-मान आगरामें निकालना है तो—

आगराका रेखांश ७८।१५ और बनारसका रेखांश ८३।० है, दोनों का अन्तर किया (८३।०)—(७८।१५)=४।४५, ४।४५ × ४=१९।० मिनट। इसके घट्यादि बनाये। ०।४७।३० हुए। इष्ट स्थानका रेखांश पंचांगके रेखांशसे अल्प है, अतः पंचांगके घटी, पलोंमें ऋण संस्कार किया। (१०।१५)—(०।४७।३०)=९।२७।३०; आगरामें बुधवारको अष्टमी तिथिका प्रमाण ९ घटी २७ पल ३० विपल हुआ। कलकत्तामें अष्टमीका प्रमाण—

कलकत्ताका रेखांश (८८।२४)—बनारसका रेखांश (८३।०)=५।२४। ५।२४ × ४=२१।३६। इसका घट्यात्मक मान ५३।५० हुआ। इसको बनारसके घटी, पलोंमें जोड़ा

१०।१५
०।५३।५०
११।८।५० तिथिका मान कलकत्तामें हुआ।

अपने स्थानके तिथिमानको निकालनेके लिए नीचे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंके रेखांश दिये जाते हैं। जिससे कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थानके पञ्चांग परसे अपने यहाँके तिथिमानको निकाल सकता है।

रेखांश-बोधक सारिणी

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
१	अजमेर	राजपूताना	७४'४२
२	अमरावती	बरार	७७'४७
३	अम्बाला	पंजाब	७६'५२
४	अमरोहा	यू० पी०	७८'३१
५	अमृतसर	पंजाब	७४'४८
६	अयोध्या	यू० पी०	८२'१९
७	अलवर	राजपूताना	७६'३८
८	अलीगढ़	यू० पी०	७८'६
९	अहमदाबाद	बम्बई	७२'४०
१०	आगरा	यू० पी०	७८'१५
११	आरा	विहार	८४'४०
१२	आसाम	आसाम	९३'०
१३	इटारसी	सी० पी०	७०'५१
१४	इन्दौर	मध्यभारत	७५'५०
१५	इलाहाबाद	यू० पी०	८१'५०
१६	उज्जैन	ग्वालियर स्टेट	७५'४३
१७	उदयपुर	राजपूताना	७३'४३
१८	कटनी	सी० पी०	८०'२७
१९	काठियावाड़	गुजरात	७१'०
२०	कर्णाटक	दक्षिण भारत	७८'०
२१	कराँची	सिन्ध	६७'४
२२	कल्याण	बम्बई	७३'१०
२३	कलकत्ता	बंगाल	८८'२४
२४	काञ्जीवरम्	मद्रास	७९'४५
२५	कानपुर	यू० पी०	८०'२४

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
२६	कारकल	मद्रास	७९'४०
२७	कालीकट	,,	७५'५९
२८	किशनगढ़	जैसलमेर	७०'४७
२९	किशनगढ़	राजपूताना	७४'५५
३०	कोटा राज्य	राजपूताना	७५'५२
३१	कोलूर	मद्रास	७४'५३
३२	कोल्हापुर	,,	७४'१६
३३	खण्डवा	सी० पी०	७६'२३
३४	खुरजा	यू० पी०	७७'५०
३५	गया	बिहार	८५'०
३६	ग्वालियर	ग्वालियर	७८'१०
३७	गाजियाबाद	यू० पी०	७७'२८
३८	गाजीपुर	,,	८३'३५
३९	गुजरात	गुजरात	७२'३०
४०	गुजरानवाला	पंजाब	७४'१४
४१	गोरखपुर	यू० पी०	८३'२४
४२	गोहाटी	आसाम	९१'४७
४३	चटगाँव	बंगाल	९२'५३
४४	चिदम्बरम्	मद्रास	७९'४४
४५	चुनार	यू० पी०	८२'५६
४६	छपरा	विहार	८४'४७
४७	छोटानागपुर	,,	८५'०
४८	जब्बलपुर	सी० पी०	७९.५९
४९	जैपुर राज्य	राजपूताना	७५'५२
५०	जैसलमेर राज्य	,,	७०'५७
५१	जोधपुर राज्य	,,	७३'४

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
५२	जौनपुर	यू० पी०	८२'४४
५३	झालरापाटन	राजपूताना	७६'१२
५४	झाँसी	यू० पी०	७८'३७
५५	टौंक राज्य	राजपूताना	७५'५०
५६	ट्रावंकौर	मद्रास	७७'०
५७	डालटेनगंज	विहार	८४'१०
५८	डेराइस्माइलखाँ	पंजाब	७०'५२
५९	डेरागाजीखाँ	,,	७०.५२
६०	ढाका	बंगाल	९०'२६
६१	तिरूपती	मद्रास	७९'२०
६२	त्रिचनापल्ली	,,	७८'४६
६३	तजौर	,,	७९'१०
६४	देहली	देहली	७७'१२
६५	देहरादून	यू० पी०	७८'५
६६	दौलताबाद	हैदराबाद	७५'१५
६७	धोलपुर राज्य	राजपूताना	७७'५३
६८	नागपुर	सी० पी०	७९'९
६९	नासिक	बम्बई	७३'५०
७०	पटना	विहार	८५'१३
७१	पानीपत	पंजाब	७७'१
७२	पूना	बम्बई	७२'५५
७३	प्रतापगढ	राजपूताना	७४'४०
७४	फतेहपुर	,,	७५'२
७५	फतेहपुर	यू० पी०	७७'४२
७६	फरुखाबाद	,,	७९'३७
७७	फलटन	बम्बई	७४'२९

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
७८	फिरोजपुर	पंजाब	७४'४०
७९	फैजाबाद	यू० पी०	८२'१२
८०	बड़ोच	बम्बई	७३'०
८१	बडौदा	,,	७३'२०
८२	बद्रीनाथ	यू० पी०	७९'३२
८३	बनारस	,,	८३'०
८४	बम्बई	बम्बई	७२'५४
८५	बर्धा	सी० पी०	७८'३९
८६	बरार	,,	७७'०
८७	बरेली	यू० पी०	७९'३०
८८	बलिया	,,	८४'११
८९	बस्ती	,,	८२'४६
९०	बहराईच	,,	८१'३८
९१	बिमलीपट्टम	मद्रास	८३'३०
९२	बिलासपुर	सी० पी०	८२.१३
९३	बीकानेर	राजपूताना	७३'२
९४	बुदेलखंड	सी० पी०	८०'०
९५	बून्दी	राजपूताना	७५'४१
९६	बैंगलोर	मैसूर	७७'३८
९७	भरतपुर राज्य	राजपूताना	७७'३०
९८	भागलपुर	विहार	८७'२
९९	भावनगर	बम्बई	७२'११
१००	भुसावल	,,	७५'४७
१०१	भेलसा	ग्वालियर	७७'५१
१०२	भोपाल	सी० पी०	७७'३६
१०३	मथुरा	यू० पी०	७७'४४

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
१०४	मद्रास	मद्रास	८०'१७
१०५	मनीपुर	आसाम	८५'३०
१०६	मदुरा	मद्रास	७८'१०
१०७	महोवा	यू० पी०	७९'५५
१०८	मालवा	मध्यभारत	७५'३०
१०९	मिरजापुर	यू० पी०	८२'२
११०	मुजफ्फरनगर	,,	७७'४४
१११	मुजफ्फरपुर	विहार	८५'२७
११२	मुर्शिदाबाद	बंगाल	८८'१९
११३	मुरादाबाद	यू० पी०	७८.४९
११४	मुरार	ग्वालियर	७८'११
११५	मुल्तान	पंजाब	७१'३१
११६	मेरठ	यू० पी०	७७'४५
११७	मैंगलूर	मद्रास	७४'५३
११८	मैनपुरी	यू० पी०	७९'३
११९	मैसूर	मैसूर	७६'४२
१२०	रतलाम	मध्यभारत	७५'७
१२१	राजकोट	बम्बई	७०'५६
१२२	राजनादगाँव	सी० पी०	८१'५
१२३	रायगढ़	,,	८३'२६
१२४	रायपुर	,,	८१'४१
१२५	रावलपिण्डी	पंजाब	७३'६
१२६	राँची	विहार	८५'२३
१२७	रुड़की	यू० पी०	७७'५३
१२८	रुहेलखण्ड	,,	७९'०
१२९	लखनऊ	,,	८०'५९

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
१३०	ललितपुर	यू० पी०	७८'२८
१३१	लश्कर	ग्वालियर	७८'१०
१३२	लाहौर	पंजाब	७४'२६
१३३	लुधियाना	,,	७५'५४
१३४	विजगापट्टम	मद्रास	७३'२०
१३५	विजयनगर	,,	७६'३०
१३६	व्यावर	मारवाड़	७४'२१
१३७	शाहजहाँपुर	यू० पी०	७९'२७
१३८	शिमला	पंजाब	७७'१३
१३९	शिवपुरी	ग्वालियर	७७'४४
१४०	श्रीनगर	काश्मीर	७४'५१
१४१	सतारा	बम्बई	७४'१
१४२	सहारनपुर	यू० पी०	७७'२३
१४३	सागर	सी० पी०	७८'५०
१४४	सांगली	बम्बई	७४'३६
१४५	सिरोही	राजपूताना	७२'५४
१४६	सिलहट	आसाम	९१'५४
१४७	सिलीगुड़ी	बंगाल	८८'२५
१४८	सिवनी	सी० पी०	७९'३५
१४९	सूरत	बम्बई	७२'५२
१५०	सोलापुर	,,	७५'५६
१५१	हुब्बली	,,	७२'१२
१५२	हैदराबाद	दक्षिणभारत	७८'३०
१५३	होशंगाबाद	सी० पी०	७०'४५

मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतोंका स्वरूप

मुकुटसप्तमी तु श्रावणशुक्लसप्तम्येव ग्राह्या, नान्या तस्याम् आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य मुनिसुव्रतस्य च पूजां

विधाय कण्ठे मालारोपः। शीर्षमुकुटश्च कथितमागमे। भाद्रपदशुक्लासप्तमीव्रतमागमे निर्दोषसप्तमीव्रतं कथितम्। सप्तवर्षावधिर्यावत् अनयोः व्रतयोः विधानं कार्यम्।

अर्थ—श्रावणशुक्ला सप्तमीको ही मुकुट सप्तमी कहा जाता है, अन्य किसी महीनेकी सप्तमीका नाम मुकुट सप्तमी नहीं है। इसमें आदिनाथ अथवा पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथका पूजन कर जयमालाको भगवान्‌का आशीर्वाद समझकर गलेमें धारण करना चाहिए। इस व्रतको आगममें शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत भी कहा गया है।

भाद्रपद शुक्ला सप्तमीके व्रतको आगममें निर्दोष सप्तमी व्रत कहा जाता है। इस व्रतमें भी भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करनी चाहिए। सात वर्षतक इन दोनों व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिए। पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—आगममें श्रावण शुक्ला सप्तमी और भाद्रपद शुक्ला सप्तमी इन दोनो तिथियोंके व्रतका विधान मिलता है। श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथिके व्रतको मुकुटसप्तमी या शीर्षमुकुट सप्तमी कहा गया है। इस तिथिको व्रत करनेवालेको षष्ठी तिथिसे ही संयम ग्रहण करना चाहिए। षष्ठी तिथिको प्रातःकाल भगवान्‌की पूजा, अभिषेक करके एकाशन करना चाहिए। मध्याह्नकालके सामायिकके पश्चात् भगवान् की प्रतिमा या गुरुके सामने जाकर संयमपूर्वक व्रत करनेका संकल्प करना चाहिए। चारों प्रकारके आहारका त्याग सोलह प्रहरके लिए भोजनके समय ही कर देना चाहिए।

सप्तमीको प्रातःकाल सामायिक करनेके पश्चात् नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर पूजा-पाठ, स्वाध्याय, अभिषेक आदि क्रियाओंको करना चाहिए। पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी पूजा करनेके उपरान्त जयमालाको अपने गलेमें धारण करना चाहिए। मध्याह्नमें पुनः सामायिक करना चाहिए। अपराह्नमें चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्रका पाठ करना चाहिए। सन्ध्याकालमें सामायिक, आत्मचिन्तन और देवदर्शन आदि

क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। तीनों बारकी सामायिक क्रियाओंके अनन्तर "**ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ नमः, ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रत-नाथाय नमः**" इन दोनों मन्त्रोंका जाप करना आवश्यक है। इस मन्त्रका रातमें भी एक जाप करना चाहिए। अष्टमीको पूजन, अभिषेक और स्वाध्यायके अनन्तर उपर्युक्त मन्त्रोंका जाप कर एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्षों तक मुकुटसप्तमी व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापनकर व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

निर्दोष सप्तमी व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको करना चाहिए। इस व्रतमें षष्ठी तिथिसे संयम ग्रहण करना चाहिए। इस व्रतकी समस्त विधि मुकुटसप्तमीके ही समान है, अन्तर इतना है कि इसमें रात भी जागरणपूर्वक व्यतीत की जाती है अथवा रातके पिछले प्रहरमें अल्प निद्रा लेनी चाहिए। '**ॐ ह्रीं ह्रीं सर्वविघ्ननिवारकाय श्री शान्तिनाथस्वामिने नमः स्वाहा**' इस मन्त्रका जाप करना होगा। कषाय, राग-द्वेष-मोह आदि विकारोंका भी त्याग करना अनिवार्य है, इस व्रतको इस प्रकार करना चाहिए जिससे किसी भी प्रकारका दोष नहीं लगे। आत्मपरिणामोंको निर्मल और विशुद्ध रखनेका प्रयास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि भी सात वर्ष है, पश्चात् उद्यापन कर छोड़ देना चाहिए।

श्रवण द्वादशी व्रतका स्वरूप

श्रवणद्वादशीव्रतस्तु भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां तिथौ क्रियते। अस्य व्रतस्यावधिः द्वादशवर्षपर्यन्तमस्ति। उद्यापनानन्तरं व्रत-समाप्तिर्भवति।

अर्थ—श्रवणद्वादशी व्रत भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको किया जाता है। यह व्रत बारह वर्ष तक करना पड़ता है। उद्यापन करनेके उपरान्त व्रत की समाप्ति की जाती है।

विवेचन—श्रवण द्वादशी व्रतके दिन भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी पूजा, अभिषेक और स्तुति की जाती है। नित्यनैमित्तिक पूजा-पाठोंके

अनन्तर गाजे-बाजेके साथ भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी पूजा करनी चाहिए। इस व्रतमें चार बार—तीनों सन्ध्याओं और रातमें लगभग दस बजे 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्ल्रूं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रायः इस द्वादशी तिथिको श्रवण नक्षत्र भी पड़ता है, इसी कारण इस व्रतका नाम श्रवणद्वादशी पड़ा है। क्योंकि यह द्वादशी श्रवण नक्षत्रसे युक्त होती है। इस व्रतकी सामान्य विधि अन्य व्रतोंके समान ही है, परन्तु विशेष यह है कि यदि श्रवण नक्षत्र त्रयोदशीको पड़ता हो या एकादशीमें ही आ जाता हो तथा द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका अभाव हो तो द्वादशीके व्रतके साथ श्रवण नक्षत्रके दिन भी व्रत करना चाहिए। यों तो प्रायः द्वादशी तिथिको श्रवण आ ही जाता है। ऐसा बहुत कम होता है, जब श्रवण एक दिन आगे या एक दिन पीछे पड़ता है। द्वादशी तिथि व्रतके लिए छह घटी प्रमाण होनेपर ही ग्राह्य है।

यदि कभी ऐसी परिस्थिति आवे कि श्रवण द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र न मिले, तो उस समय अस्तकालीन तिथि भी ग्रहण की जा सकती है। द्वादशीको प्रातःकालमें श्रवण नक्षत्रका होना आवश्यक नहीं है, किसी भी समय द्वादशी और श्रवणका योग होना चाहिए। ज्योतिष-शास्त्रमें भाद्रपद शुक्ला द्वादशी और श्रवण नक्षत्रके योगको बहुत श्रेष्ठ बताया है। इसका कारण यह है कि श्रावण मासमें पूर्णिमाको श्रवण नक्षत्र पड़ता है तथा भाद्रपद मासमें पूर्णिमाको भाद्रपद नक्षत्र। द्वादशी श्रवण से संयुक्त होकर विशेष पुण्यकाल उत्पन्न करती है, क्योंकि श्रवण नक्षत्र मासवाली पूर्णिमाके पश्चात् प्रथम बार द्वादशीके साथ योग करता है, चन्द्रमा नीच राशिसे आगे निकल जाता है और अपनी उच्च राशिकी ओर बढ़ता है। द्वादशी तिथिको यों तो अनुराधा नक्षत्र श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु भाद्रपद मासमें श्रवण ही श्रेष्ठतम बताया गया है। इस कारण श्रवणसे संयुक्त द्वादशी कल्याणप्रद, पुण्यकारक और जीवन मार्गमें गति देनेवाली होती है। अपनी मासान्तकी पूर्णिमाके संयोगके पश्चात् श्रवण

प्रथम बार जिस किसी तिथिसे संयोग करता है, वही तिथि श्रेष्ठ, पुण्योत्पादक और मंगलप्रद मानी जाती है। श्रवणकी यह स्थिति भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको ही आती है, अतः यह व्रत महान् पुण्यको देनेवाला बताया गया है।

श्रवणद्वादशी व्रतका माहात्म्य जैनियोंमें भी बहुत अधिक माना गया है। इस व्रतको प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी सौभाग्य-वृद्धि, सन्तान-प्राप्ति तथा अपनी ऐहिक मंगल-कामनासे करती हैं। इस व्रतकी अवधि बारह वर्ष तक मानी गयी है, बारह वर्ष तक विधिपूर्वक व्रत करनेके उपरान्त व्रतका उद्यापन करना चाहिए।

मुकुटसप्तमी, निर्दोषसप्तमी और श्रवणद्वादशी ये सब व्रत वर्षमें एक बार ही किये जाते हैं। जो तिथियाँ इनके लिए निश्चित की गयी है, उन-उन तिथियोंमें ही उन्हें सम्पन्न करना चाहिए। श्रवणद्वादशी व्रतके दिन वासुपूज्य भगवान्‌के पंचकल्याणकोंका चिन्तन करना चाहिए।

जिनरात्रिव्रतका स्वरूप

जिनरात्रिव्रतं फाल्गुनकृष्णप्रतिपदामारभ्य कृष्णपक्षचतुर्दश्यामुपवासाः वा केवलं तस्यामेवोपवास एवं नववर्षाणि यावत् वा चतुर्दशवर्षाणि।

अर्थ—जिनरात्रिव्रतमें फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ कर चतुर्दशी पर्यन्त उपवास करने चाहिए। प्रत्येक उपवासके बीचमें एक दिन पारणा करनी चाहिए। अथवा केवल फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको ही उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि ९ वर्ष या १४ वर्ष प्रमाण है। अर्थात् प्रथम विधिसे करनेपर नौ वर्षके अनन्तर उद्यापन करना चाहिए और द्वितीय विधिसे करनेपर चौदह वर्षके पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—जिनरात्रि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। प्रथम उपवास प्रतिपदाका करनेके उपरान्त द्वितीयाको पारणा,

तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको पारणा, सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नौमीको उपवास, दशमीको पारणा, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा एवं त्रयोदशी और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। इस प्रकार नौ वर्ष तक पालनकर व्रतका उद्यापन कर देना चाहिए।

दूसरी मान्यता यह है कि केवल फाल्गुन वदी चतुर्दशीको उपवास करे, मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का पञ्चामृत अभिषेक करे तथा अष्ट द्रव्यसे त्रिकाल पूजन करे। तीनों समय नियमतः सामायिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको धर्मध्यान पूर्वक जागरण सहित व्यतीत करे। 'ओं ह्रीं त्रिकाल-चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप रातको करना चाहिए तथा बृहत्स्वयंभूस्तोत्रका पाठ भी करना चाहिए। रात्रिके पूर्वार्द्धमें आलोचनापाठ पढ़ना, मध्यभागमें मन्त्रका जाप करना और अन्तिम भागमें सहस्र नामका स्मरण करना चाहिए। यह विधि विशेष रूपसे ग्राह्य है, सामान्य विधि सभी व्रतोंमें समान की जाती है, जिससे कषाय और विकथाएँ घटती हैं। उपवासके अगले दिन अतिथिको आहार करानेके उपरान्त स्वयं आहार ग्रहण करना तथा सुपात्रोंको चारों प्रकारका दान देना चाहिए। इस प्रकार १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए। इस दूसरी विधिके अनुसार व्रत वर्षमें एक बार ही किया जाता है।

मुक्तावली व्रतका स्वरूप

मुक्तावल्यास्तु नवोपवासाः भाद्रपदे शुक्ला सप्तमी, आश्विने कृष्णाष्टमी, त्रयोदशी, आश्विने शुक्ला एकादशी, कार्तिके कृष्णा द्वादशी, कार्तिके शुक्ला तृतीया, शुक्ला एकादशी, मार्गशीर्षे कृष्णैकादशी, शुक्लपक्षे तृतीया चेति नवोपवासाः स्युः।

अर्थ—मुक्तावली व्रतमें नौ उपवास प्रतिवर्ष किये जाते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको, दूसरा आश्विन कृष्णाष्टमीको, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ

कार्त्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्त्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्त्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। उपवासके पहले और अगले दिन एकाशन करना चाहिए। यह लघु मुक्तावली व्रतकी विधि है। बृहत् मुक्तावली व्रतमें कुल २५ उपवास और ९ पारणाएँ की जाती हैं।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

रत्नत्रयं तु भाद्रपदचैत्रमाघशुक्लपक्षे च द्वादश्यां धारणं चैकभक्तं च त्रयोदश्यादिपूर्णिमान्तमष्टमं कार्यम्, तदभावे यथाशक्ति काञ्जिकादिकं; दिनवृद्धौ तदधिकतया कार्यम्; दिनहानौ तु पूर्वदिनमारभ्य तदन्तं कार्यमिति पूर्वक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय व्रत भाद्रपद, चैत्र और माघ मासमें किया जाता है। इन महीनोंके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रत धारण करना चाहिए तथा एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका उपवास करना; तीन दिनका उपवास करनेकी शक्ति न हो तो कांजी आदि लेना चाहिए। रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक व्रत करना एवं एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे लेकर व्रत समाप्ति पर्यन्त उपवास करना चाहिए। यहाँपर भी तिथिहानि और तिथिवृद्धिमें पूर्व क्रम ही समझना चाहिए।

विवेचन—रत्नत्रय व्रतके लिए सर्वप्रथम द्वादशीको शुद्धभावसे स्नानादि क्रिया करके स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर जिनेन्द्र भगवान्का पूजन-अभिषेक करे। द्वादशीको इस व्रतकी धारणा और प्रतिपदाको पारणा होती है। अतः द्वादशीको एकाशनके पश्चात् चारों प्रकारके आहारका त्याग कर, विकथा और कषायोंका त्याग करे। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको प्रोषध तथा प्रतिपदाको जिनाभिषेकादिके अनन्तर किसी अतिथि या किसी दुःखित-बुभुक्षितको भोजन कराकर एक बार आहार ग्रहण करे। अपने घरमें ही अथवा चैत्यालयमें जिनबिम्बके निकट रत्नत्रय यन्त्रकी भी स्थापना करे।

द्वादशीसे लेकर प्रतिपदा तक पाँचों ही दिनोंको विशेष रूपसे धर्म-ध्यान पूर्वक व्यतीत करे। प्रतिदिन त्रैकालिक सामायिक और रत्नत्रय विधान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतको १३ वर्ष तक पालनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी उत्कृष्ट विधि है, इतनी शक्ति न हो तो वेला करे तथा आठ वर्ष व्रत करके उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम विधि है। यदि इस मध्यम विधिको सम्पन्न करनेकी भी शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको एकाशन एवं चतुर्दशीको प्रोषध करना चाहिए। यह जघन्य विधि है, इस विधिसे किये गये व्रतका तीन या पाँच वर्षके बाद उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रतमें पाँच दिन तक शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें तिथिवृद्धि या तिथिह्रास हो तो पहलेके समान व्रत व्यवस्था समझनी चाहिए। एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन अधिक और एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। व्रत तिथिका प्रमाण छः घटी ही उदयकालमें ग्रहण किया जायगा।

अनन्तव्रत विधि

अनन्तव्रते तु एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्तं त्रयोदश्यां काञ्जिकं चतुर्दश्यामुपवासस्तदभावे यथा शक्तिस्तथा कार्यम्। दिनहानिवृद्धौ स एव क्रमः स्मर्त्तव्यः।

अर्थ—अनन्त व्रतमें भाद्रपद शुक्ला एकादशीको उपवास, द्वादशीको एकाशन, त्रयोदशीको कांजी—छाछ अथवा छाछमें जौ, बाजराके आटेको मिलाकर महेरी—एक प्रकारकी कढ़ी बनाकर लेना और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। यदि इस विधिके अनुसार व्रत पालन करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके अनुसार व्रत करना चाहिए। तिथि-हानि या तिथि-वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए अर्थात् तिथि-

हानिमें एक दिन पहलेसे और तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करना होता है।

विवेचन—अनन्तव्रत भादों सुदी एकादशीसे आरम्भ किया जाता है। प्रथम एकादशीको उपवास कर द्वादशीको एकाशन करे अर्थात् मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन ग्रहण करे, सात प्रकारके गृहस्थोंके अन्तरायका पालन करे। त्रयोदशीको जिनाभिषेक, पूजन-पाठके पश्चात् छाछ या छाछमें जो, बाजराके आटेसे बनाई गई महेरी—एक प्रकारकी कढ़ीका आहार ले। चतुर्दशीके दिन प्रोषध करे तथा सोना, चाँदी या—रेशम-सूतका अनन्त बनाये, जिसमें चौदह गाँठ लगाये।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह तीर्थंकरोंके नामों का उच्चारण, दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेष्ठीके चौदह[1] गुणोंका चिन्तन, तीसरी पर उन चौदह मुनियोंका नामोच्चारण जो मति-श्रुत-अवधिज्ञानके धारी हुए हैं, चौथी पर अर्हन्त भगवान्के चौदह देवकृत अतिशयोंका चिन्तन, पाँचवीं पर जिनवाणीके चौदह पूर्वोंका चिन्तन, छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका चिन्तन, सातवीं पर चौदह मार्गणाओंका स्वरूप, आठवीं पर चौदह जीवसमासोंका स्वरूप, नौवीं पर गंगादि चौदह नदियोंका उच्चारण, दसवीं पर चौदह राजू प्रमाण ऊँचे लोकका स्वरूप, ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका, बारहवीं पर चौदह स्वरोंका, तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका एवं चौदहवीं गाँठ पर आभ्यन्तर

१. तपसिद्धि, विनयसिद्धि, संयमसिद्धि, चारित्रसिद्धि, श्रुताभ्यास, निश्चयात्मक भाव, ज्ञान, बल, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व।

२. गृहपति, सेनापति, शिल्पी, पुरोहित, स्त्री, हाथी, घोड़ा, चक्र, असि (तलवार), छत्र, दण्ड, मणि, चर्म, काकिणी। काकिणी रत्नकी विशेषता यह होती है कि इससे कठोरसे कठोर वस्तु पर भी लिखा जा सकता है, इससे सूर्यके प्रकाशसे भी तेज प्रकाश निकलता है।

चौदह प्रकारके परिग्रहसे रहित मुनियोंका चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार अनन्तका निर्माण करना चाहिए।

पूजा करनेकी विधि यह है कि शुद्ध कोरा घडा लेकर उसका प्रक्षाल करना चाहिए। पश्चात् उस घडे पर चन्दन, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओं-का लेप करना तथा उसके भीतर सोना, चाँदी या ताँबेके सिक्के रखकर सफ़ेद वस्त्रसे ढक देना चाहिए। घड़े पर पुष्पमालाएँ डालकर उसके ऊपर थाली प्रक्षाल करके रख देनी चाहिए। थालीमें अनन्त व्रतका माड़ना और यन्त्र लिखना, पश्चात् चौबीसी एवं पूर्वोक्त विधिसे गाँठ दिया हुआ अनन्त विराजमान करना होता है। अनन्तका अभिषेककर चंदनकेशरका लेप किया जाता है। पश्चात् आदिनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह भगवानोंकी स्थापना यन्त्रपर की जाती है। अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेके उपरान्त 'ॐ ह्रीं अर्हन्नमः अनन्तकेवलिने नमः' इस मन्त्रको १०८ वार पढकर पुष्प चढाना चाहिए अथवा पुष्पोंसे जाप करना चाहिए। पश्चात् 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं हं स अमृतवाहिने नमः', अनेन मन्त्रेण सुरभिमुद्रां धृत्वा उत्तमगन्धोदकप्रोक्षणं कुर्यात्' अर्थात् 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं हं स अमृतवाहिने नमः' इस मन्त्रको तीन वार पढ़कर सुरभि मुद्रा द्वारा सुगन्धित जलसे अनन्तका सिंचन करना चाहिए। अनन्तर चौदहों भगवानोंकी पूजा करनी चाहिए।

'ॐ ह्रीं अनन्ततीर्थकराय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसाय नमः सर्वशान्ति तुष्टि सौभाग्यमायुरारोग्यैश्वर्यमष्टसिद्धिं कुरु कुरु सर्वविघ्नविनाशनं कुरु कुरु स्वाहाः' इस मन्त्रसे प्रत्येक भगवान्‌की पूजाके अनन्तर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। 'ॐ ह्रीं हं स अनन्त-केवलीभगवान् धर्मश्रीवलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रको पढकर अनन्त पर चढाये हुए पुष्पोंकी आशिका एवं 'ॐ ह्रीं अर्हन्नमः सर्वकर्मबन्धनविमुक्ताय नमः स्वाहा' इस मन्त्रको पढकर शान्ति जलकी आशिका लेनी चाहिए। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अर्हं हं स अनन्तकेवलिने नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। पूर्णिमाको पूजनके पश्चात् अनन्तको गले या भुजामें धारण करे।

अनन्तव्रत हिन्दुओंमें भी प्रचलित है। उनके यहाँ कहा गया है कि "अनन्तस्य विष्णोराराधनार्थं" अर्थात् विष्णु भगवान्‌की आराधनाके लिए अनन्त चतुर्दशी व्रत किया जाता है। बताया गया है कि भादों सुदी चौदसके दिन स्नानादिके पश्चात् अर्थात् दूर्वा, तथा शुद्ध सूतसे बने और हल्दीमें रंगे हुए चौदह गाँठके अनन्तको सामने रखकर हवन किया जाता है। तत्पश्चात् अनन्तदेवका ध्यान करके शुद्ध अनन्तको दाहिनी भुजामें बाँधते हैं। इस व्रतमें प्रायः एक समय अलोना—बिना नमक—मीठा भोजन किया जाता है।

अनन्तदेवके सम्बन्धमें यह कथा प्रायः लोकमें प्रचलित है कि जिस समय युधिष्ठिर अपना सब राज-पाट हारकर वनवास कर रहे थे, उस समय कृष्ण उनसे मिलने आये। उनकी कष्टकथा सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें अनन्त-व्रत करनेकी राय दी। श्रीकृष्णके आदेशानुसार युधिष्ठिर अनन्त व्रत कर अपने समस्त कष्टोंसे मुक्ति पा गये। इस व्रतके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है।

जैनागममें प्रतिपादित अनन्त व्रतकी हिन्दुओंके अनन्त व्रतसे तुलना करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह व्रत हिन्दुओंमें जैनोंसे ही लिया गया है तथा जैनोंके विस्तृत विधिपूर्ण व्रतका यह संक्षिप्त और सरल अंश है।

मेघमाला और षोडशकारण व्रतोंकी विधि

मेघमालाषोडशकारणञ्चैतद्द्वयं समानं प्रतिपद्दिनमेव द्वयोरारम्भं मुख्यतया करणीयम्। एतावान् विशेषः षोडशकारणे तु आश्विनकृष्णा प्रतिपदा एव पूर्णाभिषेकाय गृहीता भवति, इति नियमः। कृष्णपञ्चमी तु नाम्न एव प्रसिद्धा।

अर्थ—मेघमाला और षोडशकारण व्रत दोनों ही समान हैं। दोनोंका आरम्भ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है। परन्तु षोडशकारण व्रतमें इतनी विशेषता है कि इसमें पूर्णाभिषेक आश्विन-कृष्णा प्रतिपदाको होता है, ऐसा नियम है। कृष्णा पञ्चमी तो नामसे ही प्रसिद्ध है।

विवेचन—सोलह कारण व्रत प्रसिद्ध ही है। मेघमाला व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन बदी प्रतिपदा तक ३१ दिन तक किया जाता है। व्रतके प्रारम्भ करनेके दिन ही जिनालयके आँगनमें सिंहासन स्थापित करे अथवा कलशको संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर, थालमें जिनबिम्ब स्थापित कर महाभिषेक और पूजन करे। श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत ही चन्दोवा बाँधे, मेघधाराके समान १००८ कलशोंसे भगवान्‌का अभिषेक करे। पूजापाठके पश्चात् **'ओं ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः'** इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

मेघमाला व्रतमें सात उपवास कुल किये जाते हैं और २४ दिन एकाशन करना होता है। तीनों प्रतिपदाओंके तीन उपवास, दोनों अष्टमियोंके दो उपवास एवं दोनों चतुर्दशियोंके दो उपवास इस प्रकार कुल सात उपवास किये जाते हैं। इस व्रतको पाँच वर्ष तक पालन करनेके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। सोलह कारणका व्रत भी प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, परन्तु इतनी विशेषता है कि सोलह कारणका संयम और शील आश्विनकृष्णा प्रतिपदा तक पालन करना पड़ता है तथा पञ्चमीको ही इस व्रतकी पूर्ण समाप्ति समझी जाती है। यद्यपि पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही हो जाता है, परन्तु नाममात्रके लिए पञ्चमी तक संयमका पालन करना पड़ता है।

अष्टाह्निका व्रतकी विधि

अष्टाह्निकाव्रतं कार्त्तिकफाल्गुनाषाढमासेषु अष्टमीमारभ्य पूर्णिमान्तं भवतीति। वृद्धावधिकतया भवत्येव, मध्यतिथिह्रासे सप्तमीतो व्रतं कार्यं भवतीति; तद्यथा सप्तम्यामुपवासोऽष्टम्यां पारणा नवम्यां काञ्जिकं दशम्यामवमौदार्यमित्येको मार्गः सुगमः सूचितः जघन्यापेक्षया' तदादिदिनमारभ्य। पूर्णिमान्तं कार्यः षष्ठोपवासः पद्मदेववाक्यसमादरैः भव्यपुण्डरीकैः ;

अन्यथाक्रियमाणे सति व्रतविधिर्नश्येत्। एवं सावधिकानि व्रतानि समाप्तानि।

अर्थ—अष्टाह्निका व्रत कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ मासोंके शुक्ल पक्षोंमें अष्टमीसे पूर्णिमा तक किया जाता है। तिथि-वृद्धि हो जानेपर एक दिन अधिक करना पड़ता है। व्रतके दिनोंके मध्यमें तिथिह्रास होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है। जैसे मध्यमें तिथिह्रास होनेसे सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नवमीको कांजी—छाछ, दशमीको ऊनोदर, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा, त्रयोदशीको नीरस, चतुर्दशीको उपवास, एवं शक्ति होनेपर पूर्णिमाको उपवास, शक्तिके अभावमें ऊनोदर तथा प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। यह सरल और जघन्य विधि अष्टाह्निका व्रतकी है। व्रतकी उत्कृष्ट विधि यह है कि अष्टमीसे षष्ठोपवास अर्थात् अष्टमी, नवमीका उपवास दशमीको पारणा, एकादशी और द्वादशीको उपवास त्रयोदशीको पारणा एवं चतुर्दशी और पूर्णिमाको उपवास और प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। श्री पद्मप्रभदेवके वचनोंका आदर करनेवाले भव्यजीवोंको उक्त विधिसे व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार बतायी हुई विधिसे जो व्रत नहीं करते हैं, उनकी व्रत-विधि दूषित हो जाती है और व्रतका फल नहीं मिलता। इस प्रकार सावधि व्रतोंका निरूपण पूरा हुआ।

विवेचन—कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी-से पूर्णिमा तक आठ दिन यह व्रत किया जाता है। सप्तमीके दिन व्रतकी धारणा करनी होती है। प्रथम ही श्री जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक-पूजन सम्पन्न किया जाता है, तत्पश्चात् गुरुके पास, यदि गुरु न हों तो जिन-बिम्बके सम्मुख निम्न संकल्पको पढ़कर व्रत ग्रहण किया जाता है।

व्रत ग्रहण करनेका संकल्प—

ओं अद्य भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मते मासानां मासो-त्तमे मासे आषाढमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ......वासरे.....

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे······प्रदेशे······नगरे एतत् अवसर्पिणीकालावसानचतुर्दशप्राभृतमानिमानितसकललोकव्य - वहारे श्रीगौतमस्वामिश्रेणिकमहामण्डलेश्वरसमाचरितसन्मार्गावशेषे······वीरनिर्वाणसंवत्सरे अष्टमहाप्रातिहार्यादिशोभित-श्रीमदर्हत्परमेश्वरप्रतिमासन्निधौ अहम् अष्टाह्निकाव्रतस्य संकल्पं करिष्ये। अस्य व्रतस्य समाप्तिपर्यन्तं मे सावद्यत्यागः गृहस्थाश्रमजन्यारम्भपरिग्रहादीनामपि त्यागः।

सप्तमी तिथिसे प्रतिपदा तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना आवश्यक होता है, भूमिपर शयन, संचित पदार्थोंका त्याग, अष्टमीको उपवास, रात्रिको जागरण आदि क्रियाएँ की जाती हैं।

अष्टमी तिथिको दिनमें नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल माँडकर अष्टद्रव्योंसे पूजा की जाती है। पूजा-पाठके अनन्तर नन्दीश्वर व्रतकी कथा पढनी चाहिए। 'ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए। नवमीको 'ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञायै नमः' इस महामन्त्रका जाप; दशमीको 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप; एकादशीको 'ओं ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप; द्वादशीको 'ओं ह्रीं पञ्चमहालक्षणसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप, त्रयोदशीको 'ओं ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप; चतुर्दशीको 'ओं ह्रीं सिद्धचक्राय-नमः' मन्त्रका जाप एवं पूर्णमासीको 'ओं ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

व्रतकी धारणा और समाप्तिके दिन णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। व्रत समाप्तिके दिन निम्न संकल्प पढकर सुपाड़ी-पैसा या नारियल-पैसा चढ़ाकर भगवान्को नमस्कार कर घर आना चाहिए—

'ओं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे शुभे श्रावणमासे कृष्णपक्षे अद्य प्रतिपदायां श्रीमदर्हत्प्रतिमासन्निधौ पूर्वं यद्व्रतं गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये—अहम्। प्रमादाज्ञानवशात्

व्रते जायमानदोषाः शान्तिमुपयान्ति—ओं ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा । श्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु आनन्दभक्तिः सदास्तु, समाधिमरणं भवतु, पापविनाशनं भवतु—ओं ह्रीं असि आ उ सा य नमः । सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

दैवसिक व्रतोंका वर्णन

दैवसिकानि कानि भवन्ति ? त्रिमुखशुद्धिद्वारावलोकन-जिनपूजापात्रदानव्रतप्रतिमायोगादीनि व्रतानि भवन्ति ।

अर्थ—दैवसिक कौन कौन व्रत हैं ? त्रिमुखशुद्धि, द्वारावलोकन, जिनपूजा, पात्रदान, प्रतिमायोग आदि दैवसिक व्रत हैं ।

त्रिमुखशुद्धि व्रतकी विधि

किंनाम त्रिमुखशुद्धिव्रतम् ? त्रिमुखशुद्धिव्रते पात्रदानानन्तरं भोजनग्रहणं भवति । तदभावे, आहारस्याप्यभाव एषः मुखशुद्धिसंज्ञको नियमो दैवसिको भवति ।

अर्थ—त्रिमुखशुद्धि व्रत किसे कहते हैं ? आचार्य उत्तर देते हैं कि त्रिमुखशुद्धि व्रतमें पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण किया जाता है । यदि द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्रकी प्राप्ति न हो तो उस दिन आहार नहीं लिया जाता है । यह त्रिमुखशुद्धि संज्ञक नियम दिनमें ही किया जाता है, अतः यह दैवसिक व्रत कहलाता है ।

विवेचन—त्रिमुखशुद्धि व्रतका वास्तविक अभिप्राय यह है कि पात्र-दानके अनन्तर भोजन ग्रहण करनेका नियम करना और दिनमें तीनों वार—प्रातः, मध्याह्न और अपराह्नमें द्वारपर खड़े होकर पात्रकी प्रतीक्षा करना तथा पात्र उपलब्ध हो जाने पर आहार दान देनेके उपरान्त आहार ग्रहण करना होता है । यह व्रत कभी भी किया जा सकता है, इसके लिए किसी तिथि या मासका विधान नहीं है । जब तक पात्रदान नहीं दिया जाता है, उपवास करना पड़ता है ।

द्वारावलोकन व्रत

द्वारावलोकनव्रते तु दिनयाममर्यादा कार्या, द्वौ यामौ यावत् द्वारमवलोकयामि तावत् मुनिरागतश्चेत् तस्मै आहारं दत्वा पश्चादाहारं ग्रहीष्यामि। इति द्वारावलोकनव्रतम्।

अर्थ—द्वारावलोकन व्रतमें दिनमें दो प्रहरोंका नियम करके द्वार पर खड़े होकर मुनिराजके आनेकी प्रतीक्षा करना, यदि इस बीचमें मुनिराज आ जावें तो उन्हें आहार करानेके पश्चात् आहार ग्रहण करना होता है। इस प्रकार द्वारावलोकन व्रत पूर्ण हुआ।

विवेचन—द्वारावलोकन व्रतमें दो प्रहरका नियमकर द्वारपर खड़े हो जाना और मुनि या ऐलक, क्षुल्लकके आनेकी प्रतीक्षा करना। यदि दो प्रहरोंके मध्यमें मुनिराज आ जायँ तो उन्हें आहार करा देनेके पश्चात् आहार ग्रहण करना। मुनिराजोंके न मिलनेपर ऐलक या क्षुल्लकको आहार करा देना होता है।

इस व्रतमें दो प्रहरका ही नियम रहता है, यदि दो प्रहरतक कोई पात्र नहीं मिले तो स्वयं भोजन कर लेना चाहिए। दो प्रहरतक निरन्तर पात्रकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, विधिपूर्वक नवधाभक्तिसे युक्त होकर पात्रको भोजन कराया जाता है। पात्रके न मिलनेपर किसी साधर्मी भाईको भी भोजन करानेके उपरान्त इस व्रतवालेको आहार ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई भी उपयुक्त अतिथि उस दिन न मिले तो दीन-बुभुक्षितोंको ही आहार कराना उचित होता है। यद्यपि दो प्रहरके अनन्तर व्रतकी मर्यादा पूरी हो जाती है, फिर भी किसी भी प्रकारके पात्रको आहार करानेके उपरान्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिए।

जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रतोंका स्वरूप

जिनपूजाप्यष्टद्रव्यैः यदा विधानेन परिपूर्णा भवेत् तदाहारं ग्रहीष्यामि, इति संकल्पः। जिनपूजाविधानाख्यव्रतम्। एवमेव

जिनदर्शननियमस्तथा गुरुभक्तिनियमस्तथा शास्त्रभक्तिनियमश्च कार्यः ।

अर्थ—इस प्रकारका नियम करना कि विधिपूर्वक अष्टद्रव्योंसे जिन-पूजा पूर्ण करनेपर आहार ग्रहण करूँगा, जिनपूजा विधान व्रत है। इसी प्रकार जिनदर्शन करनेका नियम करना, गुरुभक्ति करनेका नियम करना एवं शास्त्रभक्ति—स्वाध्याय करनेका नियम करना, जिनदर्शन, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रत हैं।

विवेचन—अच्छे कार्य करनेके नियमको व्रत कहते हैं, व्रतकी इस परिभाषाके अनुसार जिनपूजा, जिनदर्शन, गुरुभक्ति, शास्त्रस्वाध्याय आदि के नियमोंको भी व्रत कहा गया है। इन व्रतोंमें इतना ही संकल्प करना पड़ता है कि पूजा, दर्शन, गुरुभक्ति या शास्त्र स्वाध्यायको सम्पन्न करके भोजन ग्रहण करूँगा। अपने संकल्पके अनुसार उपर्युक्त धार्मिक कृत्योंको सम्पन्न करनेपर आहार ग्रहण किया जाता है। इन व्रतोंके लिए कोई तिथि या मास निश्चित नहीं है, बल्कि सदा ही देवपूजा, देवदर्शन, गुरु-भक्ति और स्वाध्याय जैसे धार्मिक कार्योंको करना चाहिए।

आगममें जीवन भरके लिए ग्रहण किये गये व्रतकी यम संज्ञा और अल्पकालिक व्रतकी नियम संज्ञा बतायी गयी है। जो जीवन भरके लिए उक्त धार्मिक कृत्योंका नियम करनेमें असमर्थ हों उन्हें कुछ समयके लिए अवश्य नियम करना चाहिए। यों तो श्रावकमात्रका कर्त्तव्य है कि वह अपने दैनिक षट् कर्मोंका पालन करे। देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानके कार्य प्रत्येक गृहस्थके लिए करणीय हैं, अतः इनका नियम जीवन भरके लिए कर लेना आवश्यक है। इन करणीय कार्योंके किये बिना कोई श्रावक नहीं कहा जा सकता है। आचार्योंने इन आवश्यक कर्त्तव्योंकी व्रत संज्ञा इसीलिए बतलायी है कि जो सर्वदाके लिए इनका पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझते हैं वे भी इनके पालन करनेकी ओर झुकें। जब एक बार इन कृत्योंकी ओर प्रवृत्ति हो जाय तथा आत्मा अन्तर्मुखी हो जाय तो फिर इन व्रतोंके पालनेमें कोई भी कठिनाई नहीं है।

दैनिक षट्कर्म करनेसे आत्मामें अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है तथा आत्मा शुभोपयोग रूप परिणतिको प्राप्त होता है। बात यह है कि आत्माकी तीन प्रकारकी परिणतियाँ होती हैं—शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग रूप। चैतन्य, आनन्द रूप आत्माका अनुभव करना, इसे स्वतन्त्र अखण्ड द्रव्य समझना और पर-पदार्थोंसे इसे सर्वथा पृथक् अनुभव करना शुद्धोपयोग है। कषायोंको मन्द करके अर्थात् भक्ति, दान, पूजा, वैयावृत्य, परोपकार आदि कार्य करना शुभोपयोग है। पूजा, दर्शन, स्वाध्याय आदिसे उपयोग—जीवकी प्रवृत्ति विशेष शुद्ध नहीं होती है, शुभ रूप हो जाती है। तीव्र कषायोदय परिणाम, विषयोंमें प्रवृत्ति, तीव्र विषयानुराग, आर्तपरिणाम, असत्य भाषण, हिंसा, अपकार आदि कार्य अशुभोपयोग हैं। जिनपूजाव्रत, जिनदर्शनव्रत, गुरुभक्तिव्रत एवं स्वाध्याय व्रत करनेसे जीवको शुभोपयोगकी प्राप्ति होती है तथा कालान्तरमें शुद्धोपयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। और आत्मबोध भी प्राप्त होता है, जिससे राग-द्वेष, मोह आदि दूर किये जा सकते हैं। अहंकार और ममकार जिनके कारण इस जीवको संसारमें अनादिकालसे भ्रमण करना पड़ रहा है, दूर किये जा सकते हैं। अतः उपर्युक्त व्रतोंका अवश्य पालन करना चाहिए।

पात्र-दान और प्रतिमायोग व्रत का स्वरूप

प्रतिदिनं पात्रदानं कार्यम्। यदि पात्रदानं न स्यात्तदा रसपरित्यागः कार्यः। प्रतिमायोगः कायोत्सर्गादिकः यथाशक्ति नियमः दैवसिकः कार्यः इत्यादीनि दैवसिकव्रतानि।

अर्थ—प्रतिदिन पात्रदान करनेका नियम लेना पात्रदान व्रत है। यदि प्रतीक्षा और द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्र नहीं मिले तो रसपरित्याग करना चाहिए।

शक्तिके अनुसार कायोत्सर्ग आदिका नियम दिनके लिए लेना प्रतिमायोग व्रत है। इस प्रकार दैवसिक व्रतोंका पालन करना चाहिए। उपर्युक्त त्रिमुखशुद्धि आदि सभी व्रत दैवसिक हैं

विवेचन—गृहस्थको अपनी अर्जित सम्पत्तिमेंसे प्रतिदिन दान देना आवश्यक है। जो गृहस्थ दान नहीं देता है, पूजा-प्रतिष्ठामें सम्पत्ति ख़र्च नहीं करता है, उसकी सम्पत्ति निरर्थक है। धनकी सार्थकता धर्मोन्नतिके लिए धन व्यय करनेमें ही है, भोगके लिए ख़र्च करनेमें नहीं। अपना उदर पोषण तो शूकर-कूकर सभी करते हैं, यदि मनुष्य जन्म पाकर भी हम अपने ही उदर-पोषणमें लगे रहे तो हम शूकर-कूकरसे भी बदतर हो जायँगे। जो केवल अपना पेट भरनेके लिए जीवित हैं, जिसके हाथसे दान-पुण्यके कार्य कभी नहीं होते हैं, जो मानव सेवामें कुछ भी ख़र्च नहीं करता है, दिन-रात जिसकी तृष्णा धन एकत्रित करनेके लिए बढ़ती जाती है, ऐसे व्यक्तिकी लाशको कुत्ते भी नहीं खाते हैं। अतएव प्रत्येक गृहस्थके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक दान दे तथा कुछ तपश्चर्या भी करे।

वास्तविक तप तो इच्छाओंका रोकना ही है, या दिनको कुछ समयकी अवधिकर कायोत्सर्ग करना भी तप है। अभ्यासके लिए कायोत्सर्ग आदिका भी नियम करना तथा अपनी भोगोपभोगकी लालसाओंको घटाना जीवनको उन्नतिकी ओर ले जाना है।

नैशिक व्रत

नैशिकानि चतुराहारविवर्जनं स्त्रीसेवनविवर्जनं रात्रिभुक्तिविवर्जनञ्चेत्यादीनि; खाद्य-स्वाद्य-लेह्यपेयभेदानि चतुर्विधान्यशनानि त्याज्यानि, चैतत् निशाभुक्तिपरित्यागं व्रतं विधीयते। स्त्रीसेवनविवर्जनं च यावज्जीवनं यमः नियमश्चेति मासदिनसंख्याभवः कर्त्तव्यः। रात्रिभक्तव्रते तु दिवसे स्त्रीसेवनविवर्जनं यमनियमविभागतया करणीयम्। भोगोपभोगपरिमाणव्रते तु ताम्बूलपुष्पमालाशैय्याभूषणवस्त्रादीनां नियमः सदैव निशि कार्यः, एवं नैशिकनियम इत्यादीनि नैशिकानि व्रतानि।

अर्थ—नैशिक व्रतोंमें रातमें चारों प्रकारके आहारोंका त्याग एवं

स्त्रीसेवनका त्याग करना होता है। आहार चार प्रकारके हैं—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय। जिस भोजनको दाँतोंसे काटकर खाते हैं वह खाद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघनेका त्याग करना, लेह्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनके अलावा दिवामैथुनका भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभर-के लिए त्याग करना यम और कुछ मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें पान, पुष्पमाला, शय्या, आभूषण और वस्त्र आदिका नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक संख्यामें भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, शेषका त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैशिक व्रत है। इस प्रकार ये नैशिक व्रत कहे गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी-पुष्यचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी-रूपचतुर्दशी-कनकावली-रत्नावली-पुष्पाञ्जलिलब्धिविधानकार्य-निर्जरादीनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुष्यचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, कनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लब्धिविधान और कार्यनिर्जरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिश्रावणभाद्रआश्विनकार्त्तिकमास-शुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं कार्या, ज्ञेया एषा पञ्चमासचतुर्दशी; बृहती मासं मासं प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी तां पर्यन्तं कार्याः, पञ्चोपवासाः। व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूप्यचतुर्दशी-

मारभ्य कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं दशोपवासाः कार्या, भवन्ति ।

अर्थ—पञ्चमासचतुर्दशी आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्त्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रत करना कहलाता है। इस व्रतमें प्रत्येक महीनेमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको उपवास करना पड़ता है। पाँच ही उपवास किये जाते हैं। विशेष रूपसे आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्त्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशियोंको उपवास करना; इस प्रकार उक्त पाँच महीनोंमें दश उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शीलचतुर्दशीके उपवासोंको भी शामिल करना पञ्च चतुर्दशी व्रत है। आषाढ़ मासकी अष्टाह्निकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और श्रावण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं। पञ्चमासचतुर्दशीका प्रारम्भ शीलचतुर्दशीसे किया जाता है।

विवेचन—मासिक व्रत उन व्रतोंको कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक-दो महीनेतक किये जायँ। मासिक व्रत प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं। कुछ व्रत ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमे करने पड़ते हैं। आचार्यने ऊपर पञ्चमास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखी हैं। प्रथम मान्यतामें आषाढ़से लेकर कार्त्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ला चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है। इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करनेको पञ्चमासचतुर्दशी व्रत बताया गया है। इन दस उपवासोंमें शीलव्रत चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके व्रत भी शामिल कर लिये गये हैं। आषाढ़ सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलव्रतका पालन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है। शीलव्रतकी महत्ताको दिखलानेके कारण ही इस व्रतको शीलचतुर्दशी व्रत कहा गया है। शील चतुर्दशीके करनेवालेको 'ओं

ह्रीं निरतिचारशीलव्रतधारकेभ्योऽनन्तमुनिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतके करनेवालेको त्रयोदशीसे शील व्रत धारण करना होता है और पूर्णमासी तक निरतिचार रूपसे व्रतका पालन करना होता है।

रूप चतुर्दशी श्रावण सुदी चतुर्दशीको कहते हैं। इस चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना पड़ता है तथा भगवान् आदिनाथका पूजन-अभिषेक कर उन्हींके अतिशय रूपका दर्शन करना चाहिए। अथवा किसी भी तीर्थंकरकी प्रतिमाका पूजन-अभिषेक कर उनके रूपका दर्शन करना चाहिए। इस व्रतकी भी पूर्णिमाको पारणा करनी पड़ती है। इसके लिए 'ओं ह्रीं श्रीऋषभाय नमः' मन्त्रका जाप करना होता है।

कनकावली व्रतकी विशेष विधि

कनकावल्यां तु आश्विनशुक्ले प्रतिपत्, पञ्चमी, दशमी; कार्तिककृष्णपक्षे द्वितीया, षष्ठी, द्वादशी चेति; एवं एतद्दिवसेषु सर्वेषु मासेषु चोपवासाः द्विसप्ततिः कार्याः, इयं द्वादशमासभवा कनकावली। कस्यापि मासस्य शुक्लकृष्णपक्षयोः षडुपवासाः कार्याः, एषा सावधिका मासिका कनकावली।

अर्थ—कनकावलीमें आश्विनशुक्ला प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा कार्त्तिक कृष्णपक्षमें द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छः उपवास करने चाहिए, इसी प्रकार सभी महीनोंमें कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। यह बारह महीनोंमें किये जानेवाला कनकावली व्रत है। किसी भी महीनेमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी उपर्युक्त तिथियोंमें छः उपवास करना सावधिक मासिक कनकावली व्रत है।

विवेचन—यद्यपि कनकावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है, परन्तु यहाँपर इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि आचार्य सिंहनन्दीने श्रावणसे आरम्भ न कर आश्विनमाससे व्रतारम्भ करनेका विधान किया है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा

कार्त्तिक मासमें कृष्णपक्षकी द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छः उपवास किये जाते हैं। आचार्यके मतानुसार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी तीन तिथियाँ तथा प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी तीन तिथियाँ लेनी चाहिए। मास गणना अमावस्यासे लेकर अमावस्यतक ली जाती है। एक वर्षमें कुल ७२ उपवास करने पड़ते हैं। मासिक कनकावलीमें केवल छः उपवास किये जाते हैं। मास गणना अमान्त ली जाती है।

रत्नावलीव्रतकी विधि

कनकावली चैवमेव रत्नावली, तस्यामाश्विनशुक्ले तृतीया पञ्चमी, अष्टमी, कार्त्तिककृष्णे द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी एवं एतद्दिवसेषु सर्वेषु मासेषु द्विसप्ततिरुपवासाः कार्याः। प्रत्येकमासे षडुपवासाः भवन्ति। इयं द्वादशमासभवा रत्नावली। सावधिका मासिका रत्नावली न भवति।

अर्थ—कनकावली व्रतके समान रत्नावली व्रत भी करना चाहिए। इसमें भी आश्विन शुक्ला तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, तथा कार्त्तिक कृष्णा द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें छः उपवास करने चाहिए। बारह महीनोंमें कुल ७२ उपवास उपर्युक्त तिथियोंमें ही करने पड़ते हैं। यह द्वादश मासवाली रत्नावली है। सावधिक मासिक रत्नावली व्रत नहीं होता है।

विवेचन—कनकावलीके समान रत्नावली व्रतमें भी मास गणना अमावस्यासे ग्रहण की गयी है। अमान्तसे लेकर दूसरे अमान्त एक मास माना जाता है। व्रतका आरम्भ आश्विनके अमान्तके पश्चात् किया जाता है तथा कनकावली और रत्नावली दोनों व्रतोंके लिए वर्ष-गणना आश्विनके अमान्तसे ग्रहण की जाती है। रत्नावली व्रत मासिक नहीं होता है, वार्षिक ही किया जाता है। प्रत्येक महीनेमें उपर्युक्त तिथियोंमें छः उपवास होते हैं, इस प्रकार एक वर्षमें कुल ७२ उपवास हो जाते हैं। उपवासके दिन अभिषेक, पूजन आदि कार्य पूर्ववत् ही

किये जाते हैं। 'ओं ह्रीं त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप इन दोनों व्रतोंमें उपवासके दिन करना चाहिए।

पुष्पाञ्जलि व्रत की विधि

पुष्पाञ्जलिस्तु भाद्रपदशुक्लां पञ्चमीमारभ्य शुक्लानवमीपर्यन्तं यथाशक्ति पञ्चोपवासाः भवन्ति ॥

अर्थ—पुष्पाञ्जलिव्रत भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी से नवमी पर्यन्त किया जाता है। इसमें पाँच उपवास अपनी शक्तिके अनुसार किये जाते हैं।

विवेचन—भादों सुदी पञ्चमीसे नवमी तक पाँच दिन पंचमेरु की स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा करनी चाहिए। अभिषेक भी प्रतिदिन किया जाता है। पाँच अष्टक और पाँच जयमाल पढ़ी जाती है। 'ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्र का प्रतिदिन तीन बार जाप किया जाता है। यदि शक्ति हो तो पाँचों उपवास, अन्यथा पञ्चमीको उपवास, शेष चार दिन रस त्याग कर एकाशन करना चाहिए। रात्रि जागरण विषय-कषायोंको अल्प करनेका प्रयत्न एवं आरम्भ-परिग्रहका त्याग करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। विकथाओंको कहने और सुननेका त्याग भी इस व्रतके पालनेवालेको करना आवश्यक है। इस व्रतका पालन पाँच वर्षतक करना चाहिए, तत्पश्चात् उद्यापन करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

लब्धिविधान व्रतकी विधि

लब्धिविधानस्तु भाद्रपदमाघचैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्य तृतीयापर्यन्तं दिनत्रयं भवति। दिनहानौ तु दिनमेकं प्रथमं कार्यम्, वृद्धौ स एव क्रमः स्मर्तव्यः ॥

अर्थ—भाद्रपद, माघ और चैत्र मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक तीन दिन पर्यन्त लब्धिविधान व्रत किया जाता है। तिथि हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है और तिथि वृद्धि

होनेपर पहलेवाला क्रम अर्थात् वृद्धिंगत तिथि छः घटीसे अधिक हो तो एक दिन व्रत अधिक करना चाहिए।

विवेचन—भादों, माघ और चैत्र सुदी प्रतिपदासे तृतीयातक लब्धिविधान व्रत करनेका नियम है। इस व्रतकी धारणा पूर्णिमाको तथा पारणा चतुर्थीको करनी होती है। यदि शक्ति हो तो तीनों दिनोंका अष्टमोपवास करनेका विधान है। शक्तिके अभाव में प्रतिपदाको उपवास, द्वितीयाको ऊनोदर एवं तृतीयाको उपवास या कांजी—छाछ या छाछसे निर्मित महेरी अथवा माड़भात लेना होता है। व्रतके दिनोंमें महावीर स्वामीकी प्रतिमाका पूजन, अभिषेक किया जाता है तथा 'ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन तीन बार किया जाता है। त्रिकाल सामायिक करनेका भी विधान है। रात्रि जागरण तथा स्तोत्र पाठ, भजन-गान आदि भी व्रतके दिनोंकी रात्रियोंमें किये जाते हैं।

आवश्यकता पड़ने अथवा आकुलता होनेपर मध्यरात्रिमें अल्प निद्रा ली जा सकती है। कषाय और आरम्भ परिग्रहको घटाना, विकथाओंकी चर्चाका त्याग करना एवं धर्मध्यानमें लीन होना आवश्यक है।

कर्मनिर्जर व्रत की विधि

कर्मनिर्जरस्तु भाद्रपदशुक्लामेकादशीमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं भवति। हानिवृद्धौ च स एव क्रमः ज्ञातव्यः।

अर्थ—कर्मनिर्जराव्रत भादों सुदी एकादशीसे लेकर भादों सुदी चतुर्दशीतक चार दिन किया जाता है। तिथि हानि और तिथि वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही व्रतकी व्यवस्थाके लिए ग्रहण किया गया है।

विवेचन—कर्मनिर्जरा व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यता भादों सुदी एकादशीसे लेकर चतुर्दशी तक व्रत करनेकी है। दूसरी मान्यताके अनुसार आषाढ़ सुदी चतुर्दशी, श्रावण सुदी चतुर्दशी, भादों सुदी चतुर्दशी एवं आश्विन सुदी चतुर्दशी इन चार तिथियों-

को व्रत करने की है। ये चारों उपवास क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपके हेतु एक वर्षके भीतर किये जाते हैं। व्रतके दिनोंमें सिद्ध भगवान्की पूजा की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं समस्तकर्मरहिताय सिद्धाय नमः' अथवा 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रतपसे नमः' मन्त्रका जाप व्रतके दिनोंमें तीन बार करना होता है। नित्यपूजा, चतुर्विंशतिजिनपूजा, विशेषतः सिद्धपूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलंकतया सांसिद्धिकात्यन्तिकविशुद्धविशेषाविर्भावादभिव्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टकविशिष्टाम् उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकचिच्चमत्कारमात्रपरमन्त्रपरमानन्दैकमयीं निष्पीतानन्तपर्यायतयैकं किञ्चिदनवरतास्वाद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरसभरनिर्भरं कौटस्थमधिष्ठितां परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठतां मङ्गललोकोत्तमशरणभूतानां सिद्धपरमेष्ठिनां स्तवनं करोमि" मन्त्रको पढ दोनों हाथोंसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए सिद्धि परमेष्ठीकी स्तुति करनी चाहिए।

ज्ञानपचीसी और भावनापचीसी व्रतोंकी विधि

ज्ञानपञ्चविंशतिव्रते एकादश्यामेकादशोपवासाः चतुर्दश्यां चतुर्दशोपवासाः कार्याः भवन्ति। मतान्तरेण दशम्यां दशोपवासाः पूर्णिमायां पञ्चदशोपवासा कार्याः भावनापञ्चविंशतिव्रते तु प्रतिपदायामेकोपवासः द्वितीयायां द्वौ उपवासौ, तृतीयायां त्रय उपवासाः, पञ्चम्यां पञ्चोपवासः, षष्ठ्यां षडुपवासाः अष्टम्यामष्टौ उपवासाः कार्याः भवन्ति। मन्तान्तरेण दशम्यां दशोपवासाः पञ्चम्यां पञ्चोपवासाः, अष्टम्यामष्टौ उपवासाः प्रतिपदायां द्वौ उपवासौ, कार्याः भवन्ति। एषा सम्यक्त्वपञ्चविंशतिका मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ अनायतनानि षट् अष्टौ शंकादयो दोषाः, इत्येषां निवारणार्थं कर्त्तव्या। उपवासादीनां मासतिथ्यादिर्नियमः न ग्राह्यः।

अर्थ—ज्ञानपच्चीसी व्रतमें एकादशी तिथिके ग्यारह उपवास और चतुर्दशी तिथिके चौदह उपवास किये जाते हैं । मतान्तरसे इस व्रतमें दशमीके दस उपवास और पूर्णिमाके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं ।

भावनापच्चीसी व्रतमें प्रतिपदामें एक उपवास, द्वितीया तिथिमें दो उपवास, तृतीयामें तीन उपवास, पञ्चमी तिथिमें पाँच उपवास, षष्ठी तिथिमें छः उपवास और अष्टमी तिथिमें आठ उपवास किये जाते हैं । मतान्तरसे दशमी तिथिमें दस उपवास, पञ्चमीमें पाँच उपवास, अष्टमी-में आठ उपवास और प्रतिपदामें दो उपवास किये जाते हैं । यह भावना-पच्चीसी व्रत तीन मूढ़ता, आठ मद, छः अनायतन और आठ शंकादि दोषोंको दूर करनेके लिए किया जाता है । इसके उपवास करनेके लिए तिथि, मास आदिका नियम ग्राह्य नहीं है । अर्थात् यह व्रत किसी भी मासमें किसी भी तिथिसे प्रारम्भ किया जा सकता है । ज्ञानपच्चीसी और भावनापच्चीसी दोनों ही व्रतोंमें पच्चीस-पच्चीस उपवास किये जाते हैं । प्रथम ज्ञान प्राप्तिके लिए और द्वितीय सम्यग्दर्शनको निर्दोष करनेके लिए किया जाता है ।

विवेचन—पच्चीसी व्रत कई प्रकारसे किये जाते हैं । प्रधान दो प्रकारके पच्चीसी व्रत हैं—ज्ञानपच्चीसी और भावना-पच्चीसी व्रतका उद्देश्य द्वादशांग जिनवाणीकी आराधना है तथा सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति उसका फल है । ज्ञानपच्चीसी व्रतमें प्रधान रूपसे श्रुतज्ञानकी पूजा तथा श्रुतस्कन्ध यन्त्रका अभिषेक किया जाता है । इस व्रतसे ग्यारह अंगोंके ज्ञानके लिए ग्यारह एकादशियोंके उपवास और चौदह पूर्वोंके ज्ञानके लिए चौदह चतुर्दशियोंके उपवास किये जाते हैं । उदाहरण—श्रावण सुदी चतुर्दशी-को पहला उपवास, भादोंबदी एकादशीको दूसरा, भादों बदी चतुर्दशीको तीसरा, भादों सुदी एकादशीको चौथा, भादों सुदी चतुर्दशीको पाँचवाँ, आश्विन बदी एकादशीको छठवाँ, आश्विन बदी चतुर्दशीको सातवाँ, आश्विन सुदी एकादशीको आठवाँ, आश्विन सुदी चतुर्दशीको नौवाँ, कार्त्तिक बदी एकादशीको दसवाँ, चतुर्दशीको ग्यारहवाँ, कार्त्तिक सुदी एकादशीको

बारहवाँ, चतुर्दशीको तेरहवाँ, मार्गशीर्ष बदी एकादशीको चौदहवाँ, चतुर्दशीको पन्द्रहवाँ, मार्गशीर्ष सुदी एकादशीको सोलहवाँ, चतुर्दशीको सत्रहवाँ, पौषबदी एकादशीको अठारहवाँ, चतुर्दशीको उन्नीसवाँ, पौषसुदी एकादशीको बीसवाँ, चतुर्दशीको इक्कीसवाँ, माघबदी एकादशीको बाईसवाँ, चतुर्दशीको तेईसवाँ, माघसुदी चतुर्दशीको चौबीसवाँ और फाल्गुन बदी चतुर्दशीको पचीसवाँ उपवास करना होगा। इस व्रतके लिए **'ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गाय नमः'** इस मन्त्रका जाप करना होता है। व्रत एक वर्ष या १२ वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है।

भावना-पञ्चमी व्रत सम्यक्त्वकी विशुद्धिके लिए किया जाता है। सम्यग्दर्शनके २५ दोष हैं—तीन मूढ़ता, छः अनायतन, आठ मद, तथा शंकादि आठ दोष। तीन तृतीयाओंके उपवास तीन मूढ़ताओंको दूर करने, छः षष्ठियोंके उपवास षट् अनायतनको दूर करने, आठ अष्टमियोंके उपवास आठ मदोंको दूर करने एवं प्रतिपदाका एक उपवास, द्वितीयाओंके दो उपवास और पञ्चमियोंके पाँच उपवास इस प्रकार कुल आठ उपवास शंकादि आठ दोषोंको दूर करनेके लिए किये जाते हैं। इस व्रतका बड़ा भारी महत्त्व बताया गया है। यों तो इसके लिए किसी मासका बन्धन नहीं है, पर यह भाद्रपद माससे किया जाता है। इस व्रतका आरम्भ अष्टमी तिथिसे करते हैं। व्रत करनेके एकदिन पूर्व व्रतकी धारणा की जाती है तथा चार महीनोंके लिए शीलव्रत ग्रहण किया जाता है। इस व्रतके लिए **'ओं ह्रीं पञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय नमः'** मन्त्रका जाप प्रतिदिन तीन बार उपवासके दिन करना चाहिए। सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि करनेके लिए संसार और शरीरसे विरक्ति प्राप्त करना चाहिए।

भावना-पच्चीसी व्रतका दूसरा नाम सम्यक्त्वपच्चीसी भी है। इस व्रतके उपवासके दिन चैत्यालयके प्रांगणमें एक सुन्दर चौकी या टेबुलके ऊपर संस्कृत—चन्दन, केशर आदिसे संस्कृत कुम्भ चावलोंके पुञ्जके ऊपर रखकर उसपर एक बड़ा थाल रखना चाहिए। थालमें सम्यग्दर्शनके

गुणोंको अंकित करके मध्यमें पांडुकशिला बनाकर प्रतिमा स्थापित कर देनी चाहिए। चार महीनों तक जबतक कि उपर्युक्त तिथियोंके उपवास-पूर्ण न जायँ, भगवान्‌का प्रतिदिन पूजन अभिषेक करना चाहिए। प्रत्येक उपवासके दिन अभिषेक पूर्वक पूजन करना आवश्यक है। यदि सम्भव हो तो व्रतसमाप्ति तक प्रतिदिन उपर्युक्त मन्त्रका जाप करना चाहिए, अन्यथा उपवासके दिन ही जाप, किया जा सकता है।

नमस्कारपैंतीसी व्रतकी विधि

नमस्कारपञ्चत्रिंशत्कायां सप्तम्याः सप्त पञ्चम्याः पञ्च चतुर्दश्याश्चतुर्दश नवम्याः नवोपवासाः कथिताः। एतन्नमोकार-पञ्चत्रिंशत्कमेतदक्षरसमुदायं विभज्यैकैकाक्षरस्योपवासः करणीयः। अस्मिन् व्रते न मासतिथ्यादिको नियमः, केवलां तिथिं प्रपद्य भवतीति तिथिसावधिकानि व्रतानि।

अर्थ—नमस्कारपञ्चत्रिंशत्—नमस्कारपैंतीसी व्रतमें सप्तमीके सात उपवास, पञ्चमीके पाँच उपवास, चतुर्दशीके चौदह उपवास और नवमी के नौ उपवास बताये गये हैं। णमोकारमन्त्रमें पैंतीस अक्षर होते हैं, एक-एक अक्षरका एक-एक उपवास किया जाता है। इस व्रतके आरम्भ करनेमें किसी मासकी किसी विशेष तिथिका नियम नहीं है। केवल तिथिके अनुसार ही व्रत किया जाता है। इस प्रकार तिथि सावधिक व्रतोंका कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—णमोकार मन्त्रकी विशेष आराधनाके लिए नमस्कार-पैंतीसी व्रत किया जाता है। इस व्रतमें ३५ उपवास करनेका विधान है। सप्तमी तिथिके सात उपवास, पञ्चमी तिथिके पाँच उपवास, चतुर्दशी तिथिके चौदह उपवास एवं नवमी तिथिके नौ उपवास किये जाते हैं। इस व्रतमें उपवासके दिन पञ्चपरमेष्ठीका पूजन और अभिषेक करना होता है। तथा **'ओं ह्रां णमो अरिहन्ताणं, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं, ओं ह्रूं णमो आइरियाणं, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं, ओं**

ह्रः णमो लोए सव्व साहूणं' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। उपवासके पहले और पिछले दिन एकाशन करना होता है।

माससावधिक व्रतोंका कथन

माससावधिकानि ज्येष्ठजिनवरसूत्रचन्दनषष्ठीनिर्दोषसप्तमी-जिनरात्रिमुक्तावलीरत्नत्रयानन्तमेघमालाषोडशकारणशुक्लपञ्च-म्यष्टाह्निकादीनि।

अर्थ—माससावधिक ज्येष्ठजिनवर, सूत्रव्रत, चन्दनषष्ठी, निर्दोष-सप्तमी, जिनरात्रि, मुक्तावली, रत्नत्रय, अनन्त, मेघमाला, शुक्लपञ्चमी और अष्टाह्निका आदि है।

ज्येष्ठजिनवर व्रतकी विधि

ज्येष्ठकृष्णपक्षे प्रतिपदि ज्येष्ठशुक्ले प्रतिपदि चोपवासः, आषाढकृष्णस्य प्रतिपदि चोपवासः, एवमुपवासत्रयं करणीयम्, ज्येष्ठमासस्यावशेपदिवसेष्वेकाशनं करणीयम्, एतद्व्रतं ज्ये-ष्ठजिनवरव्रतं भवति । ज्येष्ठप्रतिपदामारभ्याषाढकृष्णाप्रतिपत् पर्यन्तं भवति।

अर्थ—ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा, ज्येष्ठशुक्ला प्रतिपदा और आषाढ़कृष्णा प्रतिपदा, इन तीनों तिथियोंमें तीन उपवास करने चाहिए। ज्येष्ठ मासके शेष दिनोंमें एकाशन करना होता है। इस व्रतका नाम ज्येष्ठजिनवर व्रत है। यह ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आषाढ कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है।

विवेचन—ज्येष्ठजिनवर व्रत ज्येष्ठके महीनेमें किया जाता है। यह व्रत ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे प्रारम्भ होता और आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है। इसमें प्रथम ज्येष्ठवदी प्रतिपदाको प्रोषध किया जाता है, पश्चात् कृष्ण पक्षके शेष १४ दिन एकाशन करते हैं। पुनः ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदाको उपवास और शेष १४ दिन एकाशन तथा आषाढ़ वदी प्रति-पदाको उपवासकर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

ज्येष्ठजिनवर व्रतमें मिट्टीके पाँच कलशोंसे प्रतिदिन भगवान् आदिनाथका अभिषेक करना चाहिए। 'ओं ह्रीं श्रीज्येष्ठजिनाधिपतये नमः कलशस्थापनं करोमि' इस मन्त्रको पढ़कर कलशोंकी स्थापना की जाती है। पाँच कलशोंमेंसे चार कलशों-द्वारा अभिषेक स्थापनके समय ही किया जाता है और एक कलशसे जयमाल पढ़नेके अनन्तर अभिषेक होता है। इस व्रतमें ज्येष्ठजिनवरकी पूजा की जाती है। 'ओं ह्रीं श्रीऋषभजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना होता है। ज्येष्ठ मासभर तीनों समय सामायिक करना, ब्रह्मचर्यका पालन एवं शुद्ध और अल्प भोजन करना आवश्यक है।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि

जिनगुणसम्पत्तौ तु प्रतिपदः षोडशोपवासाः पञ्चम्याः पञ्चोपवासाः अष्टम्याः अष्टौ उपवासाः दशम्याः दशोपवासाः चतुर्दश्याः चतुर्दशोपवासाः, षष्ठ्याः षडुपवासाः, चतुर्थ्याश्चत्वारः उपवासाः, एवं त्रिषष्टिः उपवासाः भवन्ति। ज्येष्ठमासकृष्णपक्षीयप्रतिपदमारभ्य व्रतं क्रियते यावत्त्रिषष्टिः स्यादेष नियमो नैव ज्ञायते पूर्वोपवासस्यैव श्रुतेऽप्युपदेशदर्शनात्। अन्येषां पृथक्भूतता स्वरुचिसम्मता।

अर्थ—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें प्रतिपदाके सोलह उपवास, पञ्चमीके पाँच उपवास, अष्टमीके आठ उपवास, दशमीके दश उपवास, चतुर्दशीके चौदह उपवास, षष्ठीके छः उपवास और चतुर्थीके चार उपवास, इस प्रकार कुल ६३ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ होता है। ६३ उपवास लगातार किये जायँ, ऐसा नियम नहीं है। जिस तिथिके उपवास किये जायँ उनको पूर्ण करना आवश्यक है, एक तिथिके उपवास पूर्ण हो जानेपर दूसरी तिथिके उपवास स्वेच्छासे किये जा सकते हैं।

विवेचन—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें ६३ उपवास करनेका विधान है। इसमें षोडशकारणके सोलह उपवास, पञ्च परमेष्ठीके पाँच, अष्ट

प्रातिहार्यके आठ और चौंतीस अतिशयों—दस जन्म, दस केवलज्ञान और चौदह देवकृत अतिशयोंके चौंतीस उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठवदी प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। ६३ उपवास एक साथ लगातार करनेकी शक्ति न हो तो सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास; जो कि षोडशकारणके व्रत कहे जाते हैं, के करनेके पश्चात् पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, जो कि पञ्च परमेष्ठीके गुणोंकी स्मृतिके लिए किये जाते हैं, करने चाहिए। इन उपवासोंके पश्चात् आठ प्रातिहार्योंकी स्मृतिके लिए आठ अष्टमियोंके आठ उपवास एक साथ तथा चौंतीस अतिशयोंके, स्मृतिकारक दस दशमियोंके दस उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास और चार चतुर्थियोंके चार उपवास इस प्रकार कुल (१४ + १० + ६ + ४ = ३४) उपवास एक साथ करने चाहिए।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें उपवासके दिन गृहारम्भका त्याग कर पूजन, अभिषेक करना चाहिए तथा प्रारम्भके सोलह उपवासोंमें 'ओं ह्रीं तीर्थंकरपदप्राप्तये दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो नमः' पञ्च परमेष्ठीके उपवासोंमें "ओं ह्रीं परमपदस्थितेभ्यो पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः" आठ प्रातिहार्योंके उपवासोंमें 'ओं ह्रीं अष्टप्रातिहार्यमण्डिताय तीर्थंकराय नमः' और चौंतीस अतिशयोंके उपवासोंके लिए "ओं ह्रीं चतुस्त्रिंशदतिशयसहितेभ्यः अर्हद्भ्यः नमः" मन्त्रोंका जाप किया जाता है। व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करा दिया जाता है।

चन्दन षष्ठीव्रतकी विधि

चन्दनषष्ठ्यां तु भाद्रपदकृष्णा षष्ठी ग्राह्या, षड्वर्षाणां यावत् व्रतं भवति, अत्र चन्द्रप्रभस्य पूजाभिषेकं कार्यम्।

अर्थ—चन्दनषष्ठी व्रत भादों वदी षष्ठीको होता है, छः वर्षतक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें चन्द्रप्रभ भगवान्‌का पूजन, अभिषेक करना चाहिए।

विवेचन—भादों वदी षष्ठीको उपवास धारण करे। चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें भगवान् चन्द्रप्रभका पूजन, अभिषेक करे। छः प्रकारके उत्तम प्रासुक फलोंसे छः अष्टक चढ़ावे। णमोकार मन्त्रका १०८ वार फूलोंसे जाप करना चाहिए। चारों प्रकारके संघको आहार, औषध, अभय और ज्ञान इन चारों दानोंको देना चाहिए। तीनों काल सामायिक, अभिषेक, पूजन और रात्रि-जागरण करना चाहिए। रातको स्तोत्र, भजन, आलोचना एवं प्रार्थनाएँ पढ़ते हुए धर्मध्यान पूर्वक बिताना चाहिए। उपवासके दिन गृहारम्भ, विषय-कषाय और विकथाओंका त्याग करना चाहिए। यह छः वर्षतक किया जाता है।

रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता

यथा शुक्लकृष्णपक्षयोः पञ्चदशदिनेषु अष्टम्यां चतुर्दश्याञ्चोपवासः तथैव सौभाग्यनिमित्तं स्त्रियः सप्तविंशतिनक्षत्रेषु रोहिण्याख्यनक्षत्रे उपवासं कुर्वन्ति ॥

अर्थ—जिस प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके पन्द्रह-पन्द्रह दिनोंमें प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे रोहिणी नक्षत्रका उपवास करती हैं।

रोहिणीव्रतका फल

रोहिणीव्रतोपवासस्य किं फलमिति चेत्तदुक्तं योगीन्द्रदेवैः-

दीवइं दिण्णइं जिणवरहं मोहहु होइ ण ठाउ।
अह उववासहिं रोहिणिहिं सोउ विपलहु जाइ ॥[1]

अर्थ—रोहिणी व्रतके उपवासका क्या फल है? आचार्य योगीन्द्रदेवने फल बतलाते हुए कहा है—

जिनेन्द्र भगवान्को दीप चढ़ानेसे मोहको स्थान नहीं मिलता अर्थात्

१. सावयधम्मदोहा १८८ दूहा, पृ० ५६।

मोह नष्ट हो जाता है तथा रोहिणी व्रतके उपवाससे शोक भी प्रलयको पहुँच जाता है। अभिप्राय यह है कि रोहिणी व्रत करनेसे सभी प्रकारके शोक, दारिद्र्य आदि नष्ट हो जाते हैं।

रोहिणीव्रतकी व्यवस्था

तथा पद्मदेवैः प्रोक्तं चेति—
यस्मिन् दिने समायाति, रोहिणीभं मनोहरम्।
तस्मिन् दिने व्रतं कार्यं न पूर्वस्मिन् परत्र वा॥

अर्थ—जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उसी दिन व्रत करना चाहिए। आगे-पीछे व्रत करनेका कुछ भी फल नहीं होता है। रोहिणी नक्षत्र व्रत प्रत्येक महीनेमें एकबार किया जाता है।

यदा रोहिणी न स्यात् कृत्तिकामृगशीर्षौ स्तः तयोर्मध्ये किं करणीयं स्यादित्याह—काले यदि रोहिणिकायाः प्रोषधः न स्यात्, तदा स निष्फलः स्यात् कालेन विना यथा मेघः।

वामदेवैः प्रोक्तमिदं यावत् कालं भं स्यात् तावत् कालं करोतु भव्रतकम्, न तु दैवसिकासु नियमः प्रोक्तः मुनीश्वरैः; अर्थात् यावत् रोहिणी तावत् सर्वेषां त्यागः कार्यः। पारणा-दिने तदुत्तरानन्तरं च पारणा कर्त्तव्या। एतदेव शुक्लपञ्च-मीकृष्णपञ्चमीजिनगुणसम्पत्तिज्येष्ठजिनवरकवलचान्द्रायणादयो ज्ञातव्याः। रोहिणी तु त्रिवर्षा स्यात्, पञ्चवर्षा सप्तवर्षा च संप्रोक्ता वसुनन्द्यादिसूरिभिः; आदिशब्देन सकलकीर्तिछत्रसेन-सिंहनन्दिमल्लिषेणहरिषेणपद्मदेववामदेवैः संप्रोक्ता ग्राह्याः। अन्येऽप्याधुनिका दामोदरदेवेन्द्रकीर्त्तिहेमकीर्त्यादयश्च ज्ञेयाः।

अर्थ—यदि व्रतके दिन रोहिणी न हो अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका क्षय हो कृत्तिका और मृगशीर्ष हों तो क्या करना चाहिए; इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होनेपर आचार्य कहते हैं कि यदि समयपर रोहिणी व्रतका प्रोषध नहीं किया जायगा तो, उसका फल कुछ भी नहीं होगा। जिस

प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे उस वर्षासे कुछ भी लाभ नहीं होगा, उसी प्रकार असमयमें व्रत करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता है।

वामदेव आचार्यने भी कहा है कि जब रोहिणी नक्षत्र हो तभी व्रत करना चाहिए। आचार्योंने दैवसिक व्रतोंके लिए यह नियम नहीं बताया है, अर्थात् जिस दिन रोहिणी हो उस दिन व्रत करना ; अन्य नक्षत्रोंमें व्रत नहीं किया जाता है। रोहिणीके अनन्तर अर्थात् मृगशिर नक्षत्रमें पारणा की जाती है। शुक्लपञ्चमी, कृष्णपञ्चमी, जिनगुणसम्पत्ति, ज्येष्ठ-जिनवर, कवलचान्द्रायण आदि व्रतोंको इसी प्रकार मासावधि समझना चाहिए।

रोहिणी व्रत तीन वर्ष, पाँच वर्ष या सात वर्ष प्रमाण किया जाता है, ऐसा वसुनन्दी, सकलकीर्त्ति, छत्रसेन, सिंहनन्दि, मल्लिषेण, हरिषेण, पद्मदेव, वामदेव आदि आचार्योंने कहा है। अन्य अर्वाचीन आचार्य दामोदर, देवेन्द्रकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति आदिने भी इसी बातको बतलाया है।

विवेचन—रोहिणी व्रत प्रतिमास रोहिणी नामक नक्षत्र जिस दिन पड़ता है, उसी दिन किया जाता है। इस दिन चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें जाकर धर्मध्यानपूर्वक सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, पूजन, अभिषेकमें समयको लगाया जाता है। शक्त्यनुसार दान भी करनेका विधान है। इस व्रतकी अवधि साधा-रणतया पाँच वर्ष पाँच महीनेकी है, इसके पश्चात् उद्यापन कर देना चाहिए।

रोहिणी व्रतके समयका निश्चय करते हुए आचार्यने कहा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र किसी भी दिन पञ्चांगमें एक-दो घटी भी हो तो भी व्रत उस दिन किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो गणितके हिसाबके कृत्तिकाकी समाप्ति होनेपर रोहिणीके प्रारम्भमें व्रत करना चाहिए। मृगशिर अथवा कृत्तिकाको व्रत करना निषिद्ध है, इन नक्षत्रोंमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। जबतक सूर्योदय कालमें रोहिणी नक्षत्र मिले तबतक अस्तकालीन रोहिणी नक्षत्र नहीं ग्रहण

करना चाहिए। यद्यपि आगे आचार्य छः घटी प्रमाण ही नक्षत्र ग्रहण करनेके लिए विधान करेंगे, पर छः घटीके अभावमें एक-दो घटी प्रमाण भी उदयकालीन रोहिणी ग्रहण किया जा सकता है।

रोहिणी व्रतकी अन्य व्यवस्था

तथाऽन्यैः प्रोक्तं रोहिण्यां दशलक्षणरत्नत्रयषोडशकारणव्रतवत् रसघटिकाप्रमाणं ग्राह्यमिति अन्यत् देवनन्दिमुनिभिः प्रोक्तं यत् दिवसे क्षीणे नियमस्तुते कार्याः, दिवसे तस्मिन्नेव हि चतुष्टयोपलम्भात्। ते के इति चेदाह—निर्वाणकार्तिकोत्सवमालोत्सवधूपोत्सवयात्रोत्सववस्तूत्सवाः। चतुष्टयं किमिति चेदाह—द्रव्यकालक्षेत्रभावाख्यमिति श्रुतसागरैः प्रोक्तं, अन्यैरपि प्रोक्तं तद्यथा—

आदिमध्यावसानेषु हीयते तिथिरुत्तमा।
आदौ व्रतविधिः कार्यः प्रोक्तं श्रीमुनिपुङ्गवैः॥
आदिमध्यान्तभेदेषु व्रतविधिर्विधीयते।
तिथिह्रासे तदुक्तञ्च गौतमादिगणेश्वरैः॥

अर्थ—अन्य आचार्योंने भी कहा है कि रोहिणी नक्षत्रका प्रमाण दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण व्रतके समान छः घटी प्रमाण ग्रहण करना चाहिए। देवनन्दि आचार्यने और भी कहा कि—दिनहानि होनेपर—रोहिणी नक्षत्रका अभाव होनेपर उसी दिन व्रत, नियम करना चाहिए, क्योंकि पूर्वाचार्योंके वचनोंमें व्रत तिथिका निर्णय करते समय चतुष्टय शब्दकी उपलब्धि होती है। निर्वाण, द्वीपमालिका उत्सव, धूपोत्सव, यात्रोत्सव, वस्तु-उत्सव आदि व्रतोंके निर्णयमें भी आचार्यने चतुष्टय शब्दका व्यवहार किया है। श्रुतसागर आचार्यने चतुष्टय शब्दका अर्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव लिया है। अन्य आचार्योंने भी व्रत व्यवस्थाके लिए कहा है—

यदि व्रतके दिनोंमें आदि, मध्य और अन्तके दिनोंमें कोई तिथि घट जाय, तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए, ऐसा श्रेष्ठ मुनियोंने

कहा है। तिथि ह्रास होने पर आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें व्रत विधि की जाती है अर्थात् तिथिह्रास होनेपर एकदिन पहले व्रत किया जाता है। इस प्रकार गौतम आदि श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

विवेचन—रोहिणी-व्रतके दिन रोहिणी नक्षत्र छः घटी प्रमाणसे अल्प हो तो भी देश, काल आदिके भेदसे आचार्योंने व्रत करनेका विधान किया है, अतः रोहिणी-व्रत करना चाहिए। रोहिणी व्रतके लिए एक-दो घटी प्रमाण नक्षत्रको भी उदयकालमें ग्रहण किया गया है। कुछ आचार्यों का यह मत है कि रोहिणी नक्षत्रके क्षीण होनेपर भी व्रत उसी दिन करना है अर्थात् कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिराके पूर्वका जितना समय है, वही व्रतकाल है। रोहिणी व्रत यों तो ऐश्वर्य, सुख आदिकी वृद्धिके लिए स्त्री-पुरुष दोनों ही करते हैं, पर विशेषतः इस व्रतको स्त्रियाँ करती हैं। इस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको सौभाग्य, सन्तान, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य आदि अनेक फलोंकी प्राप्ति होती है। इस व्रतमें उपवासके दिन तीनों समय '**ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः**' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

जिनको उपवास करनेकी शक्ति न हो वे संयम ग्रहण कर अल्पभोजन करें, या कांजी अथवा मांड-भात ले। व्रतके दिन पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना, कषाय और विकथाओंको छोड़ना आवश्यक है। मृगशिर नक्षत्रमें पारणा करना एवं कृत्तिकामें व्रतकी धारणा करनेसे व्रतविधि पूर्ण मानी जाती है।

अवाप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं मुहूर्त्तत्रयवाहिनी च।
धर्मेषु कार्येषु वदन्ति पूर्णां तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीशाः॥

इति चामुण्डरायवाक्यं तथा च तत् पुराणेष्येवमुक्तम्—

व्रतानां दिनेशाः दिनेशं प्रहीणे किलादौ च मध्येऽवसाने तथैव।
तथा मुख्यघस्रं गृहीत्वा प्रकार्यं विधानं व्रतानां समुक्तं मुनीशैः॥

आदितः दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत् मध्यतः दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत्; अन्ततः दिनक्षयेषु अयं विधिः न विधीयते। उक्तं च—

तिथीनां क्षये द्वित्रितुर्यादिकानां
न वै तद्व्रतानां तिथिश्चेत्प्रयाति।
दिनैकेऽवशिष्टे व्रतं कार्यमादौ
गृहीत्वा दिनं तत्प्रपूर्णां विधिं च॥ १॥
तिथीनां सुवृद्धौ द्वितुर्यादिकानां
व्रतानां दिनेष्वेव कार्यं विधानम्।
यदा कोऽपि मर्त्यो सरोगः सदुःखः
तदा तेषु कार्यं विधानं बुधोक्तम्॥ २॥

इति चामुण्डरायपुराणे रोहिण्युत्सवनिर्वाणकार्त्तिकाभिषेकोत्सवे यात्रोत्सवे वस्तूत्सवे च विधानम्॥

अर्थ—जिस तीन मुहूर्त्तवाली तिथिको प्राप्तकर सूर्य अस्त होता है, उस तिथिको व्रतके ज्ञाता धर्मादि कार्योंमें पूर्ण मानते हैं। इस प्रकार चामुण्डरायने कहा है, चामुण्डरायपुराणमें और भी कहा गया है—

व्रतोंके दिनोंमें आदि, मध्य या अन्तमें तिथिका ह्रास हो तो मुख्य दिनको लेकर व्रत विधान करना चाहिए। इस प्रकार श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

आदिमें तिथि-क्षय हो या मध्यमें तिथि-क्षय हो तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। अन्तमें तिथि-क्षय होनेपर यह विधि नहीं की जाती है। कहा भी है—

दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिके क्षय होनेपर, पूर्व दिनसे व्रत करने चाहिए तथा पूर्व दिनसे ही व्रतविधि सम्पन्न की जाती है।

यदि दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो जाय तो, व्रत संख्यक दिनोंमें ही व्रतविधि पूर्ण करनी चाहिए। परन्तु आचार्योंने यह विधान किसी रोगी, दुःखी व्यक्तिके लिए किया है। स्वस्थ और सुखी व्यक्तिको तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार चामुण्डरायपुराणमें रोहिणी-उत्सव, निर्वाण-कार्त्तिकोत्सव, यात्रा-उत्सव, वस्तु-उत्सव आदिके लिए विधान किया है।

विवेचन—रोहिणी व्रतके लिए उदयकालमें रोहिणी नक्षत्र छः घटी अथवा इससे अल्प प्रमाण भी हो तो उसी दिन रोहिणीव्रत करना चाहिये। यदि उदयकालमें रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो एक दिन पहले व्रत किया जायगा। यों तो सभी व्रतोंके लिए यही नियम है कि तिथिक्षयमें एक दिन पूर्वसे व्रत किया जाता है और तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करनेका विधान है। चामुण्डरायपुराणके अनुसार रोगी, वृद्ध और असमर्थ व्यक्तियोंको तिथिवृद्धि होनेपर नियत दिन प्रमाण ही व्रत करना चाहिए। रोहिणीव्रत सिर्फ एक दिनका होता है, अतः इस व्रतमें उदयकालमें छः घटीका नियम प्रायः मान्य होता है। हाँ, कभी-कभी एक-दो घटी प्रमाण उदयमें रोहिणीके रहनेपर भी व्रत किया जाता है।

दिने कृते च छिन्ने वाऽच्छिन्ने तत्र च निश्चयः।
क्षेत्रकालादिमर्यादोल्लङ्घनं तत्र दूषणम्॥

अन्यदपि षोडशकारणवारिदमालारत्नत्रयादिव्रतानां पूर्णाभिषवे प्रतिपत्तिथिरेषा नापरा ग्राह्येति पूर्वोक्तवचनात्। अपरा द्वितीया ग्राह्येति अनवस्थाज्ञाभङ्गसंकरादयो दोषाः भवन्तीति अभ्रदेवमतमित्येष रोहिणीव्रतनिर्णयः।

अर्थ—तिथिक्षय या तिथि-वृद्धि होनेपर व्रत करनेके लिए देशकालकी मर्यादाका विचार अवश्य किया जाता है। जो देश-कालकी मर्यादाका विचार नहीं करता है, उसके व्रतोंमें दूषण आ जाता है।

अन्य षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके लिए प्रतिपदा तिथि ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। यदि अन्य द्वितीया तिथि ग्रहण की जाय तो अनवस्था, आज्ञाभंग, संकर आदि दोष आ जायँगे, इस प्रकार अभ्रदेवका मत है। रोहिणी व्रतके निर्णयके लिए

भी देशकालकी मर्यादाका विचार करना चाहिए। इस प्रकार रोहिणी व्रतका निर्णय समाप्त हुआ।

विवेचन—रोहिणीव्रत रोहिणी नक्षत्रको किया जाता है। जिस दिन पञ्चांगमें रोहिणी छः घटी या इससे अधिक प्रमाण हो उस दिन व्रत करनेका विधान है। यदि कदाचित् छः घटी प्रमाण रोहिणी नक्षत्र न मिले तो एकाध घटी प्रमाण मिलनेपर भी व्रत किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिरसे पूर्व रोहिणी व्रत करना चाहिए। जब दो दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो जिस दिन पूर्ण नक्षत्र हो उस दिन व्रत करना तथा अगले दिन यदि छः घटीसे ऊपर या छः घटी प्रमाण ही रोहिणी नक्षत्र हो तो अगले दिन भी व्रत किया जायगा। इससे कम प्रमाण होनेपर व्रतकी पारणा की जायगी।

रविव्रतकी विधि

आदित्यव्रते पार्श्वनाथार्कसंज्ञके आषाढमासे शुक्लपक्षे तत्प्रथममादित्यमारभ्य नवसु अर्कदिनेषु व्रतं कार्यं नववर्षं यावत्। प्रथमवर्षे नवोपवासः, द्वितीयवर्षे नवैकाशनाः, तृतीयवर्षे नवकाञ्जिकाः, चतुर्थवर्षे नवरूक्षाः, पञ्चमवर्षे नवनीरसाः, षष्ठवर्षे नवालवणाः, सप्तमवर्षे नवागोरसाः, अष्टमवर्षे नवोनोदराः, नवमवर्षे अलवणा ऊनोदराः नव। एवमेकाशीतिः कार्याः। व्रतदिने श्रीपार्श्वनाथस्याभिषेकं कार्यं पूजनं च। समाप्तावुद्यापनं च कार्यम्, ये भव्या इदं रविव्रतं विधिपूर्वकं कुर्वन्ति तेषां कण्ठे मुक्तिकामिनी कण्ठरत्नमाला पतिष्यति।

अर्थ—रविव्रतमें आषाढ मास शुक्ल पक्षमें प्रथम रविवार पार्श्वनाथ संज्ञक होता है, इससे आरम्भ कर नौ रविवार तक व्रत करना चाहिए। यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है। प्रथम वर्षमें नौ रविवारोंको उपवास, द्वितीय वर्षमें नौ रविवारोंको एकाशन, तृतीय वर्षमें नव रविवारोंको काञ्जी—छाछ या छाछसे बने महेरी आदि पदार्थ लेकर

एकाशन, चतुर्थ वर्षमें नव रविवारोंको बिना घी का रूक्ष भोजन, पञ्चम वर्षमें नौ रविवारोंको नीरस भोजन, षष्ठ वर्षमें नो रविवारोंको बिना नमकका अलोना भोजन, सप्तम वर्षमें नौ रविवारोको बिना दूध, दही और घृतके भोजन, अष्टम वर्षमें नौ रविवारोंको ऊनोदर एवं नवम वर्षमें नौ रविवारोको बिना नमकके नौ ऊनोदर किये जाते हैं। इस प्रकार ८१ व्रत-दिन होते हैं। व्रतके दिन श्रीपार्श्वनाथ भगवान्का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। जो विधिपूर्वक रविव्रतका पालन करते हैं, उनके गलेमें मोक्षलक्ष्मीके गलेका हार पड़ता है। व्रत पूरा होनेपर उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—आषाढ मासके शुक्ल पक्षके प्रथम रविवारसे लेकर नौ रविवारों तक यह व्रत किया जाता है। प्रत्येक रविवारके दिन उपवास या बिना नमकका एकाशन करनेका नियम है। व्रतके दिन पार्श्वनाथ भगवान्का पूजन, अभिषेक करे तथा समस्त गृहारम्भका त्याग कर, कषाय और वासनाको दूर करनेका प्रयत्न करे। रात्रि जागरण पूर्वक व्यतीत करे तथा **'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपार्श्वनाथाय नमः'** इस मन्त्रका तीन बार एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए। नौ वर्ष व्रत करने के उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है।

पहले वर्ष नव उपवास, दूसरे वर्ष नमक बिना माड़-भात, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल-भात, चौथे वर्ष बिना नमक खिचड़ी, पाँचवें वर्ष बिना नमक रोटी, छठवें वर्ष बिना नमक दही-भात, सातवें और आठवें वर्ष बिना नमक मूँगकी दाल और रोटी तथा नौवें वर्ष एक बारका परोसा हुआ बिना नमकका भोजन करे। थालीमें जूठन नहीं छोड़ना चाहिए। प्रथम रविवार और अन्तिम रविवारको प्रतिवर्ष उपवास करना चाहिए। व्रतके दिन नवधा भक्ति सहित मुनिराजोंको भोजन कराना चाहिए।

रविव्रतका फल

सुतं वन्ध्या समाप्नोति दरिद्रो लभते धनम्।
मूढः श्रुतमवाप्नोति रोगी मुञ्चति व्याधितः ॥

अर्थ—रविवारका व्रत करनेसे वन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्त करती है, दरिद्री व्यक्ति धन प्राप्त करता है, मूर्ख व्यक्ति शास्त्रज्ञान एवं रोगी व्यक्ति व्याधिसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

सप्तपरमस्थान व्रतकी विधि

अथ सप्तपरमस्थानं श्रावणमासे शुक्लपक्षादिमदिनमारभ्य शुक्लसप्तदिनं यावत् कार्यम्। व्रतदिने स्नपनपूजनजाप्यकथाश्रवणदानानि कार्याणि। एकवस्तुभक्षणं कार्यमा सप्तदिनम्, विधिवत् समाप्तावुद्यापनं च। तत्फलम्—

जातिमैश्वर्यगार्हस्थ्यं समुत्कृष्टं तपस्तथा।
सुराधीशपदं चक्रिपदं चार्हन्त्यसप्तकम्॥१॥
सन्निर्वाणपदं भव्यलोके हि जिनभाषितम्।
क्रमात्कर्मविदामेति परमस्थानसप्तकम्॥२॥

अर्थ—सप्तपरमस्थान व्रतमें श्रावणमास सुदी प्रतिपदासे श्रावण सुदी सप्तमी तक व्रत करना चाहिए। व्रतके दिन अभिषेक, पूजन, जाप, कथाश्रवण, दान आदि कार्योंको करना चाहिए। सातों दिन एक ही वस्तुका भोजन किया जाता है। विधिवत् व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। इस व्रतका फल निम्न है—

जाति, ऐश्वर्य, गार्हस्थ्य, उत्कृष्ट तप, इन्द्रपदवी या चक्रवर्ती पदवी, अर्हन्तपदकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है। संसारमें निर्वाण ही परम पद है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। इस प्रकार सप्तपरमस्थान व्रतके पालनेसे सातवाँ परमपद निर्वाण प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि सप्त परमस्थान व्रतके पालनेसे सप्त परमपदकी प्राप्ति होती है। यह व्रत लौकिक अभ्युदयके साथ निर्वाणपदको भी देनेवाला है। जो श्रावक इस व्रतका पालन करता है, वह परम्परासे अल्पकालमें ही निर्वाणको प्राप्त कर लेता है।

विवेचन—सप्तपरमस्थान व्रत श्रावण सुदी प्रतिपदासे सप्तमीतक सात दिन किया जाता है। प्रतिपदाके दिन अर्हन्त भगवान्का अभिषेक

तथा सप्तपरमस्थान पूजन करनेके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सज्जातिपरमस्थानप्राप्तये श्रीअभयजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। स्वाध्याय, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर उपवास करना चाहिए। यदि उपवास करनेकी शक्ति न हो तो किसी एक ही वस्तुका आहार ग्रहण किया जाता है। आहारमें दो अनाज या दो वस्तुएँ नहीं होनी चाहिए। केवल एक अनाज होना आवश्यक है—

द्वितीयाके दिन सप्तपरमस्थान पूजन, अभिषेकके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सद्गृहस्थपरमस्थानप्राप्तये श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप करना, तृतीयाको 'ओं ह्रीं अर्हं श्री पारिव्राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप; चतुर्थी को 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसुरेन्द्रपरमस्थानप्राप्तये श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, पञ्चमीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसाम्राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप; षष्ठीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्री आर्हन्त्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप; एवं सप्तमीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीनिर्वाणपरमस्थानप्राप्तये श्रीवीरजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। सातदिन व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें रात्रिजागरण करना चाहिए, यदि शक्ति न हो या और किसी प्रकारकी बाधा हो तो मध्यरात्रिमें एक प्रहर शयन करना चाहिए।

शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत

अथ श्रावणमासे शुक्लपक्षे सप्तमीदिनेऽयादिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य कण्ठे मालां शीर्षे मुकुटं च निधाय उपवासं कुर्यात्। न तु एतावता वीतरागत्वहानिर्भवति। यतः कापि कन्या तु स्ववैधव्यनिवारणाय जिनशासनागमोद्दिष्टविधिं कुरुते। एतद्विधिनिन्दकस्तु जिनागमद्रोही जिनाज्ञालोपी भवतीति न

सन्देहः कार्यः। सकलकीर्त्तिभिः स्वकीये कथाकोपे श्रुतासागरैस्तथा दामोदरैस्तथादेवनन्दिभिरभ्रदेवैश्च तथैव प्रतिपादितमतः पूर्वक्रमो नाक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—श्रावण शुक्ला सप्तमीको आदिनाथ या पार्श्वनाथके कण्ठमें माला और शिरमें मुकुट बाँधकर उपवास करना, शीर्ष मुकुट सप्तमी व्रत है। वीतरागी प्रभुके गलेमें माला और शिरपर मुकुट बाँधनेमें वीतरागताकी हानि नहीं होती है, क्योंकि कोई भी कन्या अपने वैधव्यके निवारणके लिए जिनागममें बतायी हुई विधिका पालन करती है। जो कोई इस विधिकी निन्दा करता है, वह जिनागमद्रोही तथा जिनाज्ञालोपी होता है, अतः इस विधिमें सन्देह नहीं करना चाहिए। सकलकीर्त्ति आचार्यने अपने कथाकोषमें, तथा श्रुतसागर, दामोदर, देवनन्दी और अभ्रदेव आदिने भी इस विधिका कथन किया है। अतः ऊपर जिस विधिका कथन किया है, वह समीचीन है, क्रमपूर्वक है, अक्रमिक नहीं है।

विवेचन—शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत श्रावण सुदी सप्तमीको किया जाता है। इस दिन कन्याएँ या सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए भगवान् आदिनाथका पूजन, अभिषेक करती हैं तथा प्रोषधोपवास करती हुई धर्मध्यानसे दिन व्यतीत करती हैं। इस व्रत में 'ओं ह्रीं **श्रीवृषभतीर्थंकराय नमः**' इस मन्त्रका या '**ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नमः**' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। रातको जागरण करना आवश्यक माना गया है। मुकुटसप्तमी व्रतमें भगवान् आदिनाथ और पार्श्वनाथके नामोंकी एक हजार आठ जाप करनी चाहिए। इस व्रतमें रातको बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, संकटहरण विनती, दुःखहरण विनती, कल्याणमन्दिर, भक्तामर आदि स्तोत्रका पाठ करना चाहिए। अष्टमीके दिन अभिषेक, पूजन और सामायिकके पश्चात् एकाशन करना चाहिए। षष्ठीसे लेकर अष्टमी तक तीन दिनोंका पूर्ण शीलव्रत पालन किया जाता है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधि

अक्षयनिधिनियमस्तु श्रावणशुक्ला दशमी भाद्रपदशुक्ला तत्कृष्णा चेति दशमीत्रयं पञ्चवर्ष यावत् व्रतं कार्यम्; दशमीहानौ तु नवम्यां वृद्धौ तु यस्मिन् दिने पूर्णा दशमी तस्मिन्नेव दिने व्रतं कार्यम्; वृद्धिगततिथौ सोदयप्रमाणेऽपि व्रतं न कार्यम्।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रत श्रावणशुक्ला दशमी, भाद्रपदशुक्ला दशमी, भाद्रपद कृष्णा दशमी, इस प्रकार तीन दशमियोंको किया जाता है। यह व्रत पाँच वर्ष तक करना होता है। दशमी तिथिकी हानि होनेपर नवमीको व्रत और दशमी तिथिकी वृद्धि होनेपर जिस दिन पूर्ण दशमी हो उस दिन व्रत किया जाता है। वृद्धिगत तिथि छः घटीसे अधिक हो तो भी दूसरे दिन व्रत करनेका विधान नहीं है। यह व्रत वर्षमें तीन दिनसे अधिक नहीं किया जाता है, तिथि वृद्धि होनेपर भी एक दिन अधिक करनेका नियम नहीं है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रत श्रावण सुदी दशमी, भादों वदी दशमी और भादों सुदी दशमी इन तीनों दशमी तिथियोंको वर्षमें एक बार किया जाता है। इस व्रतका दूसरा नाम अक्षयफल दशमी व्रत भी है। अक्षयनिधि व्रत करनेवालेको दशमीके दिन प्रोषध करना चाहिए। गृहारम्भ छोड़कर श्रीजिन-मन्दिरमें जाकर भगवान् आदिनाथका अभिषेक और पूजन करना चाहिए। '**ॐ ह्रीं नमो ऋषभाय**' इस मन्त्रका जाप उपवासके दिन १००८ करना चाहिए। रात्रिमें जागरण, शक्ति न होनेपर अल्प निद्रा ली जाती है। धर्मध्यान व्रतके दिन विशेष रूपसे किया जाता है। शीलव्रत श्रावण सुदी नवमीसे लेकर भादों सुदी एकादशी तक इस व्रतके धारीको पालना चाहिए।

मासिक सुगन्ध दशमी व्रत

मासिकसुगन्धदशमीव्रतं तु पौषशुक्लपञ्चमीमारभ्य दशमी-

पर्यन्तं भवति हानौ वृद्धौ च स एव मार्गो ज्ञेयः, इत्यादीनि मासिकानि भवन्ति ॥

अर्थ—सुगन्धदशमी व्रत पौषशुक्ला पञ्चमीसे दशमी तक किया जाता है। तिथिकी हानि, वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम समझना चाहिए। इस प्रकार मासिक व्रतोंका कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—सुगन्ध दशमी व्रत भादों सुदी दशमीको किया जाता है। न मालूम आचार्यने यहाँ किस अभिप्रायसे पौष सुदी पंचमीसे पौष सुदी दशमी तक किये जानेवाले व्रतको सुगन्ध दशमी व्रत कहा है। इस व्रतकी प्रसिद्धि भादों सुदी दशमीकी है।

व्रतके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा, अभिषेक आदि करे। दसवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथ भगवान्‌की पूजा विशेषतः की जाती है। रात्रि जागरणपूर्वक बितायी जाती है। 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय: नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। प्रोषधके दूसरे दिन चौबीसों भगवान्‌की पूजा तथा अतिथिको आहार दान देनेके उपरान्त पारणा की जाती है। इस व्रतको सौभाग्यकी आकांक्षासे प्रायः स्त्रियाँ करती हैं। व्रतके मध्याह्नमें पूर्वोक्त मन्त्रके प्रत्येक उच्चारणके साथ अग्निमें धूपका हवन किया जाता है।

सांवत्सरिक व्रत

सांवत्सरिकानि नन्दीश्वरपङ्क्तिचारित्र्यशुद्धिदुःखहरण-सुखकरणलक्षणपंक्तिसिंहनिष्क्रीडितभद्रावसन्तत्रिलोकसारश्रुत-स्कन्धविमानपंक्तिमुरजमध्यमृदंगमध्यशातकुंभश्रुतज्ञानद्वादश-व्रतत्रिपञ्चाशत्क्रियाघातिक्षयादीनि व्रतानि वात्सरिकानि भवन्ति।

अर्थ—नन्दीश्वरपंक्ति, चारित्र्यशुद्धि, दुःखहरण, सुखकरण, लक्षण-पंक्ति, सिंहनिष्क्रीडित, भद्रावसन्त, त्रिलोकसार, श्रुतस्कन्ध, विमान-पंक्ति, मुरजमध्यमृदंग, मध्यशातकुम्भ, श्रुतज्ञान, द्वादशव्रत, त्रिपञ्चा-शत् क्रिया एवं घातिक्षय आदि व्रत सांवत्सरिक व्रत कहे जाते हैं।

नन्दीश्वरपंक्तौ षट्पञ्चाशदुपवासाः द्विपञ्चाशत्पारणाः भवन्ति । इदं व्रतं वत्सरमध्ये मासत्रयमष्टादशदिनपर्यन्तं स्वशक्त्या करणीयम् ।

अर्थ—नन्दीश्वरपंक्ति व्रतमें ५६ उपवास और ५२ पारणाएँ होती हैं । यह व्रत एक वर्षमें तीन मास अठारह दिन तक अपनी शक्तिके अनुसार किया जाता है ।

विवेचन—नन्दीश्वरपंक्ति व्रत १०८ दिनमें पूर्ण होता है । इसमें पहले चार उपवास और चार पारणाएँ की जाती हैं । पश्चात् एक वेला—दो दिनका उपवास करनेके अनन्तर पारण करनेका नियम है । तदुपरान्त एक उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार १२ उपवास और १२ पारणाएँ करनी पड़ती हैं । अनन्तर एक वेला करनेके उपरान्त पारणा की जाती है । इसके पश्चात् उपवास और पारणा इस क्रमसे करते हुए १२ उपवास और १२ पारणाएँ सम्पन्न की जाती हैं । पुनः एक वेला करनेके अनन्तर पारणा की जाती है । तत्पश्चात् उपवास और पारणाके क्रमसे १२ उपवास और पारणा करनेका विधान है । पुनः एकबेला और पारणा करनेके पश्चात् उपवास और पारणा क्रमसे आठ उपवास और आठ पारणाएँ करनी चाहिए । इस प्रकार इस व्रतमें कुल चारवेला, और अड़तालीस उपवास तथा बावन पारणाएँ होती हैं । कुल उपवास (४+१२+१२+१२+८+४ वेला = ८) = ५६ उपवास । पारणाएँ ४+१+१२+१+१२+१+१२+१+८=५२ होती हैं । इस व्रत में 'ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपस्थाकृत्रिमजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है । तीन महीना अठारह दिनतक शीलव्रतका पालन भी करना चाहिए ।

चारित्र्यशुद्धि व्रतकी व्यवस्था

चारित्र्यशुद्धौ दशशतचत्वारिंशदुपवासाः सूत्रक्रमेण हिंसादिपापानां त्यागश्च कार्यः । इदं षड्वर्षकाले परिपूर्णं भवति ।

अर्थ—चारित्रशुद्धि व्रत १०४२ उपवासका होता है। इस व्रतमें उपवासके दिन हिंसादि पापोंका अतीचार सहित त्याग करना चाहिए। ६ वर्षमें यह व्रत पूरा होता है। इसमें एक उपवास पश्चात् एक पारणा, पुनः उपवास पश्चात् पारणा इसप्रकार उपवास और पारणाके क्रम से २०८४ दिनोंमें परिपूर्ण होता है।

सिंहनिष्क्रीड़ित व्रतकी व्यवस्था

सिंहनिष्क्रीडितं त्रयोदशमासैरष्टाविंशतिदिनैः परिपूर्णं भवति। अवशेषो विधिः हरिवंशपुराणाद् बृहत्सारचतुर्विंशतिकाग्रन्थादुद्यापनसाराच्च सम्यग् ज्ञातव्यः, अत्र तु विस्तारभयान्न व्याख्यातः। एतेषु हानिवृद्धिक्रमो न व्यावर्तितः, यतो हि एतानि व्रतानि महामुनीनां संचरितान्येव। श्रावकस्यापि करणीयत्वादुपदिष्टानि। अतः श्रावकैर्देशकालाभिज्ञैश्च द्रव्यक्षेत्रकालभावान् समाश्रित्य सम्यग्यत्नाचारतया तिथिव्रतमार्गमनुलङ्घ्य श्रुतानुकूलतया यतेर्मार्गाविरोधेन व्रतमाचरणीयम्। इति वात्सरिकानि व्रतानि।

अर्थ—सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत तेरह मास अट्ठाईस दिनोंमें पूर्ण होता है। शेष व्रतोंकी विधि हरिवंश पुराण, बृहत्सारचतुर्विंशतिका और उद्यापनसारसे सम्यक् प्रकार अवगत करनी चाहिए, यहाँ विस्तारभयसे नहीं दी गयी है। इन व्रतोंकी तिथियोंके हानि, वृद्धि क्रमको भी वर्णन नहीं किया गया है, क्योंकि ये व्रत महामुनियोंके होते हैं। साधारण श्रावक इन व्रतोंका पालन नहीं कर सकता है। हाँ, व्रतधारी विशेष श्रावक इनका पालन कर सकता है, इसीलिए यहाँपर इनका वर्णन किया गया है। अतएव देश-काल मर्यादा विज्ञ श्रावकको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रय लेकर सम्यक् यत्नाचार पूर्वक व्रततिथि मार्गका उलंघन न करते हुए आगमके अनुकूल और मुनिमार्गके अविरोधी व्रतोंका आचरण करना चाहिए। इस प्रकार साँवत्सरिक व्रतोंका निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत तीन प्रकारका होता है—उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत १३ महीना २८ दिन तक किया जाता है, मध्यम ५ महीना १० दिन और जघन्य ३ महीना २० दिकतक किया जाता है। जघन्य व्रतमें ६० दिन उपवास और २० दिनकी पारणाएँ होती हैं। प्रथम एक उपवास, पश्चात् पारणा, अनन्तर दो दिनका उपवास एक पारणा, पश्चात् एक उपवास, पारणा; तत्पश्चात् तीन दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, चार दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, पुनः पाँच दिनका उपवास पारणा, पश्चात् चार दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, तीन दिनका उपवास पारणा, चार दिनका उपवास पारणा, तीन दिनका उपवास पारणा, एक दिनका उपवास पारणा, दो दिनका उपवास पारणा एवं एक दिनका उपवास पारणा की जाती है। अर्थात् ४ + २+१+३+२ + ४ + ३+५ + ४ + ५+५ + ४+५ + ३+ ४ + २+३+१+२+१ दिनों के उपवासोंके अनन्तर पारणाएँ की जाती हैं। इस व्रतको शक्तिशाली, इन्द्रियजयी और व्रती श्रावक ही कर सकते हैं। यह तपकी प्रक्रिया है। मध्यम व्रत करनेवाला उपर्युक्त उपवासोंसे भी दूने उपवास करता है, तब पारणा होती है। उत्तम विधि करनेवाला २ + ४+२ + ६ + ४ + ८+६+१०+८ + १०+१० + ८+१०+६ + ८+ ४ + ६ + २+४+२=२० मध्यकी पारणाएँ, कुल १४० दिन पुनः इस प्रकार व्रतारम्भ करता है तथा तीसरी बार २+४+२ + ६ + ४+८ + ६+ १० + ८+१०+१० + ८+१० + ६+८ + ४ + ६+२ + २ + २ इस प्रकार कुल व्रत-दिन संख्या १४०+१४० + १३८=४१८ उपवास + २० पारणा+१२० उपवास+२० पारणा ११५ उपवास + २० पारणा=४१८ दिन अर्थात् १३ महीना २८ दिन प्रमाण।

अपूर्व व्रतकी विधि

भगवन्! अपूर्वव्रतस्य किं स्वरूपमिति पृष्टे उत्तरमाह—श्रूयतां श्रावकोत्तम! भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्वादिदिवसत्रये

त्रिरात्रं च क्रियते; तत्र भुक्तिरेकान्तरेण वा पञ्चाब्दानि यावत्काय ततश्चोद्यापनम्, पूर्वतिथिक्षये पूर्वा तिथिरमावस्या कार्या एतद्व्रतं पाक्षिकं चान्यैः प्रोक्तं तेषामपेक्षया द्वितीया पूर्वा भवति, व्रतं तु चतुर्थीपर्यन्तं भवति। परन्तु नैतन्मतं प्रमाणं, कथं बलात्कारिणां मते चतुर्थी दशलाक्षणिकव्रतस्यादिधारणादिनत्वात् न ग्राह्या; अधिकतिथावधिकमार्गेण व्रतं कार्यम् दाने लाहे भोग-उपभोगे वीरियेण संमतेण केवलल्द्धीउ दंसणणाणे चरित्तेय इति फलं ज्ञातव्यम्।

अर्थ—हे भगवन्! अपूर्व व्रतका क्या स्वरूप है, इस प्रकार प्रश्न करनेपर, गौतम गणधरने उत्तर दिया—हे श्रावकोत्तम! सुनिये—भाद्रपद मासमे शुक्ल पक्षमे पूर्वादि तीन दिन और तीन रात्रियोंमें व्रत करते हैं। एक दिन व्रत, पश्चात् एकाशन पुनः व्रत इस प्रकार तीन दिन व्रत किया जाता है। पाँच वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। पूर्व तिथिके क्षय होनेपर पूर्वा तिथि अमावस्या मानी जाती है। कुछ आचार्य इस व्रतको पाक्षिक मानते हैं। उनके मतसे तिथिक्षय होनेपर पूर्वा द्वितीया तिथि ली गयी है, अतः द्वितीयासे चतुर्थी पर्यन्त व्रत करना चाहिए। परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है, क्योकि बलात्कार गणके आचार्य चतुर्थी तिथिको दशलक्षण व्रतकी धारणा तिथि मानते है, अतः चतुर्थीका ग्रहण नहीं होना चाहिए।

तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। इस व्रतका फल अपूर्व ही होता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, क्षायिक लब्धि, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दर्शन और क्षायिक चारित्र आदिकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है।

विवेचन—अपूर्व व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तक किया जाता है। इसका दूसरा नाम त्रैलोक्य तिलक व्रत भी है। इस व्रतमें प्रतिपदाको उपवास कर गृहारम्भका त्यागकर तीनों कालकी चौबीसीकी पूजा करनी चाहिए अथवा तीन लोककी रचनाकर अकृत्रिम

चैत्यालयोंकी स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। तीनों काल 'ओं ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धयकृत्रिमजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। द्वितीयाके दिन उपवास करना और शेष धार्मिक विधि पूर्ववत् ही सम्पन्न की जाती है। तृतीयाके दिन उपवास करना, घरका आरम्भ त्याग कर जिनालयमें जाकर उत्साह पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानोंको पूर्ण करना। अकृत्रिम जिनालयोंका पूजन, विकास सम्बन्धी चतुर्विंशति जिनपूजन आदि पूजन विधानोंको विधिपूर्वक करना चाहिए। इस दिन तीनों काल 'ॐ ह्रीं त्रिकालसम्बन्धित्रिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। रात जागरण कर धर्मध्यान पूर्वक बितायी जाती है तथा चौबीसों भगवान्‌की स्तुतियोंको रातमें पढ़कर भावनाओंको पवित्र किया जाता है। तिथि क्षय होनेपर इस व्रतको अमावस्यासे आरम्भ करना चाहिए, समाप्ति सर्वदा ही तृतीयाको की जाती है। लोकमें तिलक व्रतका विधान अन्यत्र केवल तृतीयाका ही मिलता है, परन्तु पूरी विधि तीन दिनोंमें सम्पन्न की जाती है। तीन वर्ष या पाँच वर्ष व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन किया जाता है।

पुरन्दर-व्रत-विधि

अथ पुरन्दरव्रतमाह—यत्र तत्र क्वचिन्मासे समारभ्य शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्याष्टमीपर्यन्तं कार्यम्। अत्र प्रतिपदष्टम्योः प्रोषधं शेषमेकभुक्तञ्च वा एकान्तरेण व्रतं कार्यम्। एतद्व्रतमनियतमासिकं नियतपाक्षिकं द्वादशमासिकं ज्ञेयम्। फलञ्चैतत्—

दारिद्र्यमृगशार्दूलं मूलं मोक्षश्च निश्चलम्।
पुरन्दरविधिं विद्धि सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१॥

अर्थ—पुरन्दर व्रतका स्वरूप कहते हैं—किसी भी महीनेमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अष्टमी तक पुरन्दर व्रतका पालन किया जाता है। प्रतिपदा और अष्टमीका प्रोषध तथा शेष दिनोंमें एकाशन अथवा एकान्तरसे उपवास और एकाशन करने चाहिए अर्थात् प्रतिपदाका उपवास द्वितीयाका एकाशन; तृतीया उपवास चतुर्थीका एकाशन, पञ्चमीका उपवास

षष्ठीका एकाशन, सप्तमीका उपवास और अष्टमीका एकाशन, किये जाते हैं। यह व्रत अनियत मासिक और नियत पाक्षिक है, क्योंकि इसके लिए कोई भी महीना निश्चित नहीं है पर शुक्ल पक्ष निश्चित है। इसका फल निम्न है—

पुरन्दर व्रत दरिद्रतारूपी मृगको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान है और मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए मूल कारण है अर्थात् इस व्रतके पालन करनेसे निश्चय ही मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तथा यह व्रत मनुष्योंको सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि पुरन्दर व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे रोग, शोक, व्याधि, व्यसन सभी दूर हो जाते हैं तथा कालान्तरमें परम्परासे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

विवेचन—क्रियाकोषमें बताया गया है कि पुरन्दर व्रतमें किसी भी महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक लगातार आठ दिनका प्रोषध करना चाहिए। आठों दिन घरका समस्त आरम्भ त्यागकर जिनालयमें भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक, पूजन, आरती एवं स्तवन आदि करने चाहिए। आठ दिनके उपवासके पश्चात् नवमी तिथिको पारणा करनेका विधान है। यह काम्य व्रत है, दरिद्रता एवं रोग-शोकको दूर करनेके लिए किया जाता है। व्रतके दिनोंमें रात्रिको धर्मध्यान करना, रात्रि जागरण करना, जिनेन्द्र प्रभुकी आरती उतारना एवं भजन पढ़ना आदि क्रियाएँ भी करना आवश्यक है। रातके मध्यभागमें अल्प निद्रा लेना तथा जिनेन्द्र प्रभुके गुणोंका चिन्तन करना और सामायिक स्वाध्याय करना भी इस व्रतकी विधिके भीतर परिगणित है। प्रोषधके दिनोंमें स्नान, तेलमर्दन, दन्तधावन आदि क्रियाओंका त्याग करना चाहिए। यदि आठ दिनतक लगातार उपवास करनेकी शक्ति न हो तो चार दिनके पश्चात् पारणा कर लेनी चाहिए, पारणामें एक ही अनाज तथा एक ही प्रकारकी वस्तु लेनी चाहिए। जिनमें उपर्युक्त प्रकारसे व्रत करनेकी शक्ति न हो, वे अष्टमी और प्रतिपदाका उपवास करें तथा शेष दिन एकाशन

करें। अन्य धार्मिक क्रियाएँ समान हैं, स्नान करनेवालेको द्रव्यपूजा और स्नान न करनेवाले श्रावकको भावपूजा करनी चाहिए। व्रतके दिनोंमें प्रतिदिन णमोकार मन्त्रका एक हज़ार आठ बार जाप करना चाहिए। एकाशनके दिन तीन बार प्रातः, दोपहर और सन्ध्याको एक हज़ार आठ बार णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए।

दशलक्षण व्रतकी विधि

दशलाक्षणिकव्रते भाद्रपदमासे शुक्ले श्रीपञ्चमीदिने प्रोषधः कार्यः, सर्वगृहारम्भं परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजार्चनादिकञ्च कार्यम्। चतुर्विंशतिकां प्रतिमां समारोप्य जिनास्पदे दशलाक्षणिकं यन्त्रं तदग्रे ध्रियते, ततश्च स्नपनं कुर्यात्, भव्यः मोक्षाभिलाषी अष्टधापूजनद्रव्यैः जिनं पूजयेत्। पञ्चमीदिनमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रतं कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिना स्थातव्यम्। इदं व्रतं दशवर्षपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चोद्यापनं कुर्यात्। अथवा दशोपवासाः कार्याः। अथवा पञ्चमीचतुर्दश्योरुपवासद्वयं शेषमेकाशनमिति केषाञ्चिन्मतम्, तत्तु शक्तिहीनतयाङ्गीकृतं न तु परमो मार्गः।

अर्थ—दशलक्षण व्रत भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ किया जाता है। पञ्चमी तिथिको प्रोषध करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भका त्यागकर जिन-मन्दिरमें जाकर पूजन,अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेकके लिए चौबीस भगवान्की प्रतिमाओंको स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यन्त्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी भव्य अष्ट द्रव्योंसे भगवान् जिनेन्द्रका पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पञ्चमीसे भादों सुदी दशमीतक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है।

इस व्रतको दस वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर

दिया जाता है। इस व्रतकी उत्कृष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अर्थात् पञ्चमीसे लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करने चाहिए। अथवा पञ्चमी और चतुर्दशीका उपवास तथा शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह व्रत विधि शक्तिहीनोके लिए बतायी गयी है, यह परममार्ग नही है।

विवेचन—दशलक्षण व्रत भादों, माघ और चैत्र मासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीसे चतुर्दशीतक किया जाता है। परन्तु प्रचलित रूपमें केवल भाद्रपदमास ही ग्रहण किया गया है। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमें त्रिकाल सामायिक, वन्दना और प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रतारम्भके दिनसे लेकर व्रत समाप्तितक जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेकके साथ दशलक्षण यन्त्रका भी अभिषेक किया जाता है। नित्य नैमित्तिक पूजाओंके अनन्तर दशलक्षणपूजा की जाती है। पञ्चमी षष्ठी, सप्तमी आदि दश तिथियोंमे क्रमसे प्रत्येक तिथिको
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमार्जवधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमतपधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमाकिञ्चनधर्माङ्गाय नमः' एवं
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः'
मन्त्रका जाप करना चाहिए। समस्त दिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिक आदि कार्योंमें व्यतीत करे, रात्रि जागरण करे और समस्त विकथाओंका त्याग कर आत्मचिन्तनमे लीन रहे। दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध, वेला, तेला, एकाशन, ऊनोदर एवं रसपरित्याग करने चाहिए। स्वादिष्ट

भोजनका त्याग करे तथा स्वच्छ और सादे वस्त्र धारण करने चाहिए। इस व्रतका पालन दस वर्षतक किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल

आदितिथिक्षये चतुर्थीतः, मध्यतिथिक्षये चतुर्थीतः अष्टम्यादितिथिह्रासेऽपि चतुर्थीतः व्रतं कार्यम्। नन्वेकान्तरेण व्रते कृते सति अष्टम्यामपि पारणा भवतीति दूषणम्, नैवं वाच्यम्; एकान्तरस्यागमोक्तत्वात्। तिथिक्षयेऽपि पञ्चम्यां पारणादोष आगच्छति, इति न वाच्यं प्रोषधोपवासकथितपञ्चम्याः चतुर्थ्यामेवाध्यारोपात्। एवं दशवर्षपर्यन्तं व्रतं पालनीयम्, ततश्चोद्यापनं भवेत्। एतस्य फलं तु मुक्तिरिति निर्णयः।

अर्थ—दशलक्षण व्रतमें आदितिथि पञ्चमीका अभाव होनेपर चतुर्थी तिथिसे व्रतारम्भ, मध्यतिथिका अभाव होनेपर चतुर्थीसे व्रतारम्भ और अष्टमी तिथिके अनन्तर चतुर्दशी तक किसी भी तिथिका ह्रास होनेपर चतुर्थीसे ही व्रतका आरम्भ किया जाता है।

यहाँ शंका की गयी है कि जो एकान्तर उपवास और पारणा करेगा, उसे अष्टमीकी पारणा करनी होगी अर्थात् पञ्चमीका उपवास षष्ठीकी पारणा, सप्तमीका उपवास अष्टमीकी पारणा, नवमीका उपवास दशमीकी पारणा इत्यादि एकान्तर उपवासके क्रमसे अष्टमीकी पारणा आती है, यह दोष है। क्योंकि अष्टमी पर्वतिथि है, इसका उपवास अवश्य करना चाहिए। आचार्य उत्तर देते हैं कि यहाँ पर्वतिथिका विचार नहीं किया जाता है, आगममें एकान्तर उपवास करनेका क्रम बताया गया है, अतः यहाँपर एकान्तर उपवास क्रम ही ग्राह्य है। इसलिए अष्टमीको पारणा करनेमें दोष नहीं है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जायगा, जिससे एकान्तर उपवास करनेवाला पञ्चमीको पारणा करेगा, यह भी दोष है।

क्योंकि दशलक्षण व्रतका प्रोषध पञ्चमीको होना चाहिए, किन्तु पञ्चमीकी पारणा आती है। आचार्य इस शंकाका समाधान करते हुए कहते हैं कि मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जाता है, किन्तु इस चतुर्थीमें ही पञ्चमीका अध्यारोप कर लिया जाता है। उत्तम क्षमाधर्मकी भावना तथा जाप, जो कि पञ्चमीको किया जाता है इसी चतुर्थीको कर लिये जाते हैं, अतः चतुर्थीको ही पञ्चमी मान लिया जाता है। अतएव पञ्चमीकी पारणामें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार इस दशलक्षण व्रतका पालन दस वर्ष तक करना चाहिए।

इस व्रतका फल मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति है ; यों तो इस व्रतसे लौकिक ऐश्वर्य और अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, पर वास्तवमें यह व्रत मोक्ष-लक्ष्मीको कालान्तरमें देता है।

विवेचन—तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतको चतुर्थीसे प्रारम्भ किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर व्रत एक दिन अधिक किया जाता है। अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर अर्थात् दो दिन चतुर्दशी होनेपर प्रथम दिन व्रत किया जाता है। यदि दूसरी चतुर्दशी भी छः घटीसे अधिक हो तो उस दिन भी व्रत करना होता है तथा छः घटी प्रमाणसे अल्प होने पर पारणा की जाती है। इस व्रतका फल अनुपम होता है। दस धर्म आत्माके वास्तविक स्वरूप है, इनके चिन्तन, मनन और जीवनमें उतारनेसे जीव शीघ्र ही अपने कर्मोको तोड़कर निर्वाण प्राप्त करता है। उत्तम क्षमादि धर्म आत्माकी कर्मकालिमाको नष्ट करनेमें समर्थ है। व्रतोपवाससे विषयोंकी ओर ले जानेवाली इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा जीव अपने उत्थानका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

पुष्पाञ्जलि व्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल

पूर्वकथितपुष्पाञ्जलिव्रतं पञ्चदिनपर्यन्तं करणीयम्। तत्र केतकीकुसुमादिभिः चतुर्विंशतिविकसितसुगन्धितसुमनोभिश्चतुर्विंशतिजिनान् पूजयेत्। यथोक्तकुसुमाभावे पूजयेत्

पीततन्दुलैः । पञ्चवर्षानन्तरं उद्यापनं कार्यम् । केवलज्ञान-सम्प्राप्तिरेतस्य परमं फलम् । तिथिक्षये वा तिथिवृद्धौ पूर्वोक्त एव क्रमः स्मर्तव्यः । पुष्पाञ्जलिव्रते पञ्चमीषष्ठ्योरुपवासः सप्तम्यां पारणा अष्टमी-नवम्योरुपवासः दशम्यां पारणा, एकान्तरेण तु तिथिक्षये चादिदिने गृहीते पारणाद्वयं मध्ये कार्यम्; पञ्चम्यामष्टम्यां च षष्ठ्यामष्टम्यां वा यथैकान्तरं स्यात्तथा कार्यम्; एतत् पुष्पाञ्जलिव्रतं कर्मरोगहरं मुक्तिप्रदं च पारम्पर्येण भवति ।

अर्थ—पहले बताये हुए पुष्पाञ्जलि व्रतको पाँच दिन तक करना चाहिए । इस व्रतमें केतकी, बेला, चम्पा आदि विकसित और सुगन्धित पुष्पोंसे चौबीस भगवान्की पूजा करनी चाहिए । यदि वास्तविक पुष्प न हों या वास्तविक पुष्पोंसे पूजन करना उपयुक्त न समझें तो पीले चावलोंसे भगवान्की पूजा करनी चाहिए । पाँच वर्षके पश्चात् व्रतका उद्यापन कर देना होता है । इस व्रतका फल केवलज्ञानकी प्राप्ति होना बताया गया है अर्थात् विधिपूर्वक पुष्पाञ्जलि व्रतके पालनेसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है । तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए । तिथिक्षयमें एक दिन पहलेसे और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत किया जाता है । पुष्पाञ्जलि व्रतमें पञ्चमी और षष्ठी इन दोनों दिनोंका उपवास, सप्तमीको पारणा, अष्टमी और नवमीका उपवास तथा दशमीको पारणा की जाती है । एकान्तर उपवास करनेवालेको अर्थात् एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा, पुनः उपवास तत्पश्चात् पारणा इस क्रमसे उपवास करनेवालेको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले से व्रत करनेके कारण मध्यमें दो पारणाएँ करनी चाहिए । पञ्चमी और अष्टमीकी पारणा अथवा षष्ठी और अष्टमीकी पारणा की जाती है । एकान्तर उपवास और पारणाका क्रम चल सके ऐसा करना चाहिए । यह पुष्पाञ्जलि व्रत कर्मरूपी रोगको दूर करनेवाला, लौकिक अभ्युदयका प्रदाता एवं परम्परासे मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाला है ।

विवेचन—पुष्पाञ्जलि व्रतकी विधि पहले लिखी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर कुछ विशेष बातें इस व्रतके सम्बन्धमें बतलायी हैं। पुष्पाञ्जलि शब्दका अर्थ है कि पुष्पोंका समुदाय अर्थात् सुगन्धित, विकसित और कीटाणु रहित पुष्पोसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा इस व्रतवाले को करनी चाहिए। पहले व्रत विधिमें लिखे गये जापको भी पुष्पोंसे ही करना चाहिए। यदि पुष्प चढ़ानेसे एतराज हो तो पीले चावलोंसे पूजन तथा लवंगोंसे जाप करना चाहिए। पाँचों दिन पूजन और जाप करना आवश्यक है। इस व्रतका बड़ा भारी माहात्म्य बताया गया है, विधिपूर्वक इसके पालनेसे केवलज्ञानकी प्राप्ति परम्परासे होती है, कर्मरोग दूर होता है तथा नाना प्रकारके लौकिक ऐश्वर्य, धन-धान्यादि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इसकी गणना काम्य व्रतोंमें इसीलिए की गयी है, कि इस व्रतको विधिपूर्वक पालकर कोई भी व्यक्ति अपनी लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण कर सकता है।

उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि

उत्तममुक्तावलीव्रतं वच्मि, तृतीयभवमोक्षदम्। भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां प्रोषधं कृत्वा अष्टम्यामुपवासं कुर्यात्। पश्चात्—

आश्विने मेचके पक्षे षष्ठ्यां सूर्यप्रभो भवेत्।
चन्द्रप्रभस्त्रयोदश्यामेष चन्द्रप्रभस्तथा ॥१॥
आश्विनशुक्लैकादश्यां कुर्याद् दुष्कर्महानये।
कुमारसंभवो नामोपवासः शुभदो भवेत् ॥२॥
कार्तिके श्यामले पक्षे द्वादश्यां प्रोषधो भवेत्।
नाम्नः नन्दीश्वरस्तस्य माहात्म्यं केन वर्णितम् ॥
कार्त्तिके धवले पक्षे तृतीयादिवसे मतः।
सर्वार्थसिद्धिकं नाम चतुर्वर्गप्रसाधनम् ॥
कार्त्तिके धवले पक्षे लक्ष्यश्चैकादशीदिने।
प्रातिहार्यविधिर्नाम कथितं धर्मवृद्धये ॥

एकादश्यां तु मार्गस्य मेचकेऽतिशुभप्रदे।
सर्वसुखप्रदं नाम प्रभावः केन वर्ण्यते॥
आग्रहायणके शुक्ले तृतीयः प्रोषधः शुभः।
अनन्तविधिरित्युक्तमनन्तसुखसाधनम्॥
एवं चतुर्षु मासेषु, उपवासाः प्रकीर्त्तिताः।
प्रत्यब्दं ते विधातव्या नवाब्दमिति साधुभिः॥

उपवासदिने जिनेन्द्रस्नपनं पूजनं कार्यम्, नवमवर्षे व्रतोद्योतनं करणीयम्। इति उत्तममुक्तावलीव्रतं भूरिसाधुभिः निगदितम्।

अर्थ—उत्तम मुक्तावली व्रतकी विधिको कहते हैं, यह व्रत तृतीय भवमें मोक्ष देनेवाला है। इस व्रतका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको होता है। सप्तमीको एकाशन कर भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको उपवास करना चाहिए पश्चात् आश्विन वदी षष्ठीको सूर्यप्रभ नामका उपवास तथा आश्विन वदी त्रयोदशीको चन्द्रप्रभ नामका उपवास करना चाहिए। आश्विन शुक्लपक्षमें दुष्कर्मोंके क्षय करनेके लिए एकादशी तिथिको कुमारसंभव नामका उपवास करना चाहिए। यह उपवास सब प्रकारसे शुभ करनेवाला होता है।

कार्त्तिक कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस उपवासकी नन्दीश्वर संज्ञा है। इसकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है। कार्त्तिक शुक्लपक्षमें तृतीयाको चतुर्वर्गको देनेवाला सर्वार्थसिद्धि नामक उपवास किया जाता है। इस उपवासके करनेसे सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। कार्त्तिक शुक्लमें एकादशी तिथिको प्रातिहार्य नामक उपवास किया जाता है, यह धर्मवृद्धिको करनेवाला होता है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिको सर्वसुखप्रद नामक उपवास किया जाता है। इसके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है। अगहन सुदी तृतीयाको अनन्तविधि नामका प्रोषधोपवास किया जाता है, यह अनन्तसुखका देने वाला होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक और मार्गशीर्ष इन चार महीनोंमें उपवास करने

चाहिए। इस विधिसे नौ वर्षतक व्रत पालनकर उद्यापन करना चाहिए।

उपवासके दिन भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक, पूजन करने चाहिए। इस प्रकार नौ वर्षतक व्रतका पालन कर नौवें वर्ष उद्यापन कर देना चाहिए, ऐसा अनेक श्रेष्ठ आचार्योंने उत्तम मुक्तावली व्रतके सम्बन्धमें कहा है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि बतलायी है। उत्तम मुक्तावली व्रत भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और अगहन इन चार महीनोंमें पूरा किया जाता है। भाद्रपद शुक्लपक्षमें सप्तमीका एकाशन और अष्टमीका उपवास, क्वारमें कृष्णपक्षमें षष्ठी और त्रयोदशीको और शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास; कार्तिकमें कृष्णपक्षमें द्वादशीको, और शुक्लपक्षमें तृतीया और एकादशीको उपवास एवं अगहनमें कृष्णपक्षमें एकादशीको और शुक्लपक्षमें तृतीयाको उपवास किया जाता है। इस व्रतमें उपवासके दिनोंमें पञ्चामृत अभिषेक करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें चतुर्विंशति जिनपूजा की जाती है। रात जागरण पूर्वक बितायी जाती है। शील व्रत भाद्रपदसे आरम्भ कर अगहनतक पाला जाता है।

इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन उपवासके दिन तीन बार, शेष दिन एक बार एक-एक माला अर्थात् १०८ बार जाप करना चाहिए। चारों महीनोंमें ह्रीका पालन किया जाता है तथा भोजन हरी, नमक या कोई रस छोड़कर किया जाता है। उपवासके दिन गृहारम्भका बिल्कुल त्याग करना आवश्यक होता है। पारणाके दिन भगवान्के अभिषेकके अनन्तर दीन-दुःखी व्यक्तियोंको आहार करानेके उपरान्त भोजन करना होता है। भोजनमें प्रायः माड-भात लेनेका विधान है।

प्रकारान्तरसे सुगन्धदशमी व्रतकी विधि

सुगन्धदशमीमाह—

भद्रे भाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन्पञ्चमीदिने।
उपोष्यते यथाशक्तिः क्रियते कुसुमाञ्जलिः॥

तथा षष्ठ्यां च सप्तम्यां वाष्टम्यां नवमीदिने ।
जिनानामग्रतो भूयो दशम्यां जिनवेश्मनि ॥
उपवासं समादाय विधिरेष विधीयते ।
चतुर्विंशतितीर्थानां स्नपनं पूजनं ततः ॥
सुमधुररसैः पूजां धूपं दशविधं तथा ।
पूर्णेन्दुदशमे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ॥

अर्थ—सुगन्धदशमी व्रतकी विधि कहते हैं—श्रेष्ठ भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे यथाशक्ति पुष्पाञ्जलिव्रत करते हुए षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी और नवमीका उपवास या एकान्तर उपवास करने चाहिए। दशमीको जिन-मन्दिरमें जाकर उपवास ग्रहण किया जाता है तथा चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा, अभिषेक क्रिया की जाती है। दशाङ्गी धूप भगवान्‌के सामने खेयी जाती है। दस वर्ष तक इस व्रतका पालन किया जाता है, इसके पश्चात् उद्यापन क्रिया सम्पन्न की जाती है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष

अक्षयनिध्याख्यं व्रतं श्रावणशुक्लपक्षे दशमीदिने दशाब्दमध्यघटोपरिस्थितचतुर्विंशतिकायाः स्नपनं पूजनं च कार्यम्, दशवर्षपर्यन्तं व्रतं भवतीति। पुत्रपौत्रादिवृद्धिकरश्चेति।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रतमें विशेष विधि यह है कि श्रावणशुक्ला दशमीके दिन दस कमलोंके ऊपर घड़ेको स्थापितकर उसके ऊपर चौबीस भगवान्‌की प्रतिमाओंको या किसी भी भगवान्‌की प्रतिमाको स्थापित कर अभिषेक और पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार भादों वदी दशमी और भादों सुदी दशमीको भी व्रत करना चाहिए। अक्षयनिधि व्रतके दश वर्ष तक करनेसे पुत्र, पौत्र, धन, धान्यकी वृद्धि होती है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ हैं—प्रथम मान्यता श्रावणवदी दशमी; भादोंवदी दशमी और भादों सुदी दशमी इन तीन तिथियोंमें व्रत करनेकी है। इस मान्यताका आचार्यने पहले

वर्णन किया है। द्वितीय मान्यताके अनुसार यह व्रत श्रावणवदी दशमी-से आरम्भ किया जाता है तथा भादों वदी दशमीको समाप्त होता है। इसमें दोनों दशमी तिथियोंमें उपवास तथा शेष तिथियोंमें एकाशन किये जाते हैं। व्रतारम्भके दिन दस कमलोंके ऊपर केशर, चन्दन आदिसे संस्कृत मिट्टीके घड़ेको स्थापित कर, घड़ेके ऊपर थाल रखा जाता है। थालमें अष्टकमलदल बनाकर भगवान्की प्रतिमा सिंहासन पर स्थापित-की जाती है। इस विधिसे प्रतिदिन भगवान्का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। अर्थात् श्रावण सुदी दशमीके दिन प्रतिमा घटके ऊपर स्थापित की जाती है, वह भादों वदी दशमी तक स्थापित रहती है। प्रतिदिन अभिषेक और पूजन होते रहते हैं। इस व्रतमें प्रतिदिन दस अष्टक, दस अर्घ और दस फल चढ़ाये जाते हैं। प्रतिदिन तीनों समय सामायिक किया जाता है तथा त्रेसठ शलाकापुरुषोंके पुण्य चरित्रोंका अध्ययन, मनन और चिन्तन आदि कार्य सम्पन्न किये जाते है।

एकाशनके दिनोंमें भी प्रथम दिन माड़भात, द्वितीय दिन रसत्याग पूर्वक आहार, तृतीय दिन दूध त्याग सहित आहार, चतुर्थदिन दही त्याग सहित आहार, पञ्चम दिन नमक त्यागसहित आहार, षष्ठ दिन नियमित रूपसे एक ही अन्नका आहार, सप्तम दिन पुनः माड़भात, अष्टम दिन अलौना—बिना नमक और मीठेका भोजन, नवम दिन ऊनोदर, दशम दिन दही त्याग पूर्वक आहार, एकादशवें दिन माड़भात, द्वादशवें दिन एक अन्न आहार, त्रयोदशवें दिन परिगणित वस्तुओंका आहार, चौदहवें दिन ऊनोदर या माड़भात और पन्द्रहवें दिन उपवास किया जाता है। ये सभी दिन संयमके दिन कहलाते हैं। इनमें वाणीसंयम और इन्द्रिय-

---

१. व्रत अषैनिधिको उपयास। श्रावणसुदि दशमी करितास॥
भादोंवद जब दशमी होय। तिनहूँके प्रोषध अवलोय॥
अवर सकल एकन्त जु करै। सो दस वर्षहि पूरो करै॥
उद्यापन करि छाँड़ै ताहि। तातरिपुगणौ करिहै जाहि॥
—क्रियाकोश किसनसिंह।

संयमका पालन करना चाहिए। भादोंवदी एकादशीको व्रत समाप्त होनेके पश्चात् एकाशन किया जाता है। पश्चात् पूर्ववत् सारी क्रियाएँ सम्पन्न होने लगती हैं। इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करनेसे सभी लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मेघमाला व्रतकी विशेष विधि

मेघमालां कथयाम्यहम्—

भद्रे भाद्रपदे मासे मेचके प्रतिपद्दिने।
आरम्भेत व्रतं मासं प्रोषधैकान्तरेण च॥
स्नातव्यं च सुनीरस्य धाराभिः ब्रह्मचारिभिः।
आव्रतं परिधातव्यं शुक्लमेवांशुकद्वयम्॥ ? ॥
जिनालये पुरःप्रस्थायाकाशे विष्टरं शुभम् ?
संस्थाप्य मेघ मालेयं शुक्लं धार्यं वितानकम्॥
विष्टरे श्रीजिनाधीशं यथाशक्ति महोत्सवम्।
स्नापयेदमृतेनापि पञ्चधा परमेश्वरम्॥
संस्थाप्य कलशैश्चैनं वितानोपरि शान्तये।
गन्धाम्बुचिन्तयेदेवं वारिमेघाकृतं यथा॥ ? ॥

पूर्वं संस्नाप्य पूजयेत्, तिथिहानिवृद्धौ षोडशकारणवत्मेघमाला ज्ञेया। मासिकव्रतत्वात्तत्पारणा पात्रदानादनन्तरं पञ्चवर्ष यावत्करणीयम्। तत उद्यापनं कुर्यात्।

अर्थ—मेघमाला व्रतकी विधिका वर्णन किया जाता है। कल्याणकारी भाद्रपद मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे एक महीने तक व्रत करना चाहिए। एकान्तर उपवास व्रतके दिनोंमें करना चाहिए। व्रत धारण करनेवाले ब्रह्मचारीको स्वच्छ प्रासुक जलसे स्नान करके व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए। व्रत समाप्त होनेतक दो शुक्ल वस्त्र धारण करने चाहिए। अर्थात् एक स्वच्छ धोती तथा दूसरा दुपट्टा धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए। यदि कोई नारी इस व्रतको सम्पन्न करे तो उसे एक साड़ी तथा एक अन्य वस्त्र धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए।

जिनालयके प्रांगणमें एक स्वच्छ दूधके समान सफेद चँदोवा लगा कर उसके नीचे सिंहासन बिछाकर भगवान्‌को स्थापित करना चाहिए। भगवान्‌को स्थापित करनेकी विधि यह है कि एक घड़ेको चन्दन, कपूर, केशर आदिसे संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर भगवान्‌को विराजमान करना चाहिए। प्रतिदिन अभिषेक, पूजन आदि कार्योंको उत्साह और उत्सव सहित करना चाहिए। पञ्चामृतसे प्रतिदिन भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। शान्ति प्राप्त करनेके लिए अभिषेक के कलशोंको स्वच्छ चँदोवेके ऊपर स्थापित कर मेघोंके वर्षणके समान अभिषेक किया जाता है। जल, चन्दन आदि पदार्थोंसे भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। गन्धोदककी चिन्ता इस प्रकार करनी चाहिए, मानो मेघकी जलधारा ही गिर रही हो। इस प्रकार अभिषेकके अनन्तर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए।

यदि तिथि-वृद्धि या तिथि-हानि हो तो सोलहकारण व्रतके समान एक दिन पहलेसे तथा एक दिन अधिक मेघमाला व्रत नहीं किया जाता है। मासिक व्रत होनेके कारण इस व्रतको पारणा पात्रदानके अनन्तर की जाती है। आश्विन वदी प्रतिपदाको व्रत करनेके अनन्तर इस व्रतकी समाप्ति होती है। पाँच वर्षतक व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। मेघमाला व्रतमें तिथिवृद्धि और तिथि हानिमें सोलहकारण व्रतके समान व्यवस्था है।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

अथ रत्नत्रयव्रतमुच्यते–भाद्रपदमासे सिते पक्षे द्वादशीदिने स्नात्वा गत्वा जिनागारे पूजयित्वा जिनान्। भोजनानन्तरं जिन-वेश्मनि गन्तव्यम्। त्रयोदश्यां सम्यग्दर्शनपूजा चतुर्दश्यां सम्यग्ज्ञानपूजा पौर्णमास्यां सम्यक्चारित्रपूजा आश्विनप्रतिपदि महार्घ्यमेकभुक्तं पूर्णाभिषेकश्च पञ्चामृतैः करणीयः, चर-स्थिरबिम्बानाम्॥

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको कहते हैं—भाद्रपद शुक्लमें द्वादशी तिथिको स्नान कर जिनालयमें जाकर जिन-भगवान्‌की पूजा की जाती है। भोजनके अनन्तर जिन-मन्दिरमें जाना चाहिए। वहाँ शास्त्रस्वाध्याय, स्तोत्रपाठ आदि धर्मध्यानमें समयको व्यतीत करना चाहिए। त्रयोदशी तिथिको सम्यग्दर्शनकी पूजा, चतुर्दशीको सम्यग्ज्ञानकी पूजा, पूर्णिमाको सम्यक्‌चारित्रकी पूजा, और आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको महार्घ्य, एक बार भोजन तथा चल और अचल जिनबिम्बोंका पञ्चामृत पूर्ण अभिषेक किया जाता है।

तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय व्रतकी व्यवस्था

तिथिक्षये चादिदिनं वाधिकेऽप्यधिकं फलमिति। द्वादश्याधिके पूर्वतिथिनिर्णयग्रहणात् धारणाद्वा; त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, इति तिथित्रयस्य मध्येऽन्यतरस्य वृद्धिगते सति प्रोषधाधिक्यं कार्यम्, पारणाधिक्ये नियमो नास्तीति। तिथिह्रासे द्वादशीतः व्रतं कार्यम्॥

अर्थ—तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना पड़ता है। एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। यदि द्वादशी तिथि-की वृद्धि हो तो पूर्वतिथि निर्णयके अनुसार व्रत धारण करना चाहिए। यदि त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमासे कोई तिथि बढ़े तो एक अधिक प्रोषध करना चाहिए। यदि पारणाका दिन अर्थात् प्रतिपदाकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक उपवास या एकाशन करनेकी आवश्यकता नहीं है। तिथिक्षय होनेपर द्वादशीसे व्रत करना चाहिए।

काम्यव्रतोंका फल

एवं पूर्वोक्तमनन्तचतुर्दशीव्रतमपि काम्यमस्ति। काम्य-व्रताचरणेन दुःखदारिद्र्यादिकं विलीयते, धनधान्यादिकं वर्द्धते।

चन्दनषष्ठीलब्धिविधानव्रतयोरपि काम्यत्वात् पुत्रपौत्रधनधान्यै-श्वर्यविभूतीनां वृद्धिः जायते । विधिपूर्वककाम्यव्रताचरणेन इष्टसिद्धिर्भवति रोगशोकादयः पलायन्ते, अमराः किंकराः भवन्ति, किं बहुना ॥ काम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त अनन्तचतुर्दशी व्रत भी काम्य व्रत है। काम्यव्रतोंके पालन करनेसे दुःख, दरिद्रता, शोक, व्याधि आदि दूर हो जाती हैं और धन, धान्य, ऐश्वर्य आदिकी वृद्धि होती है। चन्दनषष्ठी और लब्धिविधान व्रतोंको भी काम्यव्रत होनेसे इनका पालन करने पर पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्य, विभूति आदिकी वृद्धि होती है। विधि-पूर्वक काम्यव्रतोंके आचरणसे इष्ट सिद्धि होती है। रोग, शोक, व्याधि, आपत्ति आदि दूर हो जाती है। अधिक क्या, काम्यव्रतोंके आचरणसे देव दास बन जाते हैं, सभी प्रकारकी कामनाएँ सफल हो जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि काम्यव्रत शब्दका अर्थ ही है कि जो व्रत किसी कामनासे किया जाता है तथा किसी प्रकारकी अभिलाषाको पूर्ण करता है, वह काम्य है। इस प्रकार काम्यव्रतोंका वर्णन पूर्ण हुआ।

अकाम्यव्रतोंका वर्णन

अथाकाम्यं लक्षणपंक्तिसंज्ञकं मेरुपंक्तिसंज्ञकं नन्दीश्वर-पंक्तिसंज्ञकं पल्यव्रतविधानमित्यादिकं ज्ञेयम्। आर्षग्रन्थेषु कथा-कोषादिषु स्वरूपं ज्ञातव्यम्। अत्र तु विस्तारभयान्न प्रतन्यते, इति अकाम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—लक्षणपंक्ति, विमानपंक्ति, मेरुपंक्ति, नन्दीश्वरपंक्ति, पल्य-व्रतविधान आदि अकाम्यव्रत हैं। आर्ष ग्रन्थ कथाकोष आदिमें इनका स्वरूप बताया गया है, वहींसे अवगत करना चाहिए। यहाँ विस्तार-भयसे नहीं लिखा गया है। इस प्रकार अकाम्य व्रतोंका निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—स्वर्गके विमानोंमे ६३ पटल हैं। एक-एक पटलकी अपेक्षा चार-चार उपवास और एक-एक बेला करना चाहिए। इस

प्रकार ६३ पटलोंकी अपेक्षा कुल २५२ उपवास और ६३ वेला तथा अन्तमें एक तेला करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है। इस व्रतको समाप्त करनेमें ६९७ दिन लगते हैं। यह लगातार किया जाता है। यों तो इसका प्रारम्भ किसी भी महीनेमें किया जा सकता है, पर श्रावणसे इसे प्रारम्भ करना अच्छा होता है। यदि श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको आरम्भ किया तो प्रथम उपवास, अनन्तर पारणा, द्वितीय उपवास अनन्तर पारणा, तृतीय उपवास अनन्तर पारणा, चतुर्थ उपवास अनन्तर पारणा, इसके पश्चात् एक वेला उपवास किया जायगा। इस प्रकार चार उपवास चार पारणाएँ और एक वेला प्रथम पटल सम्बन्धी किये जायँगे। इसी तरह ६३ पटलोंके उपवास और पारणाएँ होंगी, अन्तमें एक तेला कर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है। अतः कुल उपवास ६३ × ४ = २५२ दिन, ६३ वेला = ६३ × २ = १२६ दिन, एक तेला = ३ दिन। २६२ + १२६ + ३ = ३८१ उपवासके दिन। पारणाएँ २५२ + ६३ बेलाके अनन्तर + १ तेलाके अनन्तर = ३१६ पारणाके दिन ३८१ + ३१६ = ६९७ दिन इस व्रतको पूर्ण करनेमें लगते हैं। इस व्रतके लिए किसी तिथिका विधान नहीं है।

पल्यविधान व्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। प्रथम उपवास आश्विन वदी षष्ठीको किया जाता है, द्वितीय आश्विन वदी त्रयोदशीको, तृतीय बेला आश्विन सुदी एकादशी और द्वादशीको की जाती है। इस प्रकार आगे-आगे भी उपवास और वेला की जाती हैं। क्रम निम्न प्रकार है—

आश्विन वदी	६ तिथि	उपवास		सुदी	३	उपवास
,, ,,	१३	उपवास		सुदी	१२	उपवास
,, सुदी	११,१२	बेला—	मार्गशीर्ष	वदी	११	उपवास
	दो दिनका उपवास		,,	सुदी	३	उपवास
,, सुदी	१४	उपवास		सुदी	१२	उपवास
कार्त्तिक वदी	१२	उपवास	पौष	वदी	२	उपवास

पौष वदी अमावस्या उपवास
,, सुदी ५ उपवास
,, सुदी ७ उपवास
,, पूर्णिमा उपवास
माघ वदी ४ उपवास
,, ७ उपवास
,, १४ उपवास
,, सुदी ७-८ वेला—दो दिनका उपवास
,, १० उपवास
फाल्गुन वदी ५-६ वेला—दो दिनका उपवास
फाल्गुन सुदी १ उपवास
,, ११ उपवास
चैत्र वदी १–२ वेला–दो दिनका उपवास
,, ४ उपवास
,, ६ उपवास
,, ८ उपवास
,, ११ उपवास
,, सुदी ७ उपवास
,, १० उपवास
वैशाख वदी ४ उपवास
,, ,, १० उपवास
,, सुदी २–३ वेला–दो दिनका उपवास
,, ,, ९ उपवास
,, ,, १३ उपवास

ज्येष्ठ वदी १० उपवास
,, ,, १३-१४-३० तेला–तीन दिनका उपवास
ज्येष्ठ सुदी ८ उपवास
,, १० उपवास
,, १५ उपवास
आषाढ़ वदी १० उपवास
,, ,, १३-१४-३० तेला–तीन दिनका उपवास
,, सुदी ८ उपवास
,, ,, १० उपवास
,, ,, १५ उपवास
श्रावण वदी ४ उपवास
,, ,, ६ उपवास
,, ,, ८ उपवास
,, ,, १४ उपवास
,, सुदी ३ उपवास
,, ,, १५ उपवास
भादो वदी २ उपवास
भादो वदी ६–७ वेला–दो दिनका उपवास
,, १२ उपवास
भादो सुदी ५-६-७ तेला–तीन दिनका उपवास
,, ,, ९ उपवास
,, ,, ११-१२-१३ तेला–तीन दिनका उपवास
,, ,, १५ उपवास

इस प्रकार कुल ४८ उपवास, ४ तेला और ६ वेला किये जाते हैं। अतएव ४८ + १२ + १२ = ७२ उपवास होते हैं। व्रतके दिन गृहारम्भका त्याग कर धर्मध्यान पूर्वक समयको बिताया जाता है। शेष अकाम्य व्रतोंका निर्णय पहले किया जा चुका है।

उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश

अथोत्तमार्थानि रत्नत्रयषोडशकारणाष्टाह्निकदशलाक्षणिकपञ्चकल्याणकमहापञ्चकल्याणकसिंहनिष्क्रीडितश्रुतज्ञानसूत्रजिनेन्द्रमाहात्म्यत्रिलोकसारघातिक्षयध्यानपंक्तिचारित्रशुद्धिगुणपंक्तिप्रमादपरिहारसंयमपंक्तिप्रतिष्ठाकारणमहोत्सवादिकानि व्रतानि उत्तमार्थानि ज्ञेयानि। एतेषां विशेषस्तु आर्षग्रन्थेभ्यो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, दशलक्षण, पञ्चकल्याणक, महापञ्चकल्याणक, सिंहनिष्क्रीडित, श्रुतज्ञानसूत्र, जिनेन्द्रमाहात्म्य, त्रिलोकसार, घातिक्षय, ध्यानपंक्ति, चारित्रशुद्धि, गुणपंक्ति, प्रमादपरिहार, संयमपंक्ति, प्रतिष्ठाकारणमहोत्सव और संन्यासमहोत्सव आदि व्रत उत्तमार्थसंज्ञक होते हैं। इनका विशेष वर्णन आर्षग्रन्थोंसे अवगत करना चाहिए।

विवेचन—श्रुतज्ञान व्रतमें सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, चार चतुर्थियोंके चार उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास, सात सप्तमियोंके सात उपवास, आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, नव नौमियोंके नौ उपवास, बीस दशमियोंके बीस उपवास, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास, बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह उपवास एवं पन्द्रह अमावस्याओंके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

पञ्चकल्याणक व्रतमें जब-जब चौबीस तीर्थंकरोंके पञ्चकल्याणक हों, उन-उन तिथियोंमें उपवास करने चाहिए।

पञ्चकल्याणक व्रत-तिथि-बोधक चक्र

तीर्थंकर	गर्भकल्याणक	जन्मकल्याणक	तपकल्याणक	ज्ञानकल्याणक	निर्वाणकल्याणक
१ ऋषभनाथ	आषाढ वदी २	चैत्र वदी ९	चैत्र वदी ९	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी १४
२ अजितनाथ	ज्येष्ठ वदी ३०	पौष सुदी १०	पौष सुदी ९	पौष सुदी ११	चैत्र सुदी ५
३ संभवनाथ	फाल्गुन वदी ८	मार्गशीर्ष सुदी १५	मार्गशीर्ष सुदी १५	कार्त्तिक वदी ४	चैत्र सुदी ६
४ अभिनन्दननाथ	वैशाख सुदी ६	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६
५ सुमतिनाथ	श्रावण सुदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख सुदी ९	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
६ पद्मप्रभ	माघ वदी ६	कार्त्तिक वदी १३	मार्गशीर्ष वदी १०	चैत्र सुदी १५	फाल्गुन वदी ४
७ सुपार्श्वनाथ	भादों सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७
८ चन्द्रप्रभ	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी ११	फाल्गुन वदी ७	फाल्गुन वदी ७
९ पुष्पदन्त	फाल्गुन वदी ९	मार्गशीर्ष सुदी १	मार्गशीर्ष सुदी १	कार्त्तिक सुदी २	भादों सुदी ८
१० शीतलनाथ	चैत्र वदी ८	पौष वदी १२	पौष वदी १२	पौष वदी १४	आश्विन सुदी ८

११ श्रेयान्सनाथ	ज्येष्ठ वदी ६	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी ३०	श्रावण सुदी १५
१२ वासुपूज्य	आषाढ सुदी ६	फाल्गुन वदी १४	फाल्गुन वदी १४	माघ सुदी २	भादों सुदी १४
१३ विमलनाथ	ज्येष्ठ वदी १०	पौष सुदी ४	पौष सुदी ४	माघ सुदी ६	आषाढ़ वदी ८
१४ अनन्तनाथ	कार्त्तिक वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी ३०	चैत्र वदी ३०
१५ धर्मनाथ	वैशाख सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी ४
१६ शान्तिनाथ	भादो वदी ७	ज्येष्ठ वदी १४	ज्येष्ठ वदी ४	पौष सुदी ११	ज्येष्ठ वदी १४
१७ कुन्थुनाथ	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १
१८ अरहनाथ	फाल्गुन सुदी ३	मार्गशीर्ष सुदी १४	मार्गशीर्ष सुदी १०	कार्त्तिक सुदी १२	चैत्र वदी ३०
१९ मल्लिनाथ	चैत्र सुदी १	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	फाल्गुन सुदी ५
२० मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण वदी २	चैत्र वदी १०	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	फाल्गुन वदी १२
२१ नमिनाथ	आश्विन वदी २	आषाढ वदी १०	आषाढ वदी १०	मार्गशीर्ष सुदी ११	वैशाख वदी १४
२२ नेमिनाथ	कार्त्तिक सुदी ६	श्रावण वदी ६	श्रावण सुदी ६	आश्विन सुदी १	आषाढ सुदी ७
२३ पार्श्वनाथ	वैशाख वदी ३	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी ७
२४ महावीर	आषाढ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	कार्त्तिक वदी १३	वैशाख सुदी १०	कार्त्तिक वदी ३०

पञ्चपरमेष्ठी व्रत

अरिहन्तके ६४ गुणोके लिए चार चतुर्थियों के चार, आठ अष्टमियों-के आठ उपवास, बीस दशमियों के बीस उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास किये जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठीके आठ मूल गुण-के आठ अष्टमियोके आठ उपवास किये जाते हैं। आचार्य के ३६ मूल गुणोके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, दस दशमियोंके दस उपवास और तीन तृतीयाओंके तीन उपवास; इस प्रकार कुल ३६ उपवास किये जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठीके २५ मूल गुण होते हैं, उनके लिए ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। साधु परमेष्ठीके २८ मूल गुण हैं। इनके लिए पन्द्रह पञ्चमियोंके पन्द्रह उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास एवं सात प्रतिपदाओंके सात उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ उपवास करनेका विधान है। जिस परमेष्ठीके मूल गुणोंके उपवास किये जा रहे हों, व्रतके दिन उस परमेष्ठीके गुणोंका चिंतन करना तथा **'ॐ ह्री अर्हद्भ्यो नमः, ॐ ह्री सिद्धेभ्यो नमः, ॐ ह्री आचार्य-भ्यो नयः, ॐ ह्री उपाध्यायेभ्यो नमः, ॐ ह्री सर्वसाधुभ्यो नमः'** का क्रमशः जाप करना चाहिए।

सर्वार्थसिद्धि व्रत

कार्त्तिक सुदी अष्टमीसे लगातार आठ दिन उपवास किये जाते हैं तथा कार्त्तिक सुदी सप्तमीका एकाशन कर मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदाको को पुनः एकाशन करनेका विधान है। इस व्रतमें लगातार आठ दिनतक उपवास करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें **'श्रीसिद्धाय नमः'** मन्त्रका जाप किया जाता है।

धर्मचक्र व्रत

धर्मचक्र व्रत २२ दिनोंमें पूर्ण होता है। इसमें १६ उपवास और ६ पारणाएँ सम्पन्न होती हैं। प्रथम उपवास, पारणा; पश्चात् दो उप-

वास पारणा; अनन्तर तीन उपवास पारणा, तत्पश्चात् चार उपवास पारणा, पश्चात् पाँच उपवास पारणा एवं अन्तमें एक उपवास और पारणा की जाती है। धर्मचक्र व्रतके दिनोंमें 'ॐ ह्री अरिहन्तधर्मचक्राय नमः' मन्त्रका जाप गुग्गुल और धूप देकर किया जाता है।

नवनिधि व्रत

नवनिधि व्रतमें २१ उपवास किये जाते हैं। चौदह चतुर्दशियोंके चौदह, नौ नवमियोंके नौ, तीन तृतीयाओंके तीन एवं पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर एकाशन करनेका विधान है। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अक्षयनिधिप्राप्तेभ्यो जिनेन्द्रेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है।

शील व्रत

शील व्रत एक वर्षमें पूर्ण किया जाता है। वर्षके ३६० दिनोंमें एकान्तरसे उपवास करने चाहिए। सम्पूर्ण शीलका पालन करना इस व्रतके लिए अनिवार्य है। बात यह है कि देवी, मनुष्यणी, तिर्यञ्चणी और अचेतन इन चार प्रकारकी स्त्रियोंको पाँच इन्द्रिय तथा मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदनासे गुणा करे तो १८० दिन उपवास के आते हैं। अर्थात् ४ × ५ × ३ × ३=१८० दिन उपवास और १८० दिन पारणा की जाती है अतः वर्ष भर एकान्तर रूपसे उपवास और एकाशन करने चाहिए। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं समस्तशीलव्रतमण्डिताय श्रीजिनाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

त्रेपन क्रिया व्रत

इस व्रतमें श्रावकके आठ मूल गुणोंकी विशुद्धिके निमित्त आठ अष्टमियोंके आठ उपवास; पाँच अणुव्रतोंकी विशुद्धिके लिए पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास; तीन गुणव्रतोंकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीयाओंके तीन उपवास ; चार शिक्षाव्रतोंकी विशुद्धिके लिए चार चतुर्थियोंके चार उपवास; बारह तपोंकी विशुद्धिके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास; साम्य

भावकी प्राप्तिके निमित्त एक प्रतिपदाका उपवास ; ग्यारह प्रतिमाओंकी विशुद्धिके लिए ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास ; चार प्रकारके दानोंके देनेके निमित्त चार चतुर्थियोंके चार उपवास ; जल छाननेकी क्रियाकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास तथा निशिभोजन त्यागकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास एवं रत्नत्रयकी विशुद्धि के लिए तीन तृतीया तिथियोंके तीन उपवास ; इस प्रकार कुल ५३ उपवास किये जाते हैं। व्रतके दिनोंमें णमोकारमन्त्रका जाप प्रतिदिन १००८ बार वा कमसे कम तीन मालाओं प्रमाण करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें भी शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

कर्मचूर व्रत

कर्मचूर या कर्मक्षय व्रत २९६ दिनोंमें पूरा किया जाता है। इस व्रतमें १४८ कर्मप्रकृतियोंको नष्ट करनेके निमित्त १४८ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। यह व्रत लगातार २९६ दिनतक एकान्तर रूपसे उपवास और पारणाका क्रम लगाकर किया जाता है। व्रतके दिनमें '**ॐ सर्वकर्मरहिताय सिद्धाय नमः**' अथवा णमोकार मन्त्रका जाप करनेका नियम है। व्रतके दिनोंमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं सम्यक् तपका आचरण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेका विधान है।

लघु सुखसम्पत्ति व्रत

इस व्रतमें १२० उपवास किये जाते हैं। प्रतिपदाका एक, दो द्वितीयाओंके दो, तीन तृतीयाओंके तीन, चार चतुर्थियोंके चार, पाँच पञ्चमियोंके पाँच, छः षष्ठियोंके छः, सात सप्तमियोंके सात, आठ अष्टमियो के आठ, नौ नवमियोंके नौ, दश दशमियोंके दश, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह, बारह द्वादशियोंके बारह, तेरह त्रयोदशियोके तेरह, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह एवं पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह इस प्रकार एक सौ बीस उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। १+२+३+४+५+६+७+८+९+ १०+११+१२+१३+१४+१५ = १२० उपवास । उपवासके दिनोंमें

श्रावकके उत्तरगुणोंका पालना और शीलव्रत धारण करना आवश्यक है।

बारहसौ चौंतीस व्रत या चारित्रशुद्धि व्रत

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे आरम्भ होता है, इसमें १२३४ उपवास तथा एकाशन करने पड़ते हैं। दस वर्ष और साढ़े तीन माहमें पूर्ण किया जाता है। यदि एकान्तर व्रत किया जाय तो पाँच वर्ष पौने दो माहमें पूर्ण होता है। उपवासके अनन्तर पारणाके दिन रस त्याग कर या नीरस भोजन करे, आरम्भ परिग्रहका त्याग कर भक्ति पूजामें निमग्न रहे। 'ॐ ह्रीं असि आ उ सा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन १०८ बार दिनमें तीन बार करे और व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करनेका विधान है।

इष्टसिद्धिकारक निःशल्य अष्टमी व्रत

भादों सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहर अभिषेक और पूजन करे। दिनमे चार बार पूजन और अभिषेक किये जाते हैं। त्रिकाल सामायिक और स्वाध्याय करने चाहिए। रातको जागरणपूर्वक स्तोत्र भजन पढ़ते हुए बिताना चाहिए। पश्चात् नवमीको अभिषेक पूजन करके अतिथिको भोजन कराके स्वयं भोजन करे। चारों प्रकारके संघको चतुर्विध दान देना चाहिए। यह व्रत १६ वर्षतक किया जाता है, तत्पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

कोकिलापञ्चमी व्रत

आषाढ वदी पञ्चमीसे पाँच मासतक प्रत्येक कृष्णपक्षकी पञ्चमीको पाँच वर्षतक यह व्रत किया जाता है। इस व्रतमें उपवासके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर पूजन, अभिषेक, शास्त्र स्वाध्याय एवं धर्म-

ध्यान करने चाहिए। 'ओं ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप इस व्रतमें करना चाहिए।

जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत

अरिहन्त भगवान्के गुणोंका चिन्तन करते हुए दस जन्म, दस केवलके अतिशयके कारण बीस दशमियोंको बीस उपवास; देवकृत चौदह अतिशयके कारण चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, आठ प्रातिहार्यके कारण आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, सोलह कारण भावनाकी प्राप्तिके लिए सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, पंचकल्याणकी प्राप्तिके निमित्त पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास; इस प्रकार कुल २० दशमी + १४ चतुर्दशी + ८ अष्टमी + १६ प्रतिपदा + ५ पञ्चमी = ६३ प्रोषधोपवास किये जाते हैं।

गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश

व्रतादानव्रतत्यागः कार्यो गुरुसमक्षतः।
नो चेत्तन्निष्फलं ज्ञेयं कुतः शिक्षादिकं भवेत्॥
यो स्वयं व्रतमादत्ते स्वयं चापि विमुञ्चति।
तद्व्रतं निष्फलं ज्ञेयं साक्ष्याभावात् कुतः फलम्॥
गुरुप्रदिष्टं नियमं सर्वकार्याणि साधयेत्।
यथा च मृत्तिकाद्रोणः विद्यादानपरो भवेत्॥
गुर्वभावतया त्यक्तं व्रतं किं कार्यकृद् भवेत्।
केवलं मृतिकावेश्म किं कुर्यात् कर्तृवर्जितम्॥
अतो व्रतोपदेशस्तु ग्राह्यो गुर्वाननात् खलु।
त्याज्यश्चापि विशेषेण तस्य साक्षितया पुनः॥
क्रममुल्लंघ्य यो नारी नरो वा गच्छति स्वयम्।
स एव नरकं याति जिनाज्ञागुरुलोपतः॥
इति आचार्यसिंहनन्दिविरचितः व्रततिथिनिर्णयः समाप्तः॥

अर्थ—गुरुके समक्षसे ही व्रतोंका ग्रहण और व्रतोंका त्याग करना चाहिए। गुरुकी साक्षीके बिना ग्रहण किये और त्यागे व्रत निष्फल

होते हैं, अतः उन व्रतोंसे धन-धान्य, शिक्षा आदि फलोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो स्वयं व्रतोंको ग्रहण करता है और स्वयं ही व्रतोंको छोड़ देता है, उसके व्रत निष्फल हो जाते हैं। गुरुकी साक्षी न होनेसे व्रतोंका क्या फल होगा ? अर्थात् कुछ भी नहीं। गुरुसे यथाविधि ग्रहण किये गये व्रत नियम ही सभी कार्योंको सिद्ध कर सकते हैं। जैसे भिल्ल-राज द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसे गुरु मानकर विद्या-साधन करता था, उसे इस मृत्तिकामय गुरुकी कृपासे विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं, इस प्रकार गुरुकी कृपासे ही व्रत सफल होते हैं। बिना गुरुकी भावनाके ग्रहण किये गये व्रत कुछ भी कार्यकारी नहीं हो सकते हैं। जैसे मिट्टीका घर बिना कर्त्ताके निरर्थक है, उसी प्रकार गुरुके साक्ष्यके बिना व्यक्त व्रत भी निष्फल हैं। अतएव गुरुके मुखसे व्रतोंको ग्रहण करना चाहिए तथा उन्हींकी साक्षी पूर्वक व्रतोंको छोड़ना चाहिए। जो स्त्री या पुरुष क्रमका उल्लंघन कर स्वेच्छासे व्रत करते हैं, वे गुरुकी अवहेलना एवं जिनाज्ञाका लोप करनेके कारण नरकमें जाते हैं।

विवेचन—व्रत सर्वदा गुरुके सामने जाकर ग्रहण करने चाहिए। यदि गुरु न मिलें तो किसी तत्त्वज्ञ विद्वान्, ब्रह्मचारी, व्रती या अन्य धर्मात्मासे व्रत लेना चाहिए। तथा व्रतोंको गुरु या विद्वान्, ब्रह्मचारीके समक्ष छोड़ना भी चाहिए। यदि गुरु, विद्वान, ब्रह्मचारी आदिका सान्निध्य भी प्राप्त न हो सके तो जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाके सामने ग्रहण करने तथा छोड़ने चाहिए। बिना साक्ष्यके व्रतोंका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता है। शास्त्रोंमें एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक सेठके मकान बन रहा था, उसमें ईंट, चूना, सीमेण्ट ढोनेका कार्य कई मज़दूर कर रहे थे। एक मज़दूर चुपचाप बिना अपना नाम लिखाये काम करने लगा, दिन भर कठोर श्रम किया। सन्ध्या समय जब सबको मज़दूरी दी जाने लगी तो वह परिश्रमी मज़दूर भी मुनीमके सामने पहुँचा और कहने लगा—सरकार मैंने दिनभर सबसे अधिक श्रम किया है, अतः मुझे अधिक मज़दूरी मिलनी चाहिए। मुनीमने रजिस्टरसे मिलाकर सभी नामदर्ज

मज़दूरोंको मज़दूरी दे दी ; परन्तु जिसने कठोर श्रम किया और अपना नाम रजिस्टरमें दर्ज नहीं कराया था, उसे मज़दूरी नहीं दी। मुनीमने साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम्हारा नाम रजिस्टरमें नोट नहीं है, अतः तुम्हें मज़दूरी नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार जिन्होंने गुरुकी साक्ष्यसे व्रत ग्रहण नहीं किया है, उनके फलकी प्राप्ति नहीं होती है, अथवा अत्यल्प फल मिलता है। अतएव स्वेच्छासे कभी भी व्रत ग्रहण नहीं करने चाहिए।

इस प्रकार आचार्यसिंहनन्दिविरचित व्रततिथिनिर्णय समाप्त हुआ।

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

- भारतीय विचारधारा २)
- अध्यात्म-पदावली ४॥)
- कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न २)
- वैदिक साहित्य ६)
- जैनशासन [द्वि० सं०] ३)

उपन्यास, कहानियाँ

- मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)
- संघर्षके बाद ३)
- गहरे पानी पैठ २॥)
- आकाशके तारे : धरतीके फूल २)
- पहला कहानीकार २॥)
- खेल-खिलौने २)
- अतीतके कंपन ३)
- जिन खोजा तिन पाइयाँ २॥)
- नये बादल २॥)

उर्दू-शायरी

- शेरो-शायरी [द्वि० सं०] ८)
- शेरो-सुख़न [पाँचों भाग] २०)

संस्मरण, रेखाचित्र

- हमारे आराध्य ३)
- संस्मरण ३)
- रेखा-चित्र ४)
- जैन-जागरणके अग्रदूत ५)

कविता

- वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)
- मिलन-यामिनी ४)
- धूपके धान ३)
- मेरे बापू २॥)
- पंच-प्रदीप २)
- आधुनिक जैन-कवि ३॥।)

ऐतिहासिक

- खण्डहरोंका वैभव ६)
- खोजकी पगडण्डियाँ ४)
- चौलुक्य कुमारपाल ४)
- कालिदासका भारत [भाग १-२] ८)
- हिन्दी-जैन-साहित्य का सं० इतिहास २॥।=)
- हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन [दो भाग] ५)

ज्योतिष

- भारतीय ज्योतिष ६)
- केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)
- करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र] ॥)

नाटक

- रजतरश्मि २॥)
- रेडियो नाट्यशिल्प २॥)
- और खाई बढ़ती गई २॥)
- पचपनका फेर २॥)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	२॥)
ज़िन्दगी मुसकराई	४)
ध्वनि और संगीत	४)
हिन्दू विवाहमें कन्यादान-का स्थान	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	६)
शरत्‌के नारीपात्र	४॥)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	२॥)

सिद्धान्तशास्त्र

महाबन्ध [भाग १]	१२)
महाबन्ध [भाग २-३-४-५]	४४)
तत्त्वार्थवृत्ति	१६)
तत्त्वार्थराजवार्त्तिक [भाग १]	१२)
समयसार [अंग्रेज़ी]	८)
सर्वार्थसिद्धि	१२)

स्तोत्र, आचार

वसुनन्दिश्रावकाचार	५)
जिनसहस्रनाम [स्तोत्र]	४)

चरित

आदिपुराण [भाग १]	१०)
आदिपुराण [भाग २]	१०)
उत्तरपुराण	१०)
पुराणसारसंग्रह [भाग १-२]	४)
धर्मशर्माभ्युदय [धर्मनाथ-चरित]	३)
जातकट्ठकथा [पाली भाषा]	९)

काव्य, न्याय

न्यायविनिश्चयविवरण [भाग १]	१५)
न्यायविनिश्चयविवरण [भाग २]	१५)
मदनपराजय [काव्य]	८)

कोष, छन्दशास्त्र

नाममाला सभाष्य	३॥)
सभाष्यरत्नमंजूषा [छंदशास्त्र]	२)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय
काल नं० ९३३.४२ नेमिच
लेखक शास्त्री नेमिचन्द्र
शीर्षक व्रत तिथि निर्णय
खण्ड
क्रम संख्या ४०३४